''श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन बुन्देली काव्य के परिप्रेक्ष्य में''

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की
पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2002

शोध पर्यवेक्षक
डा. छोटेलाल गुप्त
रीडर, विभागाध्यक्ष (हिन्दी)
श्री अग्रसेन महाविद्यालय
मऊरानीपुर (झाँसी)

शोध छात्रा
प्रियंवदा त्रिपाठी

हिन्दी विभाग :-
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0)
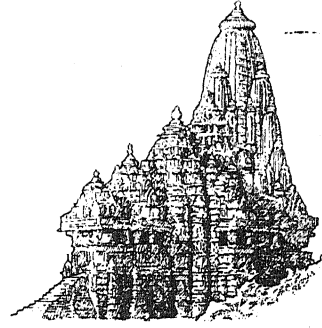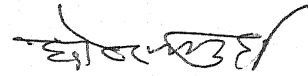
"लाज बचाउन जी की सदाँ-
छत्रसाल जू ने बिपदा तन झेली।
प्रान हतेरी धरैं भएँ लक्ष्मी-
बाई, जहाँ खुल खंगन खेली।
जी के गरें कवि व्यास ने माल-
भली कविता-मुकतान की मेली।
पाँव परवारत बेतबती बई-
'मित्र' जू बंदत भूम बुन्देली।"
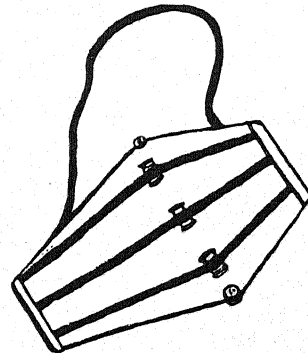
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रियंवदा त्रिपाठी मेरे पर्यवेक्ष्य में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी पी–एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु ''श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन बुन्देली काव्य के परिप्रेक्ष्य में'' नामक शोध प्रबंध प्रस्तुत कर रही हैं। प्रियंवदा त्रिपाठी का यह अपना मौलिक प्रयास है और इन्होंने विश्वविद्यालय के नियमों के अनुरूप उपस्थित रहकर यह शोधकार्य पूर्ण किया है।

(डा. छोटेलाल गुप्त)
शोध पर्यवेक्षक
रीडर, विभागाध्यक्ष (हिन्दी)
श्री अग्रसेन महाविद्यालय
मऊरानीपुर (झाँसी)

प्राक्कथन-

'आल्हा', 'छत्रसाल' और 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' की यशभूमि है बुन्देलखण्ड । आध्यात्मिक साधना और सांस्कृतिक चेतना के सूर्यपुरूष गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य केशवदास और राष्ट्रीय जागरण के युग कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भूमि है बुन्देलखण्ड । बुन्देली माटी की गंध, वायु की महक और उष्णता से बुन्देली लोक जीवन रंजन और मंगल की ओर गतिमान रहता है।

श्रीरामचरितमानस का वह प्रसंग मेरे सामने है जिसमें मुनिवर श्री बाल्मीकि जी से भगवान श्रीराम दिशा निर्देश मांग रहे हैं कि:--

''हे! मुनिश्रेष्ठ जहाँ मैं लक्ष्मण सीता सहित पत्तों और घास की कुटिया बनाकर रह सकूँ वह ठोर बतलाने की कृपा कीजिए''

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।

तहँ रूचि रूचिर परन तृन साला । बासु करौं कछु काल कृपाला।

मुनिवर श्री बाल्मीकि ने श्री राम से तब कहा:–

''आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये। वहाँ आपके लिये सब प्रकार की सुविधा है।''

''चित्रकूट गिरि करहु निवासु। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।''

एक अन्य कथा भी मैं ने सुनी है कि महान् अकबर बादशाह का दिल्ली दरबार छोड़कर श्री अब्दुर्रहीम खानखाना कुछ दिनों के लिये 'चित्रकूट' में आ बसे थे। लोगों ने कौतूहल वश

कविवर श्री रहीम से चित्रकूट आने का हेतु जानना चाहा। श्री रहीम का दो टूक उत्तर था:-

चित्रकूट में रमि रहे, 'रहिमन' अवध नरेस ।

जा पर विपदा परत है, सो आवत यहि देस।

बुन्देलखण्ड का यह यश हृदय को आनन्दित करता है। बुन्देलखण्ड मेरी भी जन्म भूमि है यह सौभाग्य मान प्रदान करता है। एतद् बुन्देलखण्ड को जानने समझने की जिज्ञासा जाग्रत हो जाना स्वभाविक है। बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक-पौरूष, सांस्कृति-लालित्य और काव्य-सौन्दर्य की ओर भाव विचार तरंगे उन्मुख होने लगती हैं। 'बुन्देली संस्कृति' और 'काव्य-शोभा' मेरी शोधबुद्धि को अपनी ओर खींच लेती है।

मेरे पिताश्री डॉ0 उदय त्रिपाठी की अभिरूचि के कारण मेरा पारवारिक परिवेश साहित्यिक है। घर में आयेदिन ''साहित्यिक चर्चाऐं और काव्य गोष्टियाँ'' होना आम बात है। श्रद्धेय पिताजी के आशीर्वाद से मुझे बुन्देली साहित्य ज्ञान के ऋषी पुरूष श्री कृष्णानन्द जी गुप्त, महानक्रान्तिकारी और साहित्य मनीषी डा0 भगवान दास माहौर, आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी, डा0 गनेशीलाल बुधौलिया, बुन्देली साहित्य शिरोमणि कन्हैयालाल 'कलश', डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त जैसी बुन्देलखण्ड की साहित्यिक विभूतियों के दर्शन करने का सुयोग प्राप्त हुआ है। बुन्देली संस्कृति और बुन्देली काव्य के प्रति मेरी भावना के झुकाव में इस पारवारिक परिवेश का भी योगदान है।

साहित्य वारिधि श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व और काव्य -प्रतिभा ने मेरे हृदय और चेतना को विशेष रूप से प्रभावित किया है। बुन्देली भाषा, बुन्देली परिधान, बुन्देली व्यवहार और शिष्टाचार श्री मित्र जी के व्यक्तित्व से मुखर होता था। श्रद्धेय

मित्र जी का सुरीला कंठ उनकी बुन्देली कविता को अधिक सरस बनाने में सहयोगी हो जाता था। श्री मित्र जी ऐसे कवि नहीं रहे जो केवल कविता करके संतोष कर लेते हैं। उन्होंने बुन्देली-संस्कृति और साहित्य पर विवेचनात्मक लेख लिखे हैं और ग्रन्थों की रचना भी की है।' मित्र' जी कवि के साथ ही साथ बुन्देली संस्कृति और साहित्य के शोधकर्त्ता, संकलन कर्त्ता और प्रकाशन कर्त्ता भी थे। इसीलिये मेरी मान्यता है कि बुन्देली के आदि कवि 'जगनिक' और बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक लोक-व्याप्त लोक-कवि ''श्री ईसुरी'' के बाद ''श्री रामचरण हयारण मित्र जी'' बुन्देलीकाव्य और बुन्देली-संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि हैं। यही कारण है कि– ''श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन– बुन्देली काव्य के परिप्रेक्ष्य में'' शोधप्रबंध प्रस्तुत करते हुऐ मैं अत्यन्त पुलकित हो रही हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में :–

✦ सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड और बुन्देली भाषा के क्षेत्र और स्वरूप का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

✦ फिर बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक-परम्परा की विवेचना की गयी है। इसमें संस्कृति, लोक-संस्कृति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बुन्देली-संस्कृति के लोकाचार, लोकविश्वास, लोकदेवता, लोकोत्सव, लोकाभूषण और लोकनृत्यों आदि का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

✦ तत्पश्चात बुन्देली काव्य-परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिसमें बुन्देली शौर्य गाथा-काव्य, बुन्देली भक्ति-काव्य, बुन्देली-श्रंगार एवं फाग-काव्य तथा बुन्देली

के आधुनिक काव्य की विवेचना की गयी है।

- अगले चरण में श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी का पारिवारिक और साहित्यिक परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व को परखा गया है। इसी के सामान्तर श्री मित्र जी की समकालीन दार्शनिक एवं विभिन्न विचार–धाराओं, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव की भी समीक्षा की गयी है।
- इसके उपरान्त श्री रामचरण हयारण 'मित्र' की काव्य कृतियों और रचनाओं का विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया गया है।
- श्री 'मित्र' जी की रचनाओं के विस्तृत परिचय के अगले क्रम में श्री मित्र जी की काव्य-साधना का साहित्यिक अध्ययन करते हुए उनकी काव्यानुभूतियों तथा काव्याभिव्यक्तियों की विवेचना की गयी है।
- तदन्तर श्री मित्र जी की काव्य-चेतना पर बुन्देली संस्कृति और लोक-जीवन के प्रभाव की विवेचना की गयी है और बुन्देली काव्य-परम्परा में मित्र जी के काव्य के योगदान की विवेचना हुई है।
- अंत में प्रस्तुत शोध-प्रबंध के निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है।

मुझे विश्वास है कि ''श्री रामचरण हयारण 'मित्र जी के काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन – बुन्देलीकाव्य के परिप्रेक्ष्य में'' – यह शोध प्रबंध अपना मौलिक योगदान देने में सफल होगा और हिन्दी साहित्य के ज्ञान क्षेत्र में अपने प्रथम और मौलिक दायित्व को पूरा करेगा।

बुन्देली साहित्य शिरोमणि वयोवृद्ध साहित्यकार डॉ0 कन्हैयालाल 'कलश' आदरणीय डॉ0 रामनारायण शर्मा, डॉ0 जवाहरलाल कंचन, डॉ0 मोहनलाल गुप्त 'चातक', डॉ0 सियाराम शरण शर्मा आदि विद्वानों ने इस शोधप्रबंध के निमिन्त साहित्य सामग्री जुटाने में समुचित दिशा निर्देश प्रदान कर मुझ पर अपार कृपा की है। एतद् मैं हार्दिक आदर समर्पित कर कृतज्ञता प्रगट करती हूँ।

आदरणीय डॉ0 सुरेन्द्र नारायण सक्सेना जी (हिन्दी विभागाध्यक्ष मथुराप्रसाद महाविद्यालय कोंच) ने भी मित्र जी के काव्य तथा व्यक्तिगत जीवन के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराई हैं। इसमें श्री मित्र जी के दोहित श्री ओम प्रकाश हयारण जी की सौजन्यता का भी महत्वपूर्ण योगदान सम्मलित है।

विभिन्न पुस्तकालयों से भी यथेष्ट सहयोग प्राप्त हुआ है। एतद् मैं सबको नमन् करती हुई धन्यवाद देती हूँ।

शोधपर्यवेक्षक परमादरणीय डॉ0 छोटेलाल गुप्त जी को किन शब्दों में और किस प्रकार धन्यवाद ज्ञापन करूँ नहीं सोच पा रही हूँ। उनका ही आशीर्वाद है कि मैं यह वृहद् कार्य पूरा कर सकी। वे मेरे घर के बुर्जुग जैसे हैं– धन्यवाद देकर उनके स्नेह को औपचारिक सीमा में कैसे खड़ा कर दूँ।

बड़ी बहिन श्रीमती विदुषी एवं बहनोई श्री देवेन्द्र जी की प्रेरणा और आदरणीय पतिदेव श्री आनन्दप्रकाश जी का प्रोत्साहन मुझे गतिशील बनाये रखता है। प्रिय भाई श्री प्रणव और विशेषतः प्रिय श्री अभिनव ने भाग दौड़ कर शोधप्रबंध टाइप कराने में भारी परिश्रम किया है। मैं क्या कहूं ? मेरी राखी के भार को उठाने में वे कितने तत्पर है यह सोचकर मैं भावुक हो जाती हूँ..........

श्रद्धेय पिताजी डॉ0 उदय त्रिपाठी तथा माता जी श्रीमती कुसुम त्रिपाठी के स्नेह से अलौकिक ऊर्जा पाती हूँ उनसे– बस यही कह पा रही हूँ :–

''शीतल एइ नीम की छैयां, जा में घामौ व्यापत नइयाँ।''

प्रियंवदा त्रिपाठी
(प्रियंवदा त्रिपाठी)

अनुक्रम

अध्याय – प्रथम

बुन्देलखण्ड - परिचय

* बुन्देलखण्ड – परिचय
* हिन्दी काव्य में बुन्देलखण्ड का वर्णन
* बुन्देलीभाषा का क्षेत्र एवं स्वरूप

बुन्देलखण्ड परिचय :

भारत के भौगोलिक वैभव, ऐतिहासिक गौरव और साहित्यिक – सांस्कृतिक – धरोहर में बुन्देलखण्ड का क्या स्थान है – यह जिज्ञासा स्वाभाविक है। भारत के मध्यक्षेत्र के एक विशेष भूभाग को बुन्देलखण्ड नाम से पहचाना जाता है। प्राकृतिक और भौगोलिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड विविधता का धनी रमणीय क्षेत्र है। इसके सीमा प्रदेश , पड़ौसी – उत्तर में जमुना पार के ब्रज, कन्नौज और अवध जनपद, दक्षिण में महाराष्ट्र, पूर्व में बघेल खण्ड और छत्तीसगढ़ जनपद तथा पश्चिम में मालवा जनपद और राजस्थान के कुछ जनपद हैं। [1] ऊँचे नीचे पहाड़ों के कारण बुन्देलखण्ड यदि पहाड़ीक्षेत्र का भाई–बन्धु लगता है तो छोटी बड़ी नदियों के प्रवाह के कारण गंगा-जमुना के मैदानों का साथी क्षेत्र लगता है।

बुन्देलखण्ड को अतीत – के झरोखे से देखें तो रामायण और महाभारत कालीन जनपदीय चेतना की छवियाँ उभर आती हैं। रामायण काल से बौद्धयुग तक मध्यदेश विभिन्न सोलह जनपदों में फैला था। ये जनपद काशी, कौसल, अंग, मगध, बज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरू, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गांधार, कन्नोज थे। इनमें चेदि और शूरसेन का संबंध बुन्देलखण्ड से था। [2] इनमें चेदि और शूरशेन नाम प्रारंभ में चंबल और केन के बीच – जमुना के दक्षिण प्रदेश अर्थात् केवल उत्तरी बुन्देलखण्ड का था। बाद में चेदि नागों का विस्तार उत्तर तेवर–जबलपुर तक फैला गया । [3]

---

1. बुन्देलखण्ड दर्शन : मोतीलाल त्रिपाठी – पृ 28 – 29 ।
2. प्राचीन भारत का इतिहास : डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी पृ0 66 – 67 ।
3. बुन्देलखण्ड का पूर्व इतिहास और सीमा : मधुकर पत्रिका : अंक 7 से राजकुमार जैन।

चेदि के साथ दशार्ण भूभाग को जोड़ने पर वर्तमान बुन्देलखण्ड की सीमा रेखाओं के रंग दिखने लगते हैं। पंजाब का नाम जैसे पांच नदियों के कारण रखा गया उसी प्रकार बुन्देलखण्ड का दशार्ण नाम धसान, पार्वती, सिन्ध (काली), बेतवा, चम्बल, जमुना, नर्मदा, केन, टोंस और जामनेर दस नदियों के कारण पड़ा । इनमें से कुछ नदियां बुन्देलखण्ड के भूभाग को सींचती हैं और कुछ नदियां उसकी सीमा बनाती है। 2.

इसी बृहत्तर बुन्देलखण्ड की सीमा को देखते हुऐ दीवान प्रतिपालसिंह की मान्यता है कि पूर्व में टोंस और सोन नदियां अथवा वघेलखण्ड या रीवां राज्य तथा बनारस के निकट बुन्देला नाले तक सिलसिला है। पश्चिम में बेतवा और चंबल नदियाँ, विन्ध्यांचल श्रेणी सिंधिया का ग्वालियर राज्य और भोपाल राज्य के साथ पूर्वी मालवा इसी में आता है। उत्तर में यमुना और गंगा नदियाँ, इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद और मिर्जापुर से बुन्देलखण्ड की सीमाऐं बनाती है। 3. प्रसिद्ध भूगोल बेत्ता एस0एम0 अली – ''दि ज्याग्रफी ऑफ दि पुरानाज '' – ग्रन्थ में विन्ध्य क्षेत्र के विदिशा, दशार्ण एवं करूष जनपदों से बुन्देलखण्ड का रिश्ता जोड़ते हैं। अतः श्री अली साहब भी बेतवा, धसान, केन, नर्वदा नदियों के तटवर्ती क्षेत्र को बुन्देलखण्ड मानते हैं। [4]

---

2. मधुकर अंक – 7 – गोविन्दराय जैन ।
3. बुन्देलखण्ड का इतिहास – प्रथम भाग दीवान प्रतिपालसिंह पृ0 5
4. दि ज्याग्रफ्री ऑफ दि पुरानाज – एम0एम0 अली पृ0 160

प्रसिद्ध इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने भौगोलिक सीमाओं और इतिहास की लहरों के बीच संतुलन बैठाते हुए – स्थापित किया है कि विन्धमेखला का तीसरा प्रदेश बुन्देलखण्ड है– जिसमें बेतवा (बेत्रवती), धसान (दर्शाण) और केन (शुक्तिमतो), नर्मदा की ऊपरी घाटी और पंचमढ़ी से अमरकंटक तक ऋष-पर्वत का हिस्सा सम्मलित है। इसकी पूर्वी सीमा टोंस (तमरना) नदी है। (1)

इतिहास को आधार माने तो बुन्देलखण्ड की प्राचीनता पर कहा जा सकता है कि गुप्तवंश के शासकों में समुद्रगुप्त ने वाकाटकों को अपने अधीन छठी शती में कर लिया था बुन्देलखण्ड का शासन वाकाटकों के हाथो से निकलकर गुप्तवंश के हाथों में आ गया। इसीकें आसपास कलचुरियों का उदय हुआ जो बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण शासक रहे हैं। पाण्डवों ने सत्ता मेकल प्रदेश में स्थापित की। गुप्तवंश के एरण तक आने के लेख और शिलालेख मिलते हैं। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय करते समय एरण पर अधिकार कर लिया था और उसे ''स्वभोज नगर'' की संज्ञा दी थी। हटा तहसील के सकौर ग्राम में 24 सोने के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर गुप्त वंशीय राजाओं का नाम अंकित है। 8 मुहरों पर महाराज समुद्रगुप्त का नाम 15 मुहरों पर महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त का नाम और एक पर स्कंदगुप्त का नाम खुदा है। (2) इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि बुन्देलखण्ड गुप्तों के समय में एक वैभवशाली प्रदेश रहा है।

---

1. भारत भूमि और उसके निवासी – जयचंद्र विद्यालंकार पृ0 65 ।

2. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास – गोरेलाल तिवारी पृ0 19 ।

बुन्देलखण्ड का राज्य बुधगुप्त की ओर से उसका मांडलीक सुरश्मिचन्द्र देखता था। सुरश्मिचन्द्र ने मैत्रीयणीय शाखा के मातृविष्णु और धान्यविष्णु ब्राह्मणों को एरण का शासक बनाया। इसका उल्लेख एरण में प्राप्त स्तम्भ में है। हर्षवर्धन के साम्राज्य के उपरान्त बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग में ब्राह्मण राजवंश रहा। बाद में यह चंदेलों और परमारों के अधीन हो गया। चंदलों के अधीन रहने वाला भाग धसान नदी के पूर्व और विन्ध्यांचल पर्वत के उत्तर पश्चिम में था। उत्तर में यमुना नदी और दक्षिण में केन नदी तक फैला था। [1]

बुन्देलखण्ड में बुन्देलाओं की कहानी भी रोचक है। देशी राजाओं के स्वतंत्र होते समय हेमकरन ने उत्तरीभाग पर कब्जा किया । ये आदि बुन्देला कहलाए। इनका राज्य 1055 से 1071 सन् तक रहा। सन् 1087 में वीरभद्र की मृत्यु के बाद करनपाल गद्दी पर बैठे। सन् 1112 में कन्नर शाह, सन 1119 में मोहनपाल, 1197 से 1215 तक अभयभूपति और उसके बाद सोहनपाल बुन्देलखण्ड के राजा बने। बुन्देलाशासन के सही संस्थापक सोहनपाल माने जाते हैं। [2]

बुन्देलखण्ड का मूल चरित्र जुझारू है। आल्हा,ऊदल, छत्रसाल, वीरसिंह जूदेव, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के संघर्षों की गाथा – बुन्देलखण्ड के स्वाभिमान और शौर्य की गाथा है। मुगलकाल विशेष रूप से अकबर युग में तथा अंग्रेजी शासन में बुन्देलखण्ड ने अपने स्वायत्त शासन के लिए जो संघर्ष किया वह बुन्देलखण्ड की जीवंता और अस्तित्व को उजागर करता है। यहाँ साफ तौर पर दिखता है कि दिल्ली सत्ता से बुन्देलखण्ड की सदा ठनी रही फिर चाहे मुगल शासन काल रहा हो अथवा अंग्रेजी हकूमत का समय रहा हो।

---

1. कन्ट्रीव्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड भाग – 1 पृ0 53 । (स्मिथ)

2. भारतीय – बुन्देलखण्ड और उसका राजत्वकाल पृ0 50 ।

भौगोलिक परिवेश और प्राकृतिक सुषमा ने बुन्देलखण्ड को रमणीयता और कोमलता का वरदान दिया है। बुन्देलखण्ड की स्वाभिमानी और स्वायत्त चेतना ने इसके जीवन को संघर्षशील बनाया है। बुन्देलखण्ड की कला साधना के प्रतीक खजुराहो, ओरछा, उन्नाव (बालाजी) देवगढ़ व सोनागिर के मंदिर है। यहां के शौर्य और पराक्रम की कहानी कालिंजर, महोबा, छतरपुर, ओरछा और झांसी के गढ़–किलों और महलों में गूंज रही है। महाकवि महर्षि – व्यास, तुलसीदास, केशव, बिहारी,भूषण, मतिराम, पदमाकर, ईसुरी, मैथिलीशरण गुप्त जैसे स्वनाम धन्य काव्य-साधक बुन्देलखण्ड की सम्वेदना और अनुभूति का गान गा रहे हैं। बुन्देलखण्ड के इस स्वरूप का प्रभाव यहां के साहित्यकारों और साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है।

हिन्दी काव्य में बुन्देलखण्ड का वर्णन-

पहले कहा जा चुका है कि बुन्देलखण्ड भारतवर्ष का हृदय-स्थल है। बुन्देलखण्ड ऐतिहासिक गरिमा से युक्त है। बुन्देलखण्ड की एक विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर है। प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा ने बुन्देलखण्ड के सौन्दर्य में श्रीवृद्धि की है। इसीलिये प्रत्येक काल के कवि ने बुन्देलखण्ड के महत्व को अपनी काव्याभिव्यक्तियों में प्रगट किया है। हिन्दी के आदर्श कवि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी चित्रकूट और विन्ध्याचल पर्वत की प्रशंसा हिमालय द्वारा कराते हैं–

''सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहि तेते।
बिंध मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु विपुल बड़ाई पाई ।।''
''हिमालय आदि जितने पर्वत हैं , सभी चित्रकूट का यश गाते हैं ।
विन्ध्याचल तो बिना श्रम के ही , बड़ी बड़ाई पाकर अति हर्षित है ।।''
चित्रकूट के विहग मृग बेलि विटप तृन जाति ।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ।। [1]
''चित्रकूट के पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण अंकुरादि सभी जातियां
पुण्य की राशि है और धन्य है , देवता गण दिन–रात ऐसा कहते रहते हैं ।।''

---

1. श्रीरामचतिरमानस – गोस्वामी तुलसीदास रचित पृ0 452, 453 (अयोध्याकाण्ड)

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ''साकेत'' के अष्टम सर्ग में सीताजी के द्वारा चित्रकूट के वैशिष्ट को इन पंकियों में व्यक्त करते हैं –

''क्या सुन्दर लता वितान तना है मेरा
पुजाकृति गुंजति कुंज घना है मेरा
जल निर्मल, पवन पराग सना है मेरा
गढ़ चित्रकूट दृढ दिव्य बना है मेरा
प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया
मेरी कृटिया में राजभवन मन भाया ।'' [1]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के निकटतम् साथी स्व0 मुंशी अजमेरी जी ने बुन्देलखण्ड का सारगर्भित चित्रण अपनी एक लम्बी कविता में किया है।

इसमें बुन्देलखण्ड का इतिहास सजीव हो उठा है।

''चंदेलों का राज्य रहा चिरकाल जहां पर
हुए वीर नृप झण्ड मदन, परमाल जहां पर
बढ़ा विपुल बल विभव बने गढ़ दुर्गम दुर्जय
मंदिर महल मनोज्ञ सरोवर अनुपम अक्षय
यही शौर्य सम्पत्ति मयी कमनीय भूमि है
यह भारत का हृदय रूचिर रमणीय भूमि है।''

---

1. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त – अष्टम सर्ग ।

बुन्देलखण्ड की नदियों की शोभा का वर्णन देखिये–

यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल
पूर्व ओर है टोंस पश्चिमांचल में चंबल,
उरपर केन धसान वेतवा सिंध वहीं हैं
विकट बिन्ध्य की शैल श्रेणियां फैल रहीं हैं
विविध सुदृश्यावली अटल आनन्दभूमि है
प्रकृतिच्छटा बुन्देलखण्ड स्वच्छन्द भूमि है।

बुन्देलखण्ड की काव्यचेतना ने कितने यशस्वी कवि दिये है यह इन पंक्तियों से प्रगट हो रहा है।

तुलसी, केशव, लाल, बिहारी, श्रीपति, गिरधर
रसनिधि, रायप्रवीन, पजन, ठाकुर, पद्माकर
कविता मंदिर कलश सुकवि कितने उपजाए
कौन गिनावै नाम जांय किससे गुण गाए
यह कमनीया काव्य कला की नित्य भूमि है
सदा सरस बुन्देलखण्ड साहित्य भूमि है।

ग्रामीण – जन – जीवन में भी लोकसंस्कार और लोक संगीत के स्वरों की गूंज़ बुन्देलखण्ड में होती रहती है :-

ग्रामगीत ग्रामीण यहां मिलकर गाते हैं
सावन, सैरे, फाग, भजन उनको भाते हैं
ठाकुर द्वारे यहां अधिकता से छवि छाजैं
मंदिर के अनुरूप जहां संगीत समाजैं।
यह हरिकीर्तन मयी प्रसिद्ध पुनीत भूमि है।
स्वर संकलित बुन्देलखण्ड संगीत भूमि है। [1]

---

1. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ – पृ0 565

बुन्देलखण्ड में षट् ऋतुओं की शोभा का वर्णन श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी इस छंद में करते हैं :-

''मलयागिरि की अत ऊँची पहारियां

बिन्द की पारियां देख लजाउतीं ।

धरती पैं बुंदेल की जन्मवे खों,

जियै देवन की तिरियां ललचाउतीं ।

कत मित्र जू तीनउं बेरें सुगंध के,

बीजना लै के डुलाउबे आउतीं ।

झुक झूमतीं, लूमतीं, पवन चूमतीं

छैउ रितें परकम्मा लगाउतीं। [1]

मऊरानीपुर निवासी बुन्देली के प्रसिद्ध कवि आचार्य घनश्यामदास पाण्डेय ने भी बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक छटा का वर्णन इन पक्तियों में किया है :-

''प्राकृत गढ़े हैं गढ़ सुदृढ़ पहाड़ियों के

झांड़ियों के दुर्गम मरीची मारतण्ड की ।

सिंह शावकों के साथ अभय मिला के हाथ,

क्रीड़ा जहां होती क्षत्री बालक उदण्ड की।

सघन अरण्य है शरण्य फल वन्य स्वाद,

'विप्र घनश्याम' धन धरणि घमण्ड की ।

विधि की विभूति मूर्तिमान सी हुई है जहां,

परम पवित्र भूमि है - बुन्देलखण्ड की ।[2]

---

1. बुन्देलीकाव्य - सम्पादक डा0 हरगोविन्दसिंह पृ0 6 ।
2. दैनिक जागरण 23 अप्रैल 1968 पृ0 4 ।

राष्ट्रीय चेतना के प्रखर कवि पं0 घासीराम व्यास जी ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा– बुन्देलखण्ड के यश को अनेकरूपों में वर्णित किया है । एक छंद यहां प्रस्तुत है–

चित्रकूट ओरछा कालिंजर, उन्नाव तीर्थ

पन्ना खजुराहो, जहां कीर्ति झुकि झूमी है।

जमुन, पहूज, सिन्ध, बेतवा, धसान, केन,

मंदाकिनि, पयस्विनी, प्रेमपाय घूमी है।

पंचम, वृसिंह, राव चंपतराव, छत्रसाल,

लाला हरदौल भाव चाव चित चूमी है।

अमर आन्दनीय असुर निकन्दनीय,

वन्दनीय विश्व में बुन्देलखण्ड भुमी है। [1]

आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी द्वारा रचित यह छंद बुन्देलखण्ड की प्रमुख नदी बेतवा के महत्व को मुखर करता है:–

''बेंत्रवती विदित सुविन्ध्य गिरि नन्दिनी है,

बेत्रवन पावन की नेत्र निधि अथ में।

पूरव कौं बहति अपूरव करत रव,

विदिशा सौं लीनी दिशा उत्तरीय पथ में।

उभरत श्रंगन सौं लरति करति रैनु,

जीवन भरति धरनी की काय श्लथ में।

जामिन धसान को समोद निज गोद आनि,

जाहनुजा सौं भेंटी चढ़ी भानुजा के रथ में।[2]

---

1. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ – पृ0 602 ।
2. बृजवर्तिका – आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी ।

बुन्देली भाषा का क्षेत्र एवं स्वरूप:-

बुन्देली भाषा का प्रयोग – उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश के लगभग 30 जनपदों में होता है। उत्तर प्रदेश में झांसी, ललितपुर, हमीरपुर, जालौन और बांदा के क्षेत्रों में बुन्देली भाषा का प्रयोग होता है। मध्यप्रदेश में टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सागर, दमोह, दतिया, भिण्ड, मुरैना, गुना, शिवपुरी, विदिशा, रायसेन, होशंगाबाद, जबलपुर, नरसिंहपुर, शिवनी, छिन्दवाड़ा, बालाघाट, बैतूल तथा सतना की नागौद तहसील आदि के सीमान्त क्षेत्रों बुन्देली भाषा का प्रचलन है। भाषा वर्गों के निर्णायक तत्वों–ध्वनि, शब्द समूह तथा रूप अर्थ एवं वाक्य रचना के आधार पर इन जनपदों तथा उनके समीवर्ती क्षेत्र में – जो भाषा बोली जाती है उसको ''बुन्देली भाषा'' से ही पहचाना जाता है। राजनैतिक क्षेत्र की एकरूपता के अभाव से कुछ क्षेत्र के लोगों ने अपनी क्षेत्रीयभाषा को स्थानीय नाम दे रखे हैं। उदाहरण के लिए तवरधारी, भदावरी और बनाफरी क्षेत्रीय भाषा के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। भिण्ड मुरैना के लोगों ने अपनी क्षेत्रीय भाषा को तवरधारी और भदावरी कहा है। बांदा और हमीरपुर जिलों के कुछ अंचलो में बोली जाने वाली भाषा को बनाफरी कहा जाता है।

बस्तुतः घने जंगलों, पहाड़ों और नदियों से आच्छादित होने कारण इस पूरे भूभाग की बोली में स्थानगत विशेषताओं के प्रभाव के कारण ध्वनि प्रयोग में आंशिक अन्तर आ जाता है – लेकिन इन क्षेत्रों की भाषा को बुन्देली ही कहना उचित है। [1]

बुन्देलीः एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन : पृ0 1
दुर्गाचरण शुक्ल – कैलाश बिहारी द्विवेदी ।

डॉ0 ग्रियेंसन जी ने भारत भाषा सर्वेक्षण खण्ड 9 में बुन्देली भाषा की विवेचना की है। जिसके आधार पर बुन्देली के प्रकारों को समझा जा सकता है।[1]

(1) झाँसी, सागर, टीकमगढ़ और ओरछा प्रमाणिक बुन्देली के केन्द्र है।

(2) झाँसी जिले के उत्तर में जालौन जिला है। इसकी पूर्वी सीमा पर निभट्टा एवं लोधन्ती बोलियों का प्रभाव है। शेष भाग में प्रमाणिक बुन्देली का प्रभाव है। मध्य जालौन में ऐ– तथा 'औ' के स्थान पर 'ए' और 'ओ' का प्रयोग होता है।

उदाहरणार्थ–	ऐसो	को	एसो	कहना
	जैहै	को	जेहे	कहना
	और	को	ओर	कहना

'इ' का अतिरिक्त प्रयोग होता है –

यथा– शहर को सिहर

पहिरान को पिहरान – कहना

(3) हमीरपुर के मध्यभाग की बोली प्रमाणिक बुन्देली है।

यथा – मुझको – को – मौकाँ – मोरवों कहा जाता है।

ध्यान देने की बात है कि ''खौ'' की अपेक्षा 'काँ'

का व्यवहार विकृत अवधी के प्रभाव रूप से होता है।

हमीरपुर में बुन्देली की सहयोगी उपबोली लोधन्ती, कुण्डरी, बनाफरी, तिरहारी, आदि भी बोली जाती हैं।

---

1. भारत भाषा सर्वेक्षण : डा0 ग्रियेंसन खण्ड – 9 ।

(4) पूर्वी ग्वालियर – झांसी तथा सागर जिले की पश्चिमी सीमा के साथ दक्षिण की ओर (झांसी की) प्रमाणित बुन्देली का व्यवहार होता है।

(5) बुन्देलखण्ड के पश्चमी भाग में ओरछा, टोड़ी फतेहपुर, बिजना, बंकापहाड़ी आदि स्थान है। यहां पर प्रमाणित बुन्देली का प्रयोग होता है।

(6) बुन्देलखण्ड के दक्षिण मध्य एवं पश्चिम मध्य अर्थात – विजावर, पन्ना, चरखारी, महाराजपुर व छतरपुर आदि क्षेत्र साथ–साथ दमोह में जिस बुन्देली का प्रयोग होता है – उसे – ''खटोला'' नाम से पुकारा जाता है।

स्थानीय विशेषताओं का अन्तर इस रूप में दिखता है :–

यथा –	नहीं है	– नहियां
	दोगे	– देहौं
	जायगा	– जैहे
पुलिंग (कर्ता)	यह	– जो
स्त्रीलिंग(कर्ता)	यह	– जा

(6) हमीरपुर जिले के उत्तरी पश्चिमी तथा निकटवर्ती उरई परगने में लोध जाति का बाहुल्य है – यहाँ बोली जाने वाली बुन्देली – लोधन्ती या राठोरा बुन्देली कही जाती है।

(8) बुन्देली का बनाफरी रूप बनाफर जाति के राजपूतों द्वारा व्यवहार में प्रचलित है। यह मिश्रित भाषा का रूप है– परन्तु इसका मूल स्वरूप बुन्देली का ही । बनाफरी को बुन्देली और बघेली का मिश्रित रूप भी कहा जा सकता है।

(9) भदावर राजपूत चंबल नदी के दोनों ओर पाये जाते हैं। यही ग्वालियर का तोवरगढ़–जनपद तोमर राजपूतों का खास निवास क्षेत्र है। यहां व्यवहार में आने वाली बोली को भदौरी व तोवरगढ़ी पुकारा जाता है। ग्वालियर में भदौरी ही प्रचलित हैं। इसके पश्चिम में ब्रजभाषा का क्षेत्र है।

(10) सागर और दमोह जिलों के दक्षिण में नर्मदा घाटी के अन्तर्गत मण्डला, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद आदि क्षेत्र हैं। मण्डला तथा जबलपुर में पूर्वी हिन्दी का प्रभाव है। नरसिंहपुर होशंगाबाद में प्रमाणिक बुन्देली का प्रयोग होता है। इनसे इतर भागों में विकृत बोलियों का प्रयोग होता है। इसमें बुन्देली का प्रधान अंश हैं। शेष में क्षेत्रीय शब्दों का अतिरिक्त प्रभाव देखने को मिलता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बुन्देली की सामान्य विशेषताओं और विभिन्न क्षेत्रीय प्रभावों के कारण बुन्देली भाषा का स्वरूप–विविधता से प्रभावित हैं। यह विविधा समीपी भाषा और जाति विशेष की ध्वनि प्रवृत्ति के कारण झलकती है। पर इनकी अन्तरिकता और मूलधारा बुन्देली में समाहित होती है। [1]

---

1. बुन्देली काव्य परम्परा – डा0 वलभद्र तिवारी ।
(प्रथम खण्ड – प्राचीनकाव्य)

अध्याय – द्वितीय
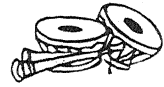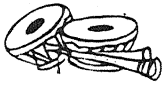
(I) बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा का अध्ययन

* संस्कृति की अवधारणा
* लोक संस्कृति की अवधारणा
* बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति
    - बुन्देली-लोकाचार
    - बुन्देली लोक-विश्वास
    - बुन्देली लोक-देवता/ग्राम-देवता
    - बुन्देली लोक-संस्कार
    - बुन्देली-लोकोत्सव
    - बुन्देली-लोकाभूषण
    - बुन्देलखण्ड के लोक-नृत्य

(II) बुन्देलीकाव्य परम्परा का अध्ययन

* बुन्देली काव्य-परम्परा
* बुन्देली शौर्य-काव्य
* बुन्देली गाथा-काव्य
* बुन्देली भक्ति-काव्य

* बुन्देली का श्रृंगार-काव्य
* बुन्देली का फाग – फड़-काव्य
* बुन्देली का लोक–काव्य
* आधुनिक बुन्देली-काव्य-परम्परा
* बुन्देली काव्य की विवेचना

संस्कृति की अवधारणा-

संस्कृति क्या हे? संस्कृति कैसे निर्मित होती ? यह प्रश्न सहज है। स्वाभाविक है। इनके उत्तर अनेक हैं। संस्कृति की परिभाषाओं में वैविध्यता है। संस्कृत शब्द का अर्थ है संस्कार किया हुआ।अर्थात् दोष विकार और त्रुटियों को निकाल कर परिष्कार किया हुआ। सहज भाषा में कहे तो चमकाया हुआ, पालिश किया हुआ। संस्कृत साहित्य में संस्कृति शब्द के स्थान पर 'संस्कार' शब्द का प्रयोग हुआ है। आजकल संस्कृति शब्द को अंग्रेजी के कल्चर शब्द का समान अर्थवाची माना जाता है। निरूक्ति की दृष्टि से 'कल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति- लैटिन भाषा की 'कोलर' धातु से निष्पन्न कुल्टुरा शब्द से हुई है। यह शब्द पूजा करना तथा कृषि संबंधी कार्य का बोधक है। कुछ विद्धान इसी अर्थ के सहारे कल्चर को कल्टीवेशन अर्थात कृषि से संबंधित मानते हैं।

संस्कृति शब्द के इन रिश्ते नातों से यह कहना समीचीन लगता है कि कृषि विद्या के सिद्धान्तों के आधार पर जिस प्रकार पेड़ पौधों को सुविकसित करके अच्छी खेती तैयार की जाती है, उसी तरह मनुष्यों में भी मानवता की भावना को पुष्पित और पल्लवित करने के लिए जिस पद्धति को अपनाया जाता है उसे ''संस्कृति'' कहते हैं। इसी धारणा को इस प्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं कि किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों या सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों को ही 'संस्कृति' कहते हैं।[1]

प्रसिद्ध मानव विज्ञान शास्त्री डॉ० डी०एन० मजुमदार जी का मानना है कि संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्यों की रीति-नीति, लोक-विश्वास, आदर्श, कलायें तथा मानव द्वारा उपलब्ध समस्त कैशल एवं योग्यताओं को लिया जा सकता है।[2] संस्कृति के चार अध्याय पुस्तक की प्रस्तावना में पं० जवाहर लाल नेहरू जी लिखते हैं कि ''संस्कृति क्या? शब्द कोश

---

1. लोक संस्कृति की रूपरेखा – कृष्ण देव उपाध्याय – पृ0 11 ।
2. एन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल एन्थ्रोपोलाजी – डॉ0 मजुमदार तथा टी0एन0मदान ।

उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाऐं मिलती हैं। एक बड़े लेखक का कहना है कि संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गयीं हैं उनसे अपने आप को परिचित करना संस्कृति है। एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रूचियों की परिष्कृति या शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।'' [1]

हमने अस्तित्व रक्षा के लिये जो व्यवस्था विकसित की उसे सभ्यता कहा गया और सभ्य मानव ने अपनी आन्तरिक, मानसिक, आत्मिक उद्‌भावनाओं, अनुभूतियों विचार-प्रवाह तथा बोध लहरियों को जो रागात्मक व कलापूर्ण अभिव्यक्ति दी वह संस्कृति कहलायी। उदर क्षुधा शांत करने के लिये, भोज्य पद्धार्थ अर्जित करने के लिए, तन ढ़कने के लिये वस्त्र, सर छिपाने के लिए झोपड़ी पर्णकुटी या भवन निर्माण के निमिन्त एवं इन तमाम निर्मितियों के लिये साधन या उपकरण बनाने तथा उनका प्रयोग करने में ही प्रायः सभ्यता सक्रिय और सचेष्ट रही है। निजी रिश्ते नाते सामाजिक संबंधों की मर्यादा निर्धारित कर सभ्यता ने राज्य संगठन तथा अपने पांव पसारे। परन्तु सभ्यता की चेतना और अनुभूति में मानवीयता, सम्वेदना सिद्धान्त, आदर्श और सहष्णुता का जो अधिक प्रभाव रहा उस प्रभाव ने सभ्यता को संस्कृति का मुकुट पहनाया है। सभ्यता मस्तिष्क की ऊर्जा से पोषित है। संस्कृति ह्रदय की भावुकता से पुष्पित और फलित है। [2]

---

1. संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह दिनकर – प्रस्तावन पं0 जवाहर लाल नेहरू।
2. लोक संस्कृति अवधारणा और स्वरूप– अस्मिता पत्रिका – डॉ0 उदय त्रिपाठी।

संस्कृति का स्वरूप ऐसा अमूर्त है, तरल और जटिल है कि विद्वान उसे जीवन के विटप का पुष्प, जीवन की श्वास प्रश्वास, सृष्टि का नित्य प्रवाह जैसे प्रतीकों के सहारे परिभाषित करते हैं। संस्कृति का दायरा इतना व्यापक है कि वह अपनी महान कृतियों से कभी अतीत पर गर्व का अनुभव कराती है तो कभी पुरानी भूलों पर मर्माहत् भी करती है। वर्तमान के उन्नत जीवन से हम उस पर इठलाते हैं, तो बढ़ते जीवन संघर्ष में तड़पते भी हैं। हमें पता नहीं है कि दुनियाँ का भविष्य कितनी शुभ अशुभ संभावनों से गर्भित है। इस प्रकार संस्कृति त्रिकाल व्यापिनी है और त्रिगुणात्मक भी। उसमें पावन प्रसंगो की सात्विकता है, सासबहू की खटपट से लेकर खूनी क्रान्तियों तथा विश्वयुद्धों की तापसी उग्रता भी। ज्ञान ग्रन्थ उसकी स्मृति करते हैं, कलाऐं आरती उतरती हैं और भौतिक समृद्धि उस पर निछावर है। [1]

संस्कृति के सन्दर्भ में महादेवी वर्मा ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है ''एक व्यक्ति को पूर्णतया जानने के लिए जैसे उसके रूप, रंग, आकार, बोलचाल, विचार, आचरण आदि से परिचित हो जाना आवश्यक हो जाताहै, वैसे ही किसी जाति की संस्कृति को मूलतः समझाने के लिए उसके विकास की सभी दिशाओं का ज्ञान अनिवार्य है। किसी मनुष्य समूह के साहित्य, कला, दर्शन, आदि के संचित ज्ञान और भाव का ऐश्वर्य ही उसकी संस्कृति का परिचायक नहीं, उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति का साधारण शिष्टाचार भी उसका परिचय देने में समर्थ है।'' [2]

---

1. हमारी सांस्कृतिक गतिशीलता– श्री घनश्याम कश्यप – अस्मिता जिला पुरातत्व संघ दतिया प्रकाशन – 1991 ।
2. भारतीय संस्कृति के स्वर – महादेवी वर्मा – पृ0 1 ।

संस्कृति की अवधारणा का सारांश निकालें तो कहा जा सकता है कि शब्द निष्पत्ति की दृष्टि से सम उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' आगम और 'क्तिन' प्रत्यय योजित करके ''संस्कृति'' शब्द बनता है। संस्कृति शब्द उत्पत्ति के आधार पर मनुष्य की भूषण युक्त सम्यक कृतियाँ और चेष्टाऐं ही संस्कृति है। ये चेष्टाऐं देह, प्राण, मन बृद्धि आदि किसी भी इन्द्रिय द्वारा हो सकती है। इनका क्षेत्र लौकिक भी हो सकता है और पारलौकिक भी । स्मृति, पुराण आदि हमारी उत्तम कृतियाँ है। उनके निर्देश विधान ही सम्यक चेष्टाऐं हैं संस्कृति उन्हीं चेष्टाओं की निधि है।

लोक संस्कृति की अवधारणा-

लोक शब्द अत्यन्त प्राचनीं है। वेदों में भी वह शब्द आया है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरूष सूक्त में ''लोक'' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है। [1]

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्,
तथा लोकान कल्ययत् ।

संस्कृत व्याकरण के महर्षि पाणिनि ने अपनी अष्टध्यायी में ''लोक'' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है। ''ठञ्'' प्रत्यय करने पर ''लौकिक'' तथा ''सार्वलौकिक'' शब्दों की निष्पत्ति की है।[2] महाभाष्यकार पतंजलि ने भी जनसाधारण के अर्थ में 'लोक' शब्द का व्यवहार किया है। [3]

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ अन्धकार रूपी अज्ञान से व्यथित 'लोक' (सामान्य-जनता) की आँखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोलने वाला है।

अज्ञान तिमिरान्धस्यः
लोकस्य तु विचेष्टतः ।
ज्ञानाजंन शलाकाभिः
नेत्रोन्मीलन कारकम् ।[4]

महाभारत के आदि पर्व में ही वर्णित विषयों के संदर्भ में लोक यात्रा का उल्लेख किया गया है।

पुराणानां चैव दिव्यानां,
कल्पानां युद्ध कौशलम् ।
वाक्य जाति विशेषाश्चः ।
लोकयात्रा क्रमश्च यः। [5]

---

1. ऋग्वेद (पुरूष सूक्त) 10/90/24 ।
2. अष्टाध्यायी – महर्षि पाणिनि ।
3. अम्यन्तरोऽहं लोके न त्वहं लोकः । आह्निक (महाभाष्य) – 1 – पृ0 20 ।
4. महाभारत (आदिपर्व) 1/84 । 5. महाभारत (आदिपर्व) 1/69 ।

प्रश्न है – कि लोक शब्द का अभिप्राय क्या है? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ''लोक'' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते है कि लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है। बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई–वह समस्त जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। [1]

लोकसाहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ0 कुंजबिहारी दास ने लोकगीतों के संदर्भ में लोक शब्द की सटीक व्याख्या की है। उन्होंने कहा है ''लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसम्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।''[2]

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय लोक शब्द की परिभाषा इन शब्दों में करते हैं–

''आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथा कथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को ''लोक'' कहते हैं। जिनका आचार विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।'' [3]

अतः कहा जा सकता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से मुक्त हैं, अपनी मौलिकता के साथ पुरातन को वर्तमान में जीवित रखते हैं, ऐसे समुदाय या समाज को लोक की संज्ञा दी जाती है। इनकी संस्कृति और साहित्य लोक संस्कृति और लोक साहित्य कहा जाता है। यह लोक साहित्य लोगों को कंठस्थ होता है तथा इनकी लोकसंस्कृति इनकी जीवन शैली होती है। लिपि की कारा या नियम की जंजीरों में इसे नहीं बांधा जा सकता है। यही लोक जीवन की संजीवनी शक्ति है।

---

1. जनपद वर्ष – 1 अंक 1 पृ0 65 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
2. ए स्टडी आफ आरिसन फोकलोर – डा0 कुंज बिहारी दास ।
3. लोक साहित्य की भूमिका – डा0 कृष्णदेव उपाध्याय ।

लोक साहित्य के ऋषी पुरूष डॉ0 सत्येन्द्र जी का मत है कि लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं।'' [1]

इस प्रकार लोक संस्कृति का तात्पर्य उस संस्कृति से है जो परिवार, प्रेम, विवाह, लोक-विश्वासों, लोक–उत्सवों, प्रथाओं और परम्पराओं, जन्म-मरण के संस्कारों आदि के द्वारा अभिव्यक्त होती है।

'' यह सर्व मान्यता है कि भारतीय संस्कृति विविध संस्कृतियों का समन्वित स्वरूप है। इन विविध संस्कृतियों का बड़ा भाग लोकसंस्कृतियों द्वारा ही संगठित होता है। हमारा इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारत में राजाओं और राज्य की सीमाओं में चाहे जितने परिवर्तन बने बिगड़े हों पर लोक समाज की सामाजिक जीवन धारा इन परिवर्तनों से अप्रभावित रही है। भारत में जिस ''लोक'' और ''गणतंत्र'' का लोक समाज गठित किया गया था वह किसी न किसी रूप में आज भी हमारे जीवन में विद्यमान है। [2]

---

1. हिन्दी साहित्य कोष – 1 – पृ0 746 ।
2. लोक संस्कृति अवधारणा और स्वरूप – डॉ0 उदय त्रिपाठी ।
   अस्मिता पत्रिका – 1991 – जिला पुरात्व संघ – दतिया ।

''लोक'' शब्द समग्र – मानस की विराटता का द्योतक है। यह शब्द विशेषण की तरह नहीं वरन संज्ञा की तहर आम जनता में पहचाना जाता है। प्रत्येक जनपद के पास उसके निवासियों में उनके पूर्वजों की परम्परा की एक स्थाई विरासत होती है। यह विरासत है उस जनपद की लोक चेतना और लोक संस्कारों को विकसित करती है। लोक चेतना, लोक भावना और लोक संस्कारों के समन्वित स्वरूप को उस जनपद की या उस क्षेत्र विशेष की ''लोकसंस्कृति'' समझा जाता है। कहा जा सका है कि जैसे खेती करके 'वन' नहीं उगाये जा सकते, घड़ों से पानी डाल डाल कर तालाब नहीं भरे जा सकते, उसी प्रकार किसी विधि या विद्या या शिक्षा द्वारा लोक संस्कृति विकसित नहीं की जा सकती ।वहस्वयं भू है। वह तो लोक समाज के राग, अनुराग, आनन्द मंगल, शांति संतोष, उत्सव पर्व आचारविचार और संस्कार के व्यवहारों से ही फलती फूलती है।

यही कारण है कि लोकसंस्कृति के तत्वों का स्वरूप–व्यापक है। इसमें लोक जीवन के धार्मिक विश्वास, सामाजिक तथा जातिगत प्रथाऐं, पारवारिक विशेषताऐं, गर्भाधान, जन्म, विवाह, प्रेम–प्रणय, पर्व त्यौहार, लोक विश्वास, खानपान, रहनसहन, वेशभूषा, शकुन अपशकुन, कुलदेवा, ग्राम देवता, पूजारचा, जादू टोना, बाल गोपालों, कन्याओं के खेल, नृत्य और संस्कार गीत गानों की अनुभूति और अभिव्यक्तियों समाहित होती हैं। इसके साथ ही लोक गाथाओं, लोक कथाओं, लोक नाट्य और लोक सुभाषित, लोकोक्तियों तथा लोक गीतों में लोक संस्कृति मुखर होती है। इसी को लोक साहित्य और लोक-काव्य नाम से जाना जाता है।

बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति-

बुन्देलखण्ड– 'लोक–प्रधान' क्षेत्र है। यहाँ वन-जंगल-नदियाँ-पर्वतों की सघनता है। बुन्देलखण्ड के नगर बहुत बड़े या विशाल नहीं हैं। ग्राम जीवन और ग्राम संस्कृति बुन्देली जीवन में व्याप्त है। प्राचीन काल से ही बुन्देलखण्ड में 'आश्रम' और 'ग्राम' जीवन का प्रभाव रहा है। वैदिकयुग, रामयणकाल, महाभारत काल मौर्यशुंग काल तथा नागवाकाटक काल में बुन्देलखण्ड की पहचान विभिन्न नामों से मिलती है।

प्रसिद्ध इतिहास शास्त्री श्री आर0सी0 मजूमदार के विचारों का संदर्भ ले तो विदित होता है कि आर्यो ने विन्ध्य क्षेत्र में सैन्य बल का प्रयोग नहीं किया। ब्राहम्ण और क्षत्रियों ने यहां के वनों में कुटिया बनाई और आश्रम बनाये। इस प्रकार वनजीवन और आश्रम-जीवन पद्धति से बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का एक नया रूप प्रगट हुआ। [1]

चित्रकूट में अत्रि अनुसूया आश्रम के संकेत आज भी देखने को मिलते हैं। वाल्मीकि रामायण में ''अत्रिआश्रम'' चित्रकूट के निकट ही चित्रित किया गया है। अत्रिपत्नी अनुसूया आर्य नारी के आदर्श जीवन की प्रतीक बन गयी है।[2] मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम ने अपने वनवास का अधिकांश समय चित्रकूट में ही व्यतीत किया था। रामचरित्र मानस में गोस्वामी तुलसीदास अध्योध्याकाण्ड में लिखते हैं कि–

---

1. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इंडियेन पीपुल, वैदिक एजः आर0सी0 मजुमदार 1965
2. बाल्मीकी रामायण –

चित्रकूट रघुनंदनु छाए । समाचार सुनि सुनि मुनि आए ।

आवत देखि मुदित मुनिवृंदा । कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा ।

''श्रीराम रघुनाथ जी चित्रकूट में आ वसे हैं, यह समाचार सुन सुन बहुत से मुनि आये। रघुकुल के चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी ने मुदित हुई मुनि मण्डली को आते देखकर दण्डवत प्रणाम किया। [1]

आगे गोस्वामी जी लिखते हैं कि–

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नव निधि घर आई ।

कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ।।

श्रीराम जी के आगमन का समाचार जब कोल भीलों ने पाया तो वे ऐसे हर्षित हुए मनों नवों निधियां उनके घर पर ही आ गयी हो। वे दोनों में (पत्तों से बनाया गया कटोरा पात्र) कंद मूल फल भर भर कर चले, मानों दरिद्र सोना लूटने चले हों। [2]

इस वर्णन को पढ़कर स्पष्ट दिखता है कि उस युग में बुन्देलखण्ड में यदि मुनिगण अपने आश्रम बनाकर रह रहे थे तो कोल भील जातियाँ भी यहाँ के वनों के आसपास निवास कर रही थी। दोनों का जीवन वनसम्पदा पर आश्रित था। उस समय इस क्षेत्र में लोकसंस्कृति पनप चुकी थी। 'श्रीराम' के स्वागत में कोल भीलों ने शिष्ट समाज के व्यंजन नहीं परोसे थे वरन कंद मूल फल आदि दोनों में भर भर कर लाये थे।

---

1. श्री रामचरित्रमानस – गोस्वमी तुलसीदास 133 (दोहा)
2. रामचरित्रमानय– गोस्वामी तुलसीदास दोहा – 133 – 135 ।

''महाभारत के वन पर्व में कालिंजर, चित्रकूट मंदाकिनी आदि का वर्णन मिलता है। आदि पर्व में चेदि कालीन संस्कृति को संकेत मिलते हैं। चेदि क्षेत्र (बुन्देलखण्ड) प्राचीन काल में अत्यन्त रमणीय और समृद्ध था। वह धन धान्य से पूर्ण था। अपनी रक्षा करने में समर्थ था।''

महाभारत के 'वनपर्व' में युधिष्ठिर द्वारा वन्य नर्तकों, अभिनेताओं एवं कलाकारों को सहयोग देना और ''विराट पर्व'' में अर्जुन का वृहन्नला बनकर गीत, नृत्य, वाघ आदि की शिक्षा के प्रसंग से जाहिर होता है कि बुन्देलखण्ड का लोक समाज लोककलाओं के प्रदर्शन में कुशल था। बुन्देली लोक संस्कृति ने पाण्डवों को प्रभाविता किया था। [1]

इन उदारहणों से प्रमाणित होता है कि रामायण काल और महाभारत काल में भी ''बुन्देली लोक संस्कृति'' अपने पूर्ण स्वरूप में विद्यमान थी।

खजुराहो की मूर्तियों को देखकर कहा जा सकता है कि उस काल में बुन्देली स्त्रियां आंखों अंजन, अधरों में अधरराग और पैरों में महावर लगाया करती थीं। विवाहित स्त्रियां मांग में सिंदूर भरा करती थीं।

''रूपकषटकम्'' में विवाह संस्कार का विवरण मिलता है। कन्यापक्ष विवाह का प्रस्ताव लाता था। मुर्हुत शोधन होता था। विवाह संस्कार कन्याग्रह में ही सम्पन्न होता था। बारात शिविरों में ठहराई जाती थी। कन्यादान आदि संस्कार होता था। पतिव्रत धर्म का आदर्श प्रचलित था।[2]

---

1. बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास– डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त (1995) पृ037 ।
2. रूपकषटकम् पृ0 190 – वत्सराज ।

प्राचीन लोकोत्सवों के कृषि पर्व प्रमुख होते थे। ''आल्हा'' के समय कजरियां उत्सव भाई बहिन के पिवत्र प्रेम का प्रतीक हो गया था।

बुन्देलाकाल में बुन्देलखण्ड की राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र ओरछा बन गया था। गोड़ों और बुन्देलों ने बुन्देली लोक संस्कृति को उत्कर्ष पर पहुंचा था। बुन्देलखण्ड में कोल भील शबर किरात एवं द्रविण जातियाँ रही हैं। उनसे ही कई लोक मूल्य और लोक विश्वास आए हैं।

वृक्ष पूजा, बलिप्रथा आदि कोलों से, मूर्तिपूजा और अवतार की कल्पना द्रविड़ से तथा मंत्र किरात जातियों की देन हैं। गोड़ों के आदिपुरूष शिव और स्वयं गौड़ बाबा लोकदेवता के रूप में पूजने लगे। सार यह है कि <u>बुन्देली लोक संस्कृति की धारा सभी प्रवाहों को अपने में समेटकर निरंतर गतिमान रही है।</u>

बुन्देली लोकसंस्कृति को समझने के लिए विद्वानों ने इसका वर्गीकरण भिन्न भिन्न रूपों में किया है। लोक साहित्य में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याती प्राप्त विदुषी श्रीमती सोफिया बर्न ने लोकसंस्कृति का श्रेणी विभाजन निम्न प्रकार किया है। [1]

1. वे विश्वास और आचरण जिनका संबंध निम्नांकित वस्तुओं से हैं।

   1. पृथ्वी और आकाश — 2. वनस्पति जगत

   3. पशुजगत — 4. मानव

   5. मनुष्य निर्मित वस्तु — 6. आत्मा और पुर्नजन्म

   7. अतिमानवी व्यक्ति (देवी/देवता) — 8. शकुन, अपशकुन, भविष्य वाणी आदि।

   9. जादू – टोना – टोटका — 10. रोग, बीमारी

2. रीति रिवाज–
   1. सामाजिक तथा राजनीतिक ।
   2. व्यक्तिगत जीवन के विधिविधान ।
   3. व्यवसाय, पेशा तथा उद्योग धन्धा ।
   4. वर्ष में होने वाले व्रत और त्योहार ।
   5. खेल कूद और मनोरंजन के साधन ।

3. लोककथा, गीत और सुभाषित–

   1. लोक कथा — 2. लोकगीत और लोक गाथा

   3. लोकोक्तियां और पहेलियां — 4. पद्यबद्ध लोकोक्तियां और स्थानीय सुभाषित।

---

1. हैण्ड बुक आफ फोकलोर– सोफिया बर्न (फोकलोर सोसाइटी लण्डन) 1914 ।

प्रो0 एलेकजेण्डर एच0 क्रेपी ने भी लोकसंस्कृति साहित्य पर पर वृहद अनुसंधान किया। उनके अनुसंधान के निष्कर्ष उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ''दिसाइन्स आफ फोकलोर'' में प्रकाशित हुए हैं। [1]

प्रो0 क्रेपी में – ने लोकसंस्कृति के अध्ययन हेतु कोई श्रेणी विभाजन तो नहीं किया है पर प्रो0 क्रेपी ने अपनी पुस्तक में जिन विषय शीर्षकों की चर्चा की है– उनको इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. परी-कथा 2. हास्य-कथा 3. पशु-कथा 4. स्थानीय अवदान 5. भ्रमण-शील-कथा 6. लोकोक्तियाँ 7. लोकगीत 8. लोकगाथा 9. पहेलियाँ 10. लोक-विश्वास 11. वनस्पति संबंधी विश्वास 12. पशु-पक्षी संबंधी विश्वास 13. जादू टोना टोटका 14. लोक-नाटय् और लोक-नृत्य 15. धातु आकाशीय-पिण्ड तथा सृष्टि संबंधी विश्वास 16. लोकधर्म ।

लोक संस्कृति और लोक साहित्य के भारतीय विद्वान डॉ0 कृष्णदेव उपध्याय के विचार से लोकसंस्कृति को पाँचवर्गो में विभाजित किया जा सकता है [2] :–

1. लोक-विश्वास तथा अन्ध-परम्परायें।
2. संस्कार, आचार-विचार तथा विधिविधान ।
3. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाऐं।
4. धार्मिक तथा आध्यात्मिक मान्यताऐं।
5. लोक-साहित्य ।

---

1. ''दि साइन्स ऑफ फोकलोर''– एलेकजेण्डर क्रेपी ।
2. लोक संस्कृति की रूपरेखा – डा0 कृष्णदेव उपाध्याय ।

डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त ने बुन्देली लोक संस्कृति के अध्ययन को सुगम बनाने के लिए निम्नांकित शीर्षकों में बुन्देली लोक संस्कृति को प्रस्तुत किया है। [1]

1. चिंतन
2. आचरण
3. लोक देवत्व
4. लोकोत्सवता
5. संस्थाऐं

लोकसंस्कृति के इन तमाम पक्षों और वर्गों को ध्यान रखकर बुन्देलीलोक संस्कृति और वर्गों के अध्ययन हेतु निम्नलिखित शीर्ष बिन्दुओं पर केन्द्रित रहता समीचीन होगा।

1. बुन्देली-लोकाचार और लोक-विश्वास
2. बुन्देली लोक-संस्कार
3. बुन्देली लोक-देवता/ग्राम-देवता
4. बुन्देली लोक-त्यौहार पर्व और उत्सव
5. बुन्देली लोकाभूषण
6. बुन्देलखण्ड के लोक नृत्य

---

1. बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास– डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त ।

बुन्देली लोकाचार-

लोक में प्रचलित ''आचार'' को लोकचार कहते हैं। 'आचार' व्यक्ति के स्तर पर व्यक्ति के संस्कार और लोक के स्तर पर लोक संस्कृति को प्रगट करते हैं लोक संस्कार, लोकरीतियाँ, लोक प्रथाऐं और लोक वर्जनाओं का समन्वितयोग ही लोकाचार बन जाता है। 'विष्णु धमोत्तर पुराण'' की शिक्षा है कि

''पुरूष यदि आचार रहित है, तो उसे न तो विद्या की प्राप्ति होती है और न लक्ष्य की।आचारवान को स्वर्ग, कीर्ति,आयु, सम्मान तथा लौकिक सुखों की प्राप्ति होती है।'' [1]

लोकाचारों की परम्परा अति प्राचीन है। लोकाचारों का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदास जी के श्रीरामचरित मानस में अनेक स्थानों पर मिलता है। जन्म के समय विवाह के समय तथा अंतिम संस्कार के समय लोकाचारों का वर्णन बालकाण्ड, अयोध्याकाण्उ तथा उत्तरकाण्ड में प्रचुरता से वर्णित है।

बुन्देली लोकाचारों के संबंधों में डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि–

''रामायण काल में वैदिक आचार ऋषियों मुनियों के साथ आये थे। इस अंचल (बुन्देली अंचल) की निषाद और शबरी जातियों ने श्रीराम का स्वागत किया था। रामायण के निषाद और शबरी प्रसंग इसके प्रामाणिक साक्ष्य है। आदि जातियों (बुन्देली) के धार्मिक आचारों में धरती, जल, वृक्ष, नाग और पशु–पूजा तथा महामारी एवं पशुपति की भक्ति प्रमुख थी। वे कृषि, शिकार और देवों से संबंधित उत्सवों को मनाते थे। नयी ऋतुओं के स्वागत में समारोह करते थे।'' [2]

---

1. विष्णु धमोत्तर पुराण – 3/250/4 तथा 3/271/1
2. बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास पृ0 163 ।

चरखारी नरेश गंगासिंह देव द्वारा प्रकाशित ''विवाहगीतावली'' में बना (दुल्हा) की नजर निछावर, लगुन, सीधौ छूना, करैया धरना, छेईमाटी, मड़वा गड़ना, चीकट उतरना, मायनौ, मटयानौ, मैर को पानी भरना कंकन पूरना, राछ फिरना, निकासी, टीका, चढ़ायो, सुहागलेना, कन्यादान, भावर, पंगत में गारीगाना कुंवर कलेउ, दायजौ सोपना, बंद खोलना विदा, देवता पूजन, कंकद छोरना, मौचाइनों आदि लोकाचारों का विस्तृत वर्णन है। [1]

बुन्देली लोक कथाओं में लोकाचारों का अमूल्य कोश भरा है। पुत्रों के मंगल के लिए हरछट और संतान साते की पूजा होती है। इसी प्रकार महालक्ष्मी, दशारानी तीजा आदि पूजाओं का प्रचलन लोक प्रसिद्ध है।

शिशु के जन्मोत्सव के अवसर पर अनेक लोकाचार है। 'ननद' पच के अवसर पर 'चंगेर' बाजे गाजे के साथ लेकर आती है। नवजात शिशु के मंगल के लिए–उसे ''हायं'' पहनाई जाती है। भाभी ननद को ससम्मान विदाई भेंट देती है। बच्चे की नजर उतारने के लिए 'राई नौन' की प्रथा आम है।

प्रसूता को पानी पिलाने के लिए ''चरूआ'' रखा जाता है। ''चरूआ'' अर्थात् मिट्टी के एक मटके में पानी भर कर उसमें ''दसमूल'' (जटी बूटियां) की पोटली डालकर पानी उबाला जाता है। इस पानी को ठंडा करके प्रसूता को दिया जाता है।

विवाह शादियों और जन्म उत्सवों के अवसरों पर महिलाऐं नृत्य करती हैं। गाना गाती है। लहंगा चुनरियां नृत्य में महिलाओं की खास पोशाक होती हैं। नृत्य के समय मृदंग कसावरी (बिलिया), झींका, ढोल मंजीरा संगत के वाद्य होते हैं।

1. विवाह गीतावली – गंगासिंह देव (चरखारी नरेश द्वारा प्रकाशित) ।

''गौरइयां'' का लोकाचार बुन्देलखण्ड में बहुत प्रचलित है। जब 'वर' पक्ष के पुरूष बरात चलाकर कन्यापक्ष के नगर या ग्राम चले जाते हैं । घर पर महिलाऐं ही रहतीं है। इस अवसर पर ''गौरईया'' का लोकाचार पूरा किया जाता है। कुछ खास महिलाओं को जो नाते रिश्तेदारों की भीं होतीं है और पास पड़ौस के व्यवहार की भी होतीं है, आमंत्रित किया जाता है। एक खास पूजा रचा करके इन आमंत्रित महिलाओं को दूधभात और पकवान परोसे जाते हैं। रात्रि में ये सभी महिलाऐं– नाना प्रकार के हास परिहास के खेल खेलती है। स्वांग बनाये जाते हैं। महिलायें रात भर खेल तमाशे कर मनोरंजन करती है। स्वांगों को विशेष नाम ''बाबा'' कहकर पुकारते हैं। यह लोकाचार पुरूषों की अनुपस्थिति में घर की सुरक्षा और महिलाओं की आत्मरक्षा की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण होता है। इसमें गीत आदि भी गाये जाते है। ये गीत श्लील और अश्लील होते हैं।

लोकाचार के अन्तर्गत बस्त्राभरण भी आते हैं। बुन्देली लोक जीवन में साफा, पगड़ी अंगोछा, टोपी सिर के बस्त्र हैं । शेष परिधानों में कुर्ता धोती, अंगरखा, बण्डी, कमीज आदि पुमुख है। पुरूष कंधे पर पटका (एक प्रकार का उत्तरी), तौलिया या साफी प्रायः डालते हैं। महिलायें लंहगा चुनरिया, धोती चोली, बलाउज पेटीकोट आदि बस्त्र धारण करतीं है। माथे पर बिन्दी, मांग में सिंदूर पैरों में बिछिया विवाहित महिलाऐं पहनतीं है। ग्रामीण महिलाऐं मराठी महिलाआं की तरह ''कछौटा'' लगाये धोती पहनतीं हैं। महिलाओं की धोती ''धुतियां और पुरूष की धोतीं – ''परदनीं'' कहलातीं है। बुन्देलीं लोकाचार में विशेष रूप से ग्रामों बहुऐं (बधुऐं) घूंघट निकालतती है। घुंघट मान मर्यादा लज्जा शील का प्रतीक माना जाताहै। स्वागत सत्कार में ''रामराम'' – जैरामजी' पांयलगें आदि सम्बोधन होते है। छोटे बड़ों के चरण स्पर्श करते हैं। लोंग, इलाइची, शरबत आदि प्रारंभिक स्वागत की सामग्री है। पुरुष वर्ग में चिलम

बीड़ी देने लेने का प्रचलन भी कहीं कहीं प्रचलित है। [1]

बुन्देली लोकाचारों से बुन्देली लोकसंस्कृति की सौम्यता, शिष्टता, व्यवहार–कुशलता, धार्मिकता और पारवारिक सामाजिक स्वाभिमान, सम्मान आत्मरक्षा की चेतना आलोकित होती है ?

---

1. लोकाचरण– डा0 गनेशीलाल बुधौलिया – पृ0 95 – 98 ।

बुन्देली लोक-विश्वास-

आत्मिक और मानसिक स्तर पर किसी मान्यता की व्यापक स्वीकृति लोक विश्वास बन जाता है। लोकमान्य और लोक में प्रचलित 'विश्वास' लोक विश्वास कहलाते हैं। ये विश्वास लोक अनुभवों से अर्जित होते हैं। स्थूल रूप से लोक विश्वासों के दो रूप हैं-

1. एक वह जो प्रमाणिक आधारों पर मान्य हुए ।
2. दूसरे वह जो प्रमाणित आधार रहित हैं ।

प्रमाणित आधारों में बने लोकविश्वासों में कुछ पौराणिक मान्यताओं से निर्मित हुए और दूसरे लोक अनुभवों और लोक मान्यताओं द्वारा प्रचलित हुए हैं। लोकविश्वास इतने अधिक और विविध प्रकार के हैं कि उन सबका विवरण देना स्वयं में एक वृहद् कार्य है।

अध्ययन को सुगम बनाने के लिए लोक विश्वासों को निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है।

1. प्रकृति संबंधी लोक विश्वास
2. धार्मिक लोक विश्वास
3. कृषि संबंधी लोक विश्वास
4. पशु-पक्षी संबंधी लोक विश्वास
5. आकाशीय पिण्ड संबंधी लोक विश्वास [1]

---

1. लोकसंस्कृति की रूपरेखा – डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय पृ0 48 ।

सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो बुन्देली लोक विश्वास प्राचीन जनपदीय संस्कृति यक्ष संस्कृति, और आर्यों की आश्रमी संस्कृति का सार संचित रूप बन गये हैं। सूर्यदेवता की शक्ति, नदियों, पर्वतों और ऋतुओं की ऊर्जा पशुपक्षियों की प्रतीकतात्मक अनुभूतियों से लोक विश्वास का झरना वह निकला है।

अनुभव के आधार पर यह विश्वास लोक व्याप्त हो गया कि तीतर के पंखो जैसे बादल अवश्यक बरसते है नेत्रों में काजल लगाने वाली विधवा किसी न किसी पुरूष के घर में रम जाती है।

तीतर बारी बादरी, विधवा काजर रेख ।

बौ बरसै बौघर करै, जामैं मीन न मेख ।।

इसी लोक विश्वास को आचार्य भड्डरी इस तरह व्यक्त करते हैं।

तीतर बरनी बादरी, रहे गगन पर छाय ।

डंक कहै सुनु भड्डली, बिन बरखै न जाय ।।

इसी तरह एक विश्वास है कि 'बर' (बरगद) की पूजन करने से 'वर' (पति) के प्राणों की रक्षा होती है। जेठ के महिने में अमावश के दिन बुन्देली नारियाँ वर पूजा का व्रत इसी विश्वास के कारण रखती है।

''तुलसी'' का पौधा भारतीय जीवन में और लोक जीवन में अनेक विश्वासों का प्रतीक हो गया है। धार्मिक दृष्टि से तुलसी को 'हरिप्रिया' माना जाता है– अर्थात विष्णु की प्रिया है। बुन्देलखण्ड के ग्रामों प्रायः सभी घरों में ''तुलसीघरा'' होता है जिसमें ''तुलसी'' लगी होती है। नारियाँ प्रति दिन तुलसी के पौधे पर जल चढ़ाती है। सायंकाल इस पौधे के समीप घी

का दीपक जलाती है। कार्तिक में बैकुण्ठी चौउदस को तुलसी की विशेष पूजा की जाती है। लोक विश्वास है कि ''तुलसी'' घर परिवार के कल्याण में सदा सहाय होती हैं।

'' पांच पदारथ सोना पाई ।

तुलसी महारानी एहि जग मांही '' ।।

''गाय'' – को गऊमाता की तरह माना जाता है। गाय के लिए रसोई के पहली रोटी रख ली जाती है। गाय के विभिन्न अंगों में भिन्न भिन्न देवताओं का निवास माना जाता है। लोक विश्वास है गाय मृत्यु के पश्चात अन्य लोक को जाते समय वैतरणी नदी को पार कराने में सहायक होती है। इसीलिए गाय की पूंछ पकड़कर जीवन के अंतिम दिनों में लोक गोदान करते हैं।

लोक जीवन में ''कौआ'' के संबंध में अनेक लोक विश्वास प्रचलित हैं।

बुन्देलखण्ड में कौआ को प्रेतात्माओं तक भोजन पहुंचाने का अनन्यतम माध्यम माना जाता है। पितृपक्ष में ''कौआ'' को पूड़ी या रोटी आदि अलग से दी जाती है।

इसी प्रकार मनुष्य के कान व आंख संबंधित अनेक लोक विश्वास प्रचलित है। बुन्देली जीवन शैलियों पर भी लोक विश्वासों का अच्छा खासा प्रभाव है। एतद कई प्रकार की विधि निषेध प्रचलित हैं। नये बस्त्र पहनने के लिए लोक विश्वास के आधार पर कहा जाता है'' कपड़ा पहने तीन बार बुध, वृहस्पति, शुक्रवार। 'बुधवार' को बेटी की घर से विदा नहीं की जाती है। यात्रा के नवें दिन घर लौटना वर्जित होता है। शनिवार को तेल क्रय नहीं

किया जाता है। हाँ तेल शनिदेव पर अवश्य चढ़ाया जाता है। रात्रि में दाहसंस्कार नहीं होता है।[1]

प्रसूता स्त्री अपनी चारपाई में सदैव लोहा रखती है। बाहर निकलने पर भी लोहा लेकर जाती हैं। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से प्रेतात्माओं से अनिष्ट होने की आशंका नहीं रहती। [2]

बुन्देली लोक देवता/ग्राम देवता-

भारत में प्रायः हर प्रान्त या क्षेत्र में ग्रामदेवताओं की पूजा होती है। बुन्देलखण्ड में भी अनेक देवी देवताओं की पूजा प्रचलित है। बुन्देली लोक मानस में इनकी प्रतिष्ठा वैसी ही जेसे शिष्ट संस्कृति के मानस में श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री शिव, मां दुर्गा, मां काली या श्री हनुमान आदि देवताओं की प्रतिष्ठा है। ये देवता लोक की किसी भावना विशेष के प्रतीक है।

बुन्देली लोक देवताओं को इन वर्गो में जाना जाता है :-

(1) प्रकृति देवता – भूमि, पर्वत, नदी, वृक्ष आदि ।

(2) स्थल विशेष के देवता– गांव की देवी, खेरमाई, घटोइया, पौरिया बाबा।

(3) जाति विशेष के देवता– कारसदेव, ग्वालबाबा, गुरैयादेव, मसान बाबा, गौड़बाबा ।

(4) शरीर रक्षक देवता– शीतला माता, मरई माता, गंगामाई ।

(5) विवाह संस्कार पर पूज्य देवता– दूलादेव, हरदौल, गौरा, श्री गणेश ।

(6) संतान रक्षक देवता– रवकारू बाबा, बीजासेन, बेइयायात ।

(7) कुलदेवता– गोसाई बाबू, सप्त मातृकाऐं ।

(8) विध्नहरण देवता – श्री गणेश, पितृदेव, संकटा देवी आदि ।

ग्राम देवताओं की उत्पत्ति कैसे हुई वह एक शोध का विषय हो सकता है। फिर भी यह ह सर्व मान्य मत है कि अनेक प्रकार की देवियों भैरव, वृक्ष और सर्प आदि को पूजने का सिलसिला, भारत की उन आदिम जातियों से प्राप्त हुई जो आर्यो के आगमन से पूर्व यहां निवास करती थी। ग्राम देवताओं देवियों की संख्या अधिक हैं। ग्राम देवताओं के बहुत विशाल मंदिर नहीं होते हैं। एक छोटी सी मड़िया में या वृक्ष के नीचे किसी चबूतरे पर ही

य प्रतिष्ठित कर दिय जाते हैं। कुछ प्रसिद्ध देवियों की भूतियाँ देखने को मिल जाती हैं जैसे दुर्गा – या भावनी। प्रायः अनगढ़ पत्थरों द्वारा ही इनको व्यक्त मान लिया जाता हैं। देवता स्थल की पहचान के लिए ऐसे स्थानों पर एक दो त्रिशूल गड़े होते हैं। वहीं पास के वृक्ष पर एक ध्वजा बंधी रहती है। [1]

1. दुल्हादेव– ये वास्तव में गोड़ों के देवता माने जाते हैं पर बुन्देलखण्ड के अहीर जाति के देवता माने जाते हैं। कहा जाता है कि कोई अहीर अपनी नव परिणीता वधु के साथ घर जा रहा था । किसी पुरूष ने मार्ग में उस स्त्रीको कंकड़ मार दियां इस कारण दानों को आत्मग्लानि हुई। दोनों ने अपने प्राण त्याग दिये। दूल्हादेव की कई कथाऐं मिलती ।

2. गुरैया दाई (देवी)–

यह 'रहूनी की देवी है। रहूनी उस स्थान को कहते हैं जहां घर से बाहर निकलकर मवेशी इकट्ठे होते हैं। इस स्थान के बाद चारागाह के लिए चरने जाते हैं। पुशओं की कल्याण कामना के हेतु ''रहूनी'' के पास गुरैया अर्थात गो रक्षक गोरा देवी की स्थापना की जाती है।

3. घटोरिया बाबा (घटोई बाबा)–

नदी के किनोर वालों गांव में घटोरिया बाबा के चबूतरे होते हैं। नदी के घाट के देवता होने के कारण इन्हें घटोई बाबा कहतें हैं। नदी के प्रकोप से तथा आवागमन में यह देवता रक्षा करते हैं। बुन्देलखण्ड नबबधू के नदी पार करने पर इन लोकदेवता पर नारियल, पूड़ी आदि अवश्य चढ़ाया जाता है। इनकी पूजा से यात्रा शुभ हो जाती है।

---

1. लोकवार्ता:– अंक 3 दिसम्बर 1944 – सम्पादक कृष्णानंद गुप्त ।

4. खेरापति–

खेरापति या खेरादेव की प्रतिष्ठा भी ग्राम देवता के रूप में है। ऐसी मान्यता है कि खेरापति ग्रामवासियों की नाना आपत्तियों से रक्षा करते हैं। बूढ़े, बाबा खाकी बाबा, भैरोंबाबा, सिद्धबाबा, नामों से भी खेरापति के चबूतरे बने होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है ये देवता आदिम संस्कारों के रूप में मान्य हैं।

5. कारसदेव–

कारसदेव बुन्देलखण्ड की पशु पालक जाति के एक वीर देवता हैं। यही कारण है आम जन इन्हें अहीरों और गूजरों का देवता मानते हैं। बुन्देलखण्ड में सभी जगह ''कारसदेव'' के चबूतरे पाये जाते हैं। कारसदेव और उनके भाई सूरपाल की मूर्ति प्रतीक दो गोल मटोल पत्थर की बटइयाँ इन चबूतरों पर प्रतिष्ठित होतीं हैं। चबूतरे के पास मिट्टी के बने दो चार घोड़े खड़े कर दिये जाते हैं। चबूतरे पास ही सफेद कपड़े के ध्वज बाँसों में लगे होते हैं। कृष्ण चतुर्थी और शुक्ल चतुर्थी को रात्रि में लोग इन चबूतरों पर एकत्र होते हैं। पूजा की जाति। इस पूजा में एक घुल्ला भी होता है। घुल्ला के सिर पर ही कारसदेव आते हैं। कारसदेव की सवारी जब घुल्ला के सिर पर आती है तब वह रस्सी उठा उठा कर 'हूं हूं' की हुंकार भरता है। रस्सी को इधर उधर मारता जाता है। सवारी के आहवान के लिये डमरू और घुंघरू लगी ढोलक पर गीत गाये जाते हैं। ये गीत गोटें कहलातीं हैं। इसमें कारसदेव एवं अन्य वीर पुरूषों के आलौकिक साहसिक कार्यों का यशोगान होता है।

6. लाला हरदौल जू– लाला हरदौल ऐतिहासिक महत्व के देवता हैं। बुन्देलखण्ड के

लोक जीवन में लाला हरदौली का चरित्र परम उदात्त और उज्जवलता का प्रतीक है। लाला हरदौल के चरित्र पर सुन्दर काव्यकृतियां भी रची गयी हैं। बुन्देली स्त्रियां लाला हरदौल के चरित्र गान के गीत विभिन्न अवसरों पर गाती हैं। बुन्देली वीर हरदौल विष पीकर भी अमर हो गये। इस अमरत्व के कारण मंगल कार्यों पर गृह देवियां हरदौल का पूजन करती हैं। विवाह संस्कारों के अवसर पर लाल हरदौल देव को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है।

हरदौल जू के चबूतरे पर मनोतिया मानी जाती हैं। पूजा की जाती है। लाला हरदौल जू की प्रशस्ति में यह लोकोक्ति प्रंचलित हैं –

''महाराजा बुन्देला नगर ओरछा भ्यान ।

जियत किये बहु पुण्य, मरै पै थपे जगत में आन।'' [1]

हमारे हरदौल लाला ऐसे गजत हैं,

जैसे इन्द्र अखाड़े ।

पवन के हनुमत हैं रखवारे ।

काना सो दल ऊनये हो

लाला काना करै मिलाप

बुन्देला देस के हो, रैया राव के हों

बेटा साब के हों, तुमरी जोय रही तरवार।

बिजली चमके चंबल मांय। [2]

---

1. लोकाचरण – डॉ0 गनेशीलाल बुधौलिया – पृ0 60 ।
2. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य– रामचरण हयारण मित्र पृ0 175 ।

7. शीतला देवी–

नीम के वृक्ष पर इन देवी का वास माना जाता हैं। शीतला देवी का प्रकोप न हो इसी लिये इनकी पूजा की जाती है। ऐसी मान्यता है शीतला देव शांति और शीतलता प्रदान करतीं हैं। बुन्देलखण्ड में स्माल पोक्स रोग को ''माता'' कह कर पुकारते हैं। बच्चों को जब स्माल बॉक्स निकल आती हैं तो कहते हैं कि ''माता' निकल आयीं है''। इस रोग की शांति के लिये शीतला देवी की पूजा विशेष रूप से की जाती है।

8. भैंरव बाबा–

ग्राम देवताओं में भैरव बाबा का भी बहुत महत्व है। प्रत्येक गांव में किसी न किसी भैरव की पूजा अवश्य होती है। स्थान और जाति भेद से भैरव बाबा के कई नाम प्रचलित है। काल भैरव, गौड़ भैरव, खेर के भैरव, सेजवार के भैरव, सूती के भैरव आदि। भैरव की पूजा वाल्मीकि समाज और दरजी समाज में विशेष रूप से होतीं है। सामान्य रूप से सभी समाजों में ''भैरव देवता'' को पूजने की परम्परा है। इन देवता को रोट, देवल, नारियल आदि चढ़ाते हैं। निश्चित पर्वो पर इनकी पूजा होती है। बीमारियों के फैलने पर इनकी पूजा खासतौर पर की जाती है। कई जातियाँ बकरे का बलिदान देकर भैंरव देव को प्रसन्न करतीं हैं।

9. भुइयाँ बाबा–

यह सर्प देवता है। आषाढ़ शुक्ल 14 तथा अगहन शुक्ल 14 को इनकी पूजा होती है। पूजा में भात, बेलन की बंली हुई सात रोटियां और उर्द के बने मगौरा चढ़ाये जाते हैं। इनकी चौतरी या चौरी बनी हातीं है। कुछ स्थानों में ये खेत या धरतीं के देवता माने जाते है और कहीं कहीं 'खेतपाल' या 'क्षेत्रपाल' भी कहलाते हैं।

10. बरमदेवी –

हिन्दुओं में वट वृक्ष पवित्र माने जाते हैं। इनमें वरमदेव अर्थात, ब्रहमदेव का वास समझा जाता है। इन पर लोग प्रतिदिन जलढार करते हैं (जल चढ़ाना)। जनेऊ, खिचड़ी, चरण पादुकाएं इन्हें अर्पित की जाती हैं।

11. कुलदेवता बाबू–

प्रत्येक घर में कुलदेवता की पूजा वर्ष में दो बार होती है। कुल देवता को ''बाबू पूजा'' कहते हैं। इसमें एक परिवार के सभी सदस्य उपस्थित होते हैं। मिट्टी की एक चौतरिया निर्मित कर ली जाती है। यह चौरसिया पूजा में प्रयोग होती है। इसपर सूता का या हाथ का कता बुना फरका रखा जाता है। इस पर कुल देवता की छाप अंकित की जाती है। गेहूं चावल की आखत डालकर ''बाबू'' की पूजा की जाती है। बाबू की पूजा में पांच या सात कोरा रखे जाते है। नारियल चढ़ाया जाता है। इन कोरों को परिवार के सभी सदस्यों में वितरित किया जाता है।

बाबू शब्द कैसे बना एतद् लाल कृष्णवंशी सिंह बाघेल का कहना है कि संस्कृत की एक धातु 'वय' है अर्थात् बोना। इसी से बन गया 'वप्र' अर्थात खेत। जिसमें वोया जाय वह 'वप्र' हुआ कालान्तर में 'वप्र' मिट्‌टी के चय (संचय) मे प्रयुक्त होने लगा। अर्थात जहां बोया जाता है वह 'वप्र' और जिससे रक्षा होती है वह भी ''वप्र'' है। फिर यह भाव जागा कि जो बोता है उत्पन्न करता है और जो रक्षा करता है उसे 'वप्र' कहा जा सकता। अर्थात् किसानों के खेत ही रक्षक है खेत ही माईबाप है। आदर की दृष्टि से देखने पर पिता और खेत एक से कर्तव्य करते हैं। इस प्रकार 'वप्र' कहने में पिता का बोध होने लगा। यही 'वप्र' हिन्दी में पहुंचते

पहुंचते बपा बप्पा (मोर बप्पा अरे बापरे) बापा (बाया रावल) को रूप परिवर्तन करके बाप बन गया। वही रूप परिवर्तन की धारा में बह कर बापू बन गया। बापू हिन्दी के व्यापक क्षेत्र में फैलता हुआ बाबू हो गया। [1]

बाबू की पूजा से लोक धारणा बनी कि परिवार रक्षको की यह पूजा है ।

---

1. बाबू शब्द की व्युत्पति– लाल कृष्ण वंश सिंह बाघेल लोकवर्ता– अंक 3 पृ0 109 ।

बुन्देली लोक-संस्कार-

मानव जीवन की शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं को संस्कार कहा जा सकता है। व्यक्ति के देहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठान संस्कार होते हैं।[1] ऐसी मान्यता है कि संस्कारों के सविधि अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव होता जाता है।

जैमिनीय सूत्र में कहा गया है कि संस्कार वह है जिसके होने से पदार्थ या व्यकित किसी कार्य के योग्य हो जाता है। [2]

''संस्कारों नाम स भवति यस्मिज्जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य''

संस्कारों में तीन कर्म सम्पन्न होते हैः–

1. दोष मार्जन
2. अति शयाधान
3. हीनांगपूर्ति

प्रकृति के द्वारा पैदा किये गये पदार्थ में कवि दोष हो तो उसे दूर करना दौषमार्जन संस्कार होता है।

व्यक्ति या पदार्थ को अधिक उपयोगी बनाने के लिये उसमें कुछ विशेषता उत्पन्न कर देना अति शयाधान संस्कार होता है। फिर भी कोई त्रुटि शेष हो तो उसको दूर करने के उपाय या क्रिया को हीनांपूति संस्कार कहते हैं। [3]

'षोडश संस्कार'' को विद्धानों की सर्व मान्यता प्राप्त है। ये इस प्रकार हैं–[4]

1. गर्माधान 2. पुंसवन 3. सीमान्तो नयन 4. जातकर्म
5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्न प्राशन 8. चूर्णाकर्म
9. कर्णभेद 10. उपनयन 11. वेदारम्य/विधारम्य 12. समावर्तन
13. विवाह 14. वानप्रस्थ 15. सन्यास 16. अत्येष्टि

---

1. हिन्दू संस्कार – डॉ0 राजबली पाण्डेय पृ0 19 ।
2. जोमिनीय सूत्र 3/1/3 – शबर भास्य ।
3. वैदिक विज्ञान और भातरीय संस्कृति – म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी पृ0 209 ।
4. वैदिक साहित्य संस्कृति और दर्शन– डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी। पृ0 105 ।

बुन्देली लोक संस्कार इन्हीं संस्कारों से मिलते जुलते हैं। बुन्देली लोक समाज में सामान्यतः लोकसंस्कारों की परम्परा निम्नांकित है–

1. पुंसवन संस्कार – फूल चौक
2. विवाह संस्कार
3. गौना संस्कार
4. अगन्ना संस्कार
5. मुण्डन संस्कार
6. जनेऊ/उपनयन संस्कार
7. अत्येष्टि संस्कार

फूल चौक पुंसवनसंस्कार– बुन्देली लोक संस्कारों में पुंसवत संस्कार का प्रचलन है। इसको लोक भाषा में ''फूलचौक'' कहते हैं। जब युवती वधु बन कर ससुराल में आती है और ससुराल में प्रथम बार ''मासिक धर्म'' से होती है उसके 'ऋतुस्नान' के बाद चौक में बैठाकर पूजन क्रिया की जाती है। इस चौक पूजन को 'फूल चौक' पुकारा जाता है। वधु के सिर पर पानी में फूले चने डाले जाते हैं।

2. विवाह संस्कार – जीवन का यह सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। इस संस्कार में अनेक कार्यक्रम सम्पन्न होते है। विवाह संस्कार की प्रथम रस्म फलदान होती है। फिर सगाई कार्यक्रम होता है। कहीं फलदान की रस्म धूमधाम से मनाई जाती है और कहीं सगाई की बारात जाने के पहले निकासी होती है। विवाह संस्कार की तिथि निश्चित हो जाने पर कन्यापक्ष वर पक्ष को सुतकरा भेजता है। सुतकरा एक प्रकार से विवाह कार्यक्रम की सूचना है। उसे पुरोहित (पंडित) लिखकर तैयार करते हैं। वर पक्ष की ओर से कन्यापक्ष के घर बरात आती है। बुन्देली में बारात आगमन को ''आगौनी'' कहते हैं। दूल्हा और दुल्हन को सजाया जाता है। टीका, भांवर, पलकाचार, कुंवर कलेवा पंचडेरा आदि रस्मों सम्पन्न होती है। इन सब में मूल रस्म है–भांवर जिसे बुन्देली में ''भाओरें'' कहते हैं।

3. गौना संस्कार– विवाह के पश्चात् जब विवाहिता कन्या अपनी ससुराल (प्रथमबार) जाती है इस प्रथा को गौना या गवना कहते हैं। गवना या गौना विवाह के पश्चात एक या तीन या पांच वर्षों के अन्तराल से होता है। गौना प्रायः फाल्गुन महीने में कराना प्रशस्त माना जाता हैं । किसी शुभदिन वर अपने सगे संबंधियों के साथ गौना कराने जाता है। गौने में विशेष बात है कि वर के पिता को वर के साथ जाना निषिद्ध होता है। वर जब बहू को लेकर अपने घर पहुंचता है तो वह अपनी पत्नी के साथ बांस की बनी ''छबड़ी'' में पैर रखता है। इस ''दौरा'' रस्म कहते हैं। बॉस को वंश सन्तति का प्रतीक माना जाता है। इसमें पैर रखना सन्तान–उत्पत्ति की सहमति का घोतक है। ''कंकण मोचन'' के बाद गवना की विधि पूरी होती है। फिर पति पत्नी का मिलन होता है। अब बड़ी आयु में लड़के लड़कियों के विवाह प्रारंम्भ हो गये हैं। अतः गौना संस्कार का महत्व भी कम होता जा रहा है।

4. अगन्ना संस्कार–

बहू के गर्भधारण के 8 वां माह पूरा होने पर 9 वां माह प्रारंभ होने पर ''अगन्ना संस्कार'' सम्पन्न किया जाता है। गर्भवती बहू और उसके पति को जोड़ी से एक चौक पर बैठाया जाता है। मांगलिक मन्त्रोचार के साथ – दोनों के सिर पर ''बिला'' डाले जाते हैं। ''बिला'' अर्थात् ''अंकुरित चना''। पेड़ा और नौ प्रकार के पकवान बनाकर गर्भावती बहकी गोदी भरी जाती है। आंगतुको ''बुलउआ' अर्थात भेंट जिसमें बतासा, लड्डू आदि होते हैं, वितरित किया जाता है। कहीं कहीं दावतें भी होती है। बहू के मायके से भी बस्त्र, पेड़ा पकवान आदि विशेष रूप से आते हैं। देवर ''भाभी'' के कान में वंशी बजाता है। ऐसा समझा जाता हैं ''गर्भ'' में स्थिति शिशु का यह जन्म लेने के पूर्व का स्वागत और आगमन हेतु मांगलिक आमंत्रण है। इसीलिए इसका नाम ''आगन्ना'' पड़ा है। इस अवसर पर गीत विशेष गाये जाते हैं। [1]

---

1. बुन्देलखण्ड की लोक मान्यताऐं (लेख)– डॉ0 गनेशीला लाल बुधौलिया ।

5. मुण्डन संस्कार–

शिशु के जन्म के विषम वर्षों में अर्थात् एक,तीन,पांच,सात,नौ आदि में मुण्डन संस्कार किया जाता है। इस संस्कार के पूर्व 'केश' कटवाने को शुभ नहीं माना जाता है। इस संस्कार में मुख्य कार्य तो बालक के केशों को उस्तरे द्वारा सिर से उतार देना ही किन्तु इस कर्म के पूर्व मांगलिक पूजन आदि होता है। प्रत्येक समाज में पृथक पृथक स्थान निश्चित है, जहां बालक बालिका के मातापिता संगे संबंधी के साथ जाकर यह संस्कार सम्पन्न कराते हैं। प्रायः केदारेश्वर, उन्नाव, बालाजी, ओरछा, अछरूमाता, कुण्डेश्वर अक्षरादेवी आदि देव स्थानों में मुण्डन संस्कार सम्पन्न कराया जाता है। बालक के कटे हुए बालों को 'बुआ' अपने हाथों में लेती हैं। फिर उन्हें आटे की लोई में गूंथकर किसी नदी में बहा दिया जाता है। 'बुआ' को सात मीठे बुआ दिये जाते है। इस दान विशेष का नाम ''सता'' है। इसे नेंग कहते हैं। नाई को दक्षिणा दी जाती है। कुछ परिवारों में मैर की पूजा के साथ मुण्डन संस्कार होता है। बालक के जन्म के बाद घर परिवार में जब पहला विवाह संस्कार होता है उसी में बालक का मुण्डन संस्कार करा लिया जाता है। महिलायें इस संस्कार में गीत विशेष गाती है।

6. 'उपनयन' अथवा 'जनेऊ' संस्कार–

बुन्देलखण्ड में उपनयन संस्कार को लोक भाषा में 'जनेऊ होना' कहते हैं। यह संस्कार भी बालक के जन्म के विषम वर्षों में सम्पन्न होता है। प्राचीन काल में 'जनेऊ' संस्कार के बाद ही बालक 'गुरु' के पास पढ़ने जाते थे। इसलिये इसे उपनयन संस्कार भी

उस्तरे से उतारा जाता है। नाखून काटै जाते हैं। शरीर में हल्दी तैल मर्दन किया जाता है। छाता धारण कराया जाता है। बालक को शिक्षा दी जातीं कि वह दिन में सोयेगा नहीं, पेड़ पर चढ़ेगा नहीं, स्त्रियों से मेल मिलाप नहीं बढ़ायेगा। यह संस्कार एक प्रकार से अध्ययन के समय ब्रहमचारी जीवन व्यतीत करने के लिए संकल्पित कराने वाला संस्कार है। लगभग 10–15 वर्ष के तपस्वीं जीवन के लिए प्रतिज्ञा करना और सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त से प्रतिबद्ध होने की प्रेरणा देने वाला संस्कार है। इस अवसर भी लोक गीतों को गाया जाता है।

7. अंत्येष्ठि या अंतिम संस्कार–

यह जीवन का अंतिम संस्कार है। प्रायः सभी जगह यह संस्कार प्रचलित है। इस संस्कार को बुन्देली भाषा में ''अंतिम संस्कार'' कहते है। कहीं कहीं – इसे दाहसंस्कार भी पुकारते है। जब किसी व्यक्ति के जीवन के अंतिम क्षण आने लगता है, जीवित रहने की आशा क्षींर्ण हो जातीं है। उसी समय से इस संस्कार की क्रिया प्रारम्भ हो जातीं है। इस संस्कार के सर्वप्रथम व्यक्ति को खटिया या चारपाई या पलंग से उठाकर 'जमीन' में लेटा दिया जाता है। इसे ''भूमि सेन'' पर आना भी कहते हैं। इसी अवस्था में व्यक्ति के मुंह में गंगा जल तुलसी दल डाला जाता है। सम्पन्न लोग उस व्यक्ति से दान पुण्य भी कराते हैं। गाय दान को सबसे श्रेष्ठ दान माना जाता है। इसे 'गोदान कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे व्यक्ति की मृतात्मा ''वैतरणी' नामक नदी को आसानी से पार कर लेती है।

जब व्यक्ति के देह से प्राण तत्व निकल जाता है तो मात्र मृतशरीर ही शेष रहता है। इस मृत्य शरीर को बुन्देली लोक भाषा में ''मट्टी'' कहते हैं। इस ''मट्टी'' का पंडित पूजन आदि कराते है। शरीर पर पिण्ड रखे जाते हैं। बांस की अर्थी सजाई जाती है। उस पर कांस

आदि विछाया जाता है। मिट्‌टी को ''अर्थी'' पर रख दिया जाता है। पंचों और समाज के साथ ''शवयात्रा '' निकाल कर 'अर्थी' को दाहसंस्कार के स्थल पर ले जाते हैं। दाहसंस्कार स्थान निवास स्थान से दूर खेत बगीचे, कुंआ आदि के पास ही निश्चित किये जाते हैं। यहां लकड़ियों की ''चिता'' बनाई जाती है। उस पर 'शव' को रख दिया जाता है। इसके बाद पंडित पूजन आदि की क्रिया कराते हैं। चिता प्रायः आम, बेल, करघई, महुआ आदि लकड़ी से बनाई जाती है सम्पन्न परिवार के लोग चिता बनाने के लिए चंदन लकड़ी की व्यवस्था भी करते हैं। प्रायः व्यक्ति का ज्येष्ठ या कनिष्ठ पुत्र ही चिता को मुख्य अग्नि देता है। इसे बुन्देलखण्ड में ''क्रिया'' करना कहते हैं। ''क्रिया'' करने वाले को कई नियमों का पालन करना पड़ता है। जैसे दस दिनों तक शरीर पर तेल न लगाना, हजामत न बनाना, जूता न पहनना बिना तलाभुना सादा भोजन करना जिस स्थान पर व्यक्ति प्राण त्यागता है उस स्थान पर 13 दिन तक दीपक जलाया जाता है। पीपल के पेड़ के नीचे भी दिया जलाया जाता है। फिर ग्यारवीं या त्रियोदशी की जाती है। इस समय दान पुण्य भी किया जाता है। इस दान पुण्य में बुन्देलखण्ड में प्रायः एक कलश (या लोटा) जनेऊ गीता, चंदन की राम जपनी माला और एक तौलिया आदि दिये जाते हैं। पंडित को चारपाई, चारपाई के वस्त्र, पांच या सात बर्तन आदि दान में दिये जाते हैं। इस क्रिया को ''श्राद्धकर्म'' कहते हैं ''श्राद्ध'' कर्म के साथ ''अंतिम संस्कार'' का विधान पूरा होता है।

बुन्देली लोकोत्सव-

पूजापाठ जपतप व्यक्ति द्वारा होते हैं। लोकोत्सव समाज के द्वारा मनाये जाते हैं। इसमें व्यक्ति प्रधान न होकर समाज प्रधान तत्व होता हैं। मनुष्य का मानवीय पक्ष सामाजिक और सामूहिक व्यवहारों और उत्सवों में ही मर्मस्पर्शी और मंगलदायक बनता है। लोकोत्सव उत्साह उमंग और मंगल की सामूहिक आस्था और विश्वास के भी संयोजक हैं । लोक उत्सवों में व्रत, त्यौहार तथा लोकमेला आदि को सम्मलित किया जाता है। तीज त्यौहार लोक जीवन में प्रेम विश्वास और निजत्व रस को प्रवाहित करते हैं।

बुन्देलखण्ड वन और कृषि प्रधान क्षेत्र हैं। यहां के लोकोत्सवों पर इसीलिये ऋतुओं की गहरी छाप है। बुन्देली उत्सवों की यदि ऋतुओं के अनुसार विवेचना करें तो वे इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं।[1]

1. बसंत ऋतु में प्रचलित त्यौहार, व्रत और मेला

बंसत ऋतु में मनाये जाने वाले वृत, त्योहार इस प्रकार हैंः-

1. गनगौर पूजन, 2. श्री नवदुर्गा पूजन 3. श्रीराम जन्मोत्सव

इस ऋतु में बुन्देलखण्ड में जवारों का मेला, और अछरूमाता का मेला भी ओयाजित होता है।

---

1. बुन्देलखण्ड दर्पणः- झांसी महोत्सव - 1998 षष्ट बिम्बः ।

2. ग्रीष्मऋतु के व्रत

इस ऋतु में अक्षय तृतीया का व्रत ही प्रमुख रूप से लोक समाज में प्रचलित है।

3. वर्षा ऋतु के तीज-त्यौहार, व्रत तथा मेला

वर्षा ऋतु में सर्वाधिक व्रत, त्यौहार तथा मेलों का आयोजन बुन्देलखण्ड में होता है। इनका विवरण इस प्रकार है।

1. सावित्री व्रत
2. कुनघुसूं
3. सावन तीज
4. नागपंचमी
5. भूंजरियन का मेला
6. रक्षा बन्धन का त्यौहार

इसके अतिरिक्त भादों मास के प्रमुख त्योहार हैं :-

भादों मास में :-

1. हरछट का व्रत
2. श्री कृष्ण जन्माष्टमी
3. हरतालिका व्रत
4. गणेश जन्मोत्सव
5. संतान सप्तमी व्रत
6. ऋषी पंचमी व्रत
7. अनन्त चतुर्दशी व्रत
8. महालक्ष्मी व्रत
9. नवरात्रि
10. दुर्गापूजन
11. जलबिहार मेला
12. मामुलिया पूजन
13. सुझटा
14. पीरवादशाह का मेला

4. शरद ऋतु के तीज, त्यौहार, व्रत और मेले

शरद ऋतु के तीज, त्यौहार, व्रत इस प्रकार हैं:-

1. कार्तिक स्नान का व्रत और मेला
2. दीवाली
3. गोवर्द्धन की पूजा
4. भाइया दोज
5. देवोत्थानी एकादशी

6. बैकुण्ठी चतुर्दशी

5. हेमन्त ऋतु के तीज-त्यौहार व्रत तथा मेले

हेमन्त ऋतु में भी अधिक लोकोत्सव मनाये जाते हैं। इस ऋतु के प्रमुख उत्सव इस प्रकार हैं:-

1. संकटा व्रत 2. श्रीकाल भैरव जयन्ती

3. श्रीराम विवाह पंचमी मेला

6. शिशिर ऋतु के तीज-त्यौहार व्रत तथा मेले

शिशिर ऋतु के प्रमुख तीज त्यौहारों निम्नांकित हैं:-

1. मकर संक्रान्ति का व्रत तथा मेला

2. भमरांत का पर्व 3. होलिकोत्सव

4. शिवरात्रि व्रत तथा मेला 5. करूला पांचे

6. उन्नाव का फाग मेला 7. खुजराहो का मेला

जवारों का मेला:-

बुन्देलखण्ड में नवदुर्गा पूजन और जवारों का मेला सर्वाधिक लोकप्रिय लोकोत्सव है। चैत्र शुक्ल प्रतिवदा से नवदुर्गा का पूजन प्रारम्भ हो जाता है। उसी दिन मिट्टी के घड़ों में जवारे बोये जाते हैं। जौ का बोना ही जवारे बौना कहलाता है। जवारें की नौ दिन प्रतिदिन पूजन होता है। नवे दिन संध्या काल में स्त्रीपुरूष जवारो को सजाकर सिर पर रख के जुलूस के रूप में भ्रमण करते हैं। इस अवसर पर गीत गाये जाते हैं। यह एक प्रकार से अन्न का सम्मान करने वाला उत्सव है। इस उत्सव में इतना उल्लास और उमंग रहती है। लोक समाज मानों इसमें डूब जाता है। जवारों की यात्रा में समाज या परिवार का मुखिया अर्थात प्रमुख थाली

में चौमुखी दीपक जलाकर जवारों क आगे आगे चला है। उसके पीछे कुछ व्यक्ति त्रिशूल (जिसे बाना पुकारते हैं) लेकर चलते हैं। नगर या ग्राम में सैकड़ों टोलियां इसी रूप में निकलती हैं। सामूहिक जवारों की यात्रा मनमोह लेती है। इन जवारों को किसी के पास जलाशय या सरिता में विसर्जित कर दिया जाता है। इस मेले में महिलाऐं और पुरूष लोकगीत गाते है। यह गीत प्रमुख हैः–

उड़ चल रहे परवत वारे सुवना

घर आंगना न सुहाय मोरी मांय ।

कै उड़ चल मैया बाग बगीचा ।

कै विन्ध्याचल डांग हो मांय ।

जवारों का मेला आदि शक्ति भगवती की मान्यता से जुड़ गया है। बुन्देलखण्ड में शक्ति दायक और सिद्धपूरक उत्सव प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहे हैं काछी, धीमर, गड़रिया, कोरी, धोबी, चौधरी, महतर आदि जातियों में इस लोकोत्सव की सर्वाधिक मान्यता है।

2. कजरियां मेला– कजरियां या भुजरिया का त्यौहार बुन्देलखण्ड में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। श्रावण शुक्ल नवमी के अपराहन महिलाओं के समूह मिट्‌टी लेने जाते हैं। पहले खदान का पूजन करती है फिर गेहुं जौके दाने मिट्‌टी से पूरकर खदान को खोदती हैं। अच्छी माटी संग्रह कर घर लाती है। इस मिट्‌टी में गोबरखाद मिलाकर छेवले के पत्तों से बने दोने में गेहू और जौ मिलाकर बो दिये जाते हैं। दोनो ढक कर रख दिये जाते हैं। प्रतिदिन पानी, दूध से इन्हें सींचा जाता है।

समय से गेहूं और जौं की पीले रंग की पौध निकल आती है। किसी क्षेत्र में भादों की कृष्ण प्रतिपदा को और किसी क्षेत्र में सावन की पूर्णिमा को कंजरियाँ किसी तालाब में खोंटी और सिराई जाती है। घर में विधिविधान से पहले इनका पूजन होता है। राखी चढ़ायी जाती है। भोग लगाया जाता है। झूला झुलाया जाता है– फिर स्त्रियाँ समूह में एकत्र होकर इनहें सिर पर रखकर तालाब ले जाती है। तालाब में कंजरियाँ खोंट कर दोनों को सिरा दिया जाता है। तालाब से लोटते समय डगर में जन समूह भारी संख्या में पथ के दोनों किनारे खड़े हो जाते हैं। स्त्रियां सभी को कंजरिया देती जाती हैं। आगे बढ़ती जाती है। लोग इन कजरियों को माथे से स्पर्श करके उनका आदर कते है। कजरियों के बोने, खोंटने और देने में भेदभाव नहीं किया जाता है। हर जाति और समुदाय के लोक इसमें सम्मलित होते हैं। बुन्देलखण्ड के निवासी मुसलमान और ईसाई भी इन कजरियों का सम्मान करते हैं। बुन्देलखण्ड का यह लोक त्यौहार नारी पुरूष के परस्पर प्रेम स्नेह और सौहाद्र का प्रतीक है। दूसरे अर्थो में यह हरित क्रांति की पूजा का उत्सव है।

भाई बहन के प्रेम को यह लोकोक्तियाँ प्रगट करतीं हैं।

आसों के साउन घर के करौ आगूँ के देहों कराय ।
सोने की नादें दूदन भरीं सो कजरियों लेव सिराय ।

कुनघुसूं–

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को बुन्देलखण्ड के प्रायः प्रत्येक घर में ''कुनघुसूं'' का त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार घर की वधुओं को सम्मान देने को प्रतीक है। सांस स्वयं घर के चारों कोनों को पोतनी मिट्टी से पोतकर चारों कोनों में चार पुतलियाँ हल्दी से चित्रित करती है। चंदन, अक्षत और पुष्प चढ़ाकर गुड़घृत का नैवेध लगाकर आरतीं उतारतीं हैं।

प्रार्थना करती है हे परमेश्वरी वहू। घर में लक्ष्मी बन, धन धान्य और संतान से इस घर को मंगलमय बनाना।'' यह त्यौहार भारत की उस चेतना का पोशक है कि ''जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं।''

मामुलिया–

आश्विन कृष्ण पक्ष में मामुलिया बुन्देली कन्याओं का लोकप्रिय त्यौहार है। इस त्यौहार को अविवाहित कन्याऐं मनाती है। बेर वृक्ष की एक डाली लेकर पुष्पों से सजाती हैं। फिर अपने पुरा पड़ौस में द्वार द्वार जाकर सामूहिक गान गाती हुई ''मामुलिया'' का प्रदर्शन करती है। इस अवसर पर यह लोकगीत अवश्य गाया जाता है।

ल्याओं – ल्याओं, चंपा चमेली के फूल
सजाओं मेरी मामुलिया।
मामुलिया के आये लिबैआ।
झमक चली तेरी मामुलिया। [1]

बेर बुन्देल का प्रमुख वृक्ष होता है। लोक समाज बेरों का बहुत प्रयोग करता है। एक लोक कहावत है ''महुआ बेर कलेवा'' अर्थात बुन्देलखण्ड में महुआ और बेर का कलेवा करना प्रचलित । फसल धोखा दे जाए तो बेर, महुआ, आदि फल ग्रामीण जनताओं को भुखमरी से बचाते हैं। बेर की डाली का यही प्रयोजन हो सकता है।

---

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य– रामचरण हयारण मित्र 314 ।

पारवारिक संदर्भ से कहा जा सकता है कि अविवाहित कन्याओं में यह भावना भरी जाती है कि जैसे बेरी में फूल, फल और कांटे होते हैं–वैसे ही कन्याओं में पुष्प जैसी सुवास संतान रूपी फल देने की क्षमता हैं। यह जीवन कष्टों और सुखों का मेलजोल है। कांटे दुखका प्रतीक हो सकते हैं। मामुलिया का त्यौहार प्रकारान्तर से ''हरपरिस्थिति'' में मिलजुल कर जीवन निर्वाह करने की प्रेरणा देता है।

नौरता -सुअटा–

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष प्रारंभ होते ही बुन्देलखण्ड में कन्याओं का त्यौहार ''सुअटा'' मनाया जाने लगता है। यह पर्व 'नवरात्र' के दिनों में होता है इसलिये इसे 'नवरता' या लोक भाषा में ''नौरता'' कहते हैं। इसमें घर के बाहर चबूतरे पर पूर्व दिशा के सम्मुख दीवार से सटाकर लगभग दो फुट ऊंचाई और लम्बाई के क्षेत्र में ''सुअटा'' का आसन बनाया जाता है। इसमें एक दैत्य, सूर्य तथा चन्द्रमा की आकृति बनायी जाती है। छोटी छोटी नौ सीढ़ियों बनाई जाती है। आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को सूर्योदय के पूर्व आसपास की कन्याऐं उस स्थान पर समूह में एकत्र हो जाती । चबूतरे को लीप कर नाना प्रकार के चौक पूरती हैं। स्वयं तैयार किए हुए रंग आदि भरती हैं। शिव पार्वती की पूजा के लिए कन्याऐं प्रतिदिन शिव गौरा की मूर्तियाँ बनाती है।

जनश्रुति है कि सुअटा नाम कोई दैत्य कुमारियों को कष्ट पहुंचा था। उसी से मुक्ति पाने के लिये यह पूजन प्रचलित हुआ। कुमारियों की रक्षा दो भाई सूरज और चंदा करते हैं। इस उत्सव में कन्याऐं सामूहिक गीत गाती हैं। मंगलाचरण गीत इस प्रकार है–

''हिमांचल की कुंअर लडाएंती
नारे सुअटा गौरा बाई मेरा तौरा नाएं

यह उत्सव अविवाहित कन्याओं में कत्तर्व्यबोध जागता है। विवाह के बाद प्रत्येक कन्या को दूसरे घर जाना होता है। उसके उत्तरदायित्व बढ़ जाते हैं। कन्या भावी जीवन के संचालन का प्रशिक्षण ऐसे लोक त्योहारों से लेती हैं। सुआटा के यह गीत यही संदेश दे हो रहा हैं :-

''उगई न रे वारे चंदा

मो घर होय लिपना पुतना

सास न होय दे दे गारियाँ

ननद न होय कोसे बरियां

जौ के फूल तिली के दाने

चन्दा ऊगे बड़े भुसारे

सात दिनों तक गीतों का यही क्रम चलता है। आठवें दिन काएं उतारी जाती हैं। काएं गिरने का अर्थ है भाई बन्धुओं के हितों और मंगल की कामना करना। 'भस्कूं' होती है। मीठे और नमकीन पकवान बनाकर अंतिम दिन पूजन होता है। यौवन की देहरी पर खड़ी कन्याओं के कोई न कोई राक्षस परेशान करता ही हैं ऐसे संकट से बचने के लिए शक्ति को संचित करना चाहिए। ग्राहस्थ संस्कृति के यथार्थ से परिचय करना पारवारिक आदर्श पिता और ससुर की पगड़ी का सम्मान नारी का, सम्मान करना इस लोकोत्सव का हेतु है। [1]

---

1. अस्मिता– पत्रिका– लेख प्रभुदयाल गोस्वामी । पृ0 65 – 1991 ।

बुन्देलखण्ड के लोक-नृत्य-

लोकनृत्यों की सृजना का कोइ शास्त्र नहीं होता है। नर्तक और लोक समाज के उल्लास की अभिव्यकियों की एक शैली ही लोकनृत्य बन गये है। लोकनृत्य लोक जीवन के संस्कार परम्परा और विश्वास को विकसित करते है। लोकनृत्य प्रायः सामूहिक होते हैं।

बुन्देलखण्ड में चार प्रकार के लोक नृत्य देखने को मिलते हैं–

1. आदिवासियों के लोक-नृत्य :–
2. पारवारिक लोक-नृत्य –
3. सार्वजनिक लोक-नृत्य
4. अनुष्ठानिक लोक-नृत्य

1. आदिवासियों के लोक-नृत्य– बुन्देलखण्ड की लोककलाओं पर वनजातियों और जनजातियों की सर्वाधिक प्रभाव है। आदिवासी लोक नृत्यों में वनसंस्कृति का सौन्दर्य अभिव्यक्ति होता है। जनजातियों का जीवन संगठित जीवन शैली और सामूहिक संस्कारों की धुरी के चारों और घूमती है।

(अ) शैताम-नृत्य– शैताम नृत्य भोई जाति में अधिक प्रसिद्ध हैं। यह विवाह संस्कार के अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य में डमरू के आकार का ढांक बजाता ओझा बीच में

पृष्ठ संख्या– 59, 60 तथा 61 को शून्य मानें।

एक गीत के बोल यहां अंकित हैं–

माई रे रामा को मैंने कहा बिगारो बालम मिले नादान ।

पींसन जैहों, संग लग जैन्हें, सखीरी बालम मिले नादान।

(ब) करमा लोक-नृत्य– बुन्देलखण्ड की भूमियां, कांवर और गौड़ आदिवासी लोक जीवन में करमानृत्य प्रचलित है। धार्मिक दृस्टि से 'करमानृत्य' श्री कृष्ण की रास लीला के समरूप माना जा सकता है। इसमें पुरूष और महिलाऐं समूह में नृत्य करते हैं। जीवन के संचालन में 'कर्म' प्रधान होता है। इसी जींवन दृष्टि को आभासित कराने के लिए ''करमानृत्य'' अपना विशेष महत्व रखता हैं। फसल के आ जाने के बाद ही 'करमापर्व' मनाया जाता है। इसमें करम वृक्ष की शाखा को किसी मैदान बीच गाड़ देते हैं। इस करमा की शाखा या डार को हार फूलों तथा दही चावल से पूज कर यह नृत्य किया जाता है। करम की डार को करमा राजा मान लिया जाता है। इस नृत्य में गतियोजना, पद संचलान संगीत लयताल के अनुसार करमा नृत्य के कई रूप प्रस्तुत किये जाते हैं। इनको लहकी करमा थादी करमा, झूमर करमा, झुलनियों करमा कहते हैं। इसमे गाये जानेवाले एक गीत के बोल हैं:–

या चोला का मत करो गुयान

बचावे बारो कोउ नइयारे..........

कौड़ी कौड़ी माया जौरे, हो गओ लाख करोर,

निकर प्रान बाहरे हो गये – मिंचका – मिंचका होय।

(स) सुआनृत्य– सुआनृत्य अन्नपूर्ण एकादशी के दिन स्त्रियों द्वारा किया जाता है। इस दिन स्त्रियों व्रतरखती हैं। सांयकाल मिट्टी का तोता बनाकर एक थाली में रखकर घर घर घूमती हुई नृत्य करती हैं। इस नृत्य में स्त्रियों सामान्यता पीले और हरे बस्त्र पहनती है। कानों में धान की बालियों खोंस लेती हैं। इस में भी गीत गाये जाते हैं। स्त्रियाँ तालियाँ बजाती हुई नृत्य करती चलती हैं। तोता प्रतीक रूप में नारी जीवन की एकान्त पीड़ा को दर्शाता है।

2. पारवारिक-नृत्य– बुन्देलखण्ड में पारवारिक नृत्यों का रिवाज भी बहुत हैं। पारवारिक नृत्य जन्म और विवाह के अवसरों पर प्रायः होते हैं। इन नृत्यों के कई रूप हैं।

(अ) चंगेर–नृत्य– इसे झूला और कलश नृत्य भी कहते हैं। शिशु के जन्म के समय बुआ सिर पर चंगेर या मंगल कलश रखकर नाचती है। इस नृत्य में गाये जाने वाले गीतों को सोहरे और बधाये कहते हैं।

भैया तो मुहरइया उतार

लै ले चंगरिया दुआरे में

खड़े खड़े मोरी बैया पिरानी

भैया हों.................

(ब) लाकौर-नृत्य– यह नृत्य विवाह के अवसर पर किया जाता है। बारात के डेरा पर स्त्रियों और बालिकाऐं लाकौर लेकर जाती हैं। वहां वे मृदंग की थाप पर नृत्य करती हैं। इस नृत्य को रास बंधवा भी कहा जाता है। नृत्य के साथ बन्नीं गीत गाया जाता है।

रूकन झूकन बेरी मंडप डोले आजुल लये हैं उठाय,

कै मोरी बेटी तुम सांचे में ढारी कैं गढत्रे हैं चतुर सुकर ।

(स) **बहू-उतराई-नृत्य–** विवाह के बाद नवबधु के प्रथम आगमन पर आनन्द की उमंग में 'सास' बहू का स्वागत करतीं हुई नाचती है। बहू को भी इस नृत्य में सहभागी बनाया जाता है। सास के अलावा नाते रिश्ते की बुजुर्ग महिलायें भी यह नृत्य करती हैं। इस अवसर भी गीत गाये जाते हैं।

बहू लिवाय घर आये,

कैसी भली जौ सगुन चिरैया

जौ सगुन मनाये।...........बहू

इसी प्रकार पारवारिक अन्य उत्सवों पर पारवारिक नृत्य किये जाते हैं।

3. **सार्वजनकि लोक-नृत्य–** सामाजिक भावना से पूर्ण नृत्यों को सार्वजनिक लोक नृत्य कह सकते हैं। ये नृत्य वैयक्तिकता से परे होते हैं। बुन्देलखण्ड की सामाजिक रचना श्रम केन्द्रित है। श्रम की थकान को दूर करना सार्वजनिक नृत्यों के हेतु बन जाता है। समुदाय विशेष का मनोरंजन करना भी इन तत्यों का अभीष्ट होता है। इस नृत्यों के भी कई प्रकार हैं।

(अ) **सैरा लोकनृत्य–** यहा नृत्य शिकार युग की सभ्यता का अवशेष प्रतीत होता है। आजकल शरद ऋतु की चांदनी रात में पुरूषों द्वारा यह नृत्य किया जाता है। पुरूष अपनी पगड़ी में मोर पंख खोंस कर हाथों में सजीधजी बड़ी-बड़ी डंडियां लेकर नाचते हैं।

ढोल या मादर की ताल पर डंडों के आपस में टकराने से जो लयात्मक चोट ध्वनि होती है वह सैरा नृत्य को गति प्रदान करती है। यह नृत्य की कई रूपों में होता है।

इस नृत्य के प्रारंभ में जो तान दी जाती है वह है:–

तर हर नाना रा नारे नाना रे

(ब) **दिवारी - नृत्य–** यह नृत्य दिवारी के पर्व पर किया जाता है। अहीर तथा ग्वाले मौन व्रत धारण करके यह नृत्य करते है । इसी कारण लोक भाषा में यह ''मौनिया'' नाम से भी जाना जाता है। इस नृत्य में नृत्य मण्डली का मुख्य नर्तक हाथों में ''मोर पंख की मूठ'' लिये रहता है। शेष सहभागी नर्तक पीठ के वस्त्र में मोर पंख खोंसे रहते हैं। मुख्य नर्तक की पोशाक रंग विरंगी और आकर्षक होती है। अन्य नर्तक घुटनों तक की परदनी धोती या जांघिया पहने रहते हैं। सभी नर्तकों की कमर में ''घुघरू'' की पट्टी या बंध बंधा होता है। नाचते समय घुंघरूओं की ध्वनि की लय मुख्य आकर्षण बन जाती है।

''दिवारी लोक नृत्य'' में प्रमुख वाघ ढोलक नगड़िया और कसाबरी होते हैं। ''दिवारी'' गीतों में कृष्ण के चरवाहे और ग्वालों के रूपों का बखान होता है।

''ऊँची गुवारे बाबा नंद की, चढ़ देखें जसोदा मांय।

आज बरेदी को भओ, मोरी यह दुवरै लौटी गायरे । [1]

1. बुन्देलखण्ड दर्पण – अष्टम बिम्ब झांसी महोत्सव 2002 लेख श्रीमती मधु श्रीवास्तव पृ0 127 ।

(स) राई लोक-नृत्य– बुन्देली ग्राम समाज में ''राई नृत्य'' सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसमें नाचने वाली नर्तकियों को ''बेड़नी'' नाम से जाना जाता है। वैसे तो यह नृत्य वर्ष भर होता है किन्तु रागात्मक अभिव्यक्ति के कारण यह फाल्गुन मास में विशेष रूप से कराये जाते हैं। नर्तकी नौकली घांघरा, चोली पारदर्शी बड़ी ओढ़नी पहने होती है। राई के तेल से जलती मशाले लेकर मशालीची नर्तकी के आसपास रहता है, जिससे नृत्यकी की कायिक और मानसिक भाव भंगिमाओ को देखा जा सके। इस नृत्य में मुख्य वाद्य ''मृदंग'' होता है। साथ में ढोलक नगड़िया, मंजीरा झींका, तुरही और रमतूला आदि बनाये जाते है। इस नृत्य में बुन्देली की फागें प्रायः गाई जाती है। श्रंगारी और अध्यात्मिक फागों को गाने का चलन ज्यादा है।

ऐसी पिचकारी की घालन, कहां सीक लई लालन ।

कपड़ा भींज गये बड़ बड़के, जड़े हते जरतारन ।

अपुन फिरत रंगरस में भींजे, भिजै रये ब्रजवालन ।

ईसुर आज मदन मोहन ने, कर डारी बेहालन ।

4. अनुष्ठानिक लोक-नृत्य– किसी अनुष्ठान या पूजा के अवसर पर किये जाने वाले नृत्य अनुष्ठानिक नृत्य कहलाते हैं। इन नृत्यो में धार्मिक भावना का संचार अधिक होता हैं बुन्देलखण्उ में अनुष्ठानिक लोक नृत्य निम्नांकित है :–

1. जवारा-नृत्य– बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध पर्व नवरात्रि में जवारो की शोभ यात्रा धूधाम और उत्साह के साथ निकाली जाती है। जवारो की शोभा यात्रा में सजी संवरी महिलाऐ और पुरूष नृत्य करते हुए चलते है। श्रद्धा और भक्ति भाव से ओत प्रोत यह नृत्य लोक मानस

को न केवल रोमांचित करता है वरन उल्लास से भर देता है। नर्तक झूमकर शरीर को ढीला छोड़ते हुये मध्यम और तेज गति में नाचते हैं। नृत्य के साथ ढोलक मजीरा, झींका आदि बजाये जाते हैं। देवी माता की अंचरी सामूहिक रूप से गाई जाती है। इस नृत्य के साथ गाये जाने वाले लोकगीतों में एग गीत हैः-

कैसे कैं दरसन पाउंरी

माई तोरी संकरी दुअरिया ।''

(2) झिंझिया लोक-नृत्य- क्वांर की पूर्णिमा की टेसू और झिंझिया का विवाह उत्सव बुन्देलखण्ड में मनाया जाता है। इसी अवसर पर बालायें और महिलायें झिंझिया नृत्य करती है। झिंझिया एक छेद दार मटकी होती है जिसमें एक जलता हुआ दीया रखा जाता हैं नर्तकी इसी झिंझिया को सर पर रखकर नाचती हैं शेष सह भागी महिलाए सिर पर झिंझिया रखने वाली नर्तकी के चारो ओर से घेरकर नाचने लगती है। तालियों की लय ताल के साथ यह नृत्य किया जाता है केन्द्रीय नर्तकी झिझिया सिर पर रखे हुये नाना प्रकार की नृत्य मृद्राओं का आकर्षक प्रदर्शन करती हैं। झिंझिया का संतुलन बनाये रखकर लय ताल में नाचना और गाना इस नृत्य को मनमोहनक बना देता है। इस नृत्य के साथ गये जाने वाले गीत के बाले हैं-

बूझत - बूझत आये हैं, नारे सुआटा

कौन बाबुल की पौर

बड़ी अटारी बड़ ढवा नारे सुआटा

बड़ौई तुमारो नाम, नारे सुआटा।

बुन्देली लोकाभूषण-

आभूषण अंगीय शोभा को निखारते हैं। शारीरिक व्यक्तित्व को उभारते हैं और आत्मविश्वास में वृद्धि करते हैं। विद्धानों का मानना है आभूषण कायिक शोभावृद्धि की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं होते पर स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पैरों और हाथों के आभूषण से एड़ी पीठ और कमर के दर्द को नियंत्रित रहते हैं। आभूषण भी लोक संस्कृति को मुखर करते हैं।यह सच है कि आभूषणों का प्रयोग महिलाऐं अधिक करती है परन्तु पुरूष और बालकों को आभूषणों से सजाया संवारा जाता है। बुन्देलखण्ड में शरीर के जिन अंगों में आभूषण धारण किये जाते हैं वे इस प्रकार हैं–

(अ) महिलायें प्रायः– पैर, कटि, हाथ, अंगुलियों, कोंचा, बाजू, गले, कान, नाक, माथे, में आभूषण धारण करती है।

(ब) पुरूषों के आभूषण प्रायः – पैर, हाथ, कान, गले, में पहने जाते हैं।

(स) बालकों के आभूषण प्रायः– पैर, हाथ, गले, कान और कटि में अधिक पहनायें जाते हैं।

बुन्देली लोक जीवन के मर्मज्ञ प्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी की फागों में बुन्देली लोकाभूषणो का वर्णन स्वाभाविक शैली में हुआ है।

ईसुरी की बुन्देली नायिकाऐं कौन से आभूषण पहनती हैं यह उनकी फागों से अभिव्यक्त हो रहा हैः–

''बूंदा लगौ भौंह के करकें,

बेंदी ऊपर चढ़कें।

गोरे गाल कपोलन ऊपर,

दौरी सांकर सरके ।

गर्रदार पुंगारिया देखो,

गेरा मोती झलकें।

ईसुर बजत पैजता सुन लो,

जिनसे जो दिल फड़के।

पैरे रजउ ने प्रान हरन के,

ककना कोमल करके ।

बईयन पै बाजू बंद बांदे,

बगवां संग बरन के।

छापें छला बजुल्ला छल्ला,

गजरा केउ लरन के।

तकत तीर से लगत ईसुरी,

जे नग तरन तरन के।,, [1]

इस प्रकार खजुराहो, ओरछा के मंदिरों की मूर्तियों की देख कर यह प्रमाणित रूप से कहा जात सकता है कि बुन्देली लोकाभूषण निम्नांकित हैं। पैर में पैजना पैजनियां। कटि में करधौनी। हाथ में ककना, गजरा, चुरियां, बाजूबंद, बजुल्ला, छला, मुंदरी। गले में छूटा

---

1. ईसुरी की फागें, सम्पादक कृष्णानन्द गुप्त– लोकसाहित्य प्रकाशन गरौठा (झांसी) 1957 ।

गुलूबंद, कठला । कान में कर्णफूल, लोलक, झुमकी। नाक में पुंगरिया, दुर । माथे में बेंदा, बंदी, बूंदा, दावनी टिकुली।

पुरूषों के आभूषण के नाम हैः- हाथ में छला, मुंदरी, कड़ा बाजू में बाजू बंद या भुजबंध और अनन्ता । गले में कण्ठा गजरा, गुंज गोप, जंजीर (चैन) तबिजिया मोती माल ।

बालकों के आभूषण हैंः- पैर में चूरा और तोड़ा पायल का चलन भी है।

कटि में करधौनी किंकिणी और मेखला पहनाये जाते हैं। हाथ में कड़ा, चूरा, और पहुंचियों पहनाई जाती है। गले में कठुला, तवजिया, हाय चन्द्रमा। कानों में बारियां अधिक प्रचलित हैं।

बुन्देली काव्य - परम्परा :-

प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिविम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चलता है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी साहित्य अध्ययन की यह कसौटी गढ़ते हैं। वहीं हिन्दी साहित्य के अध्ययन का अर्थ समझाते हुऐ अचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि आज से लगभग हजार वर्ष पहले हिन्दी साहित्य बनना शुरू हुआ इन हजार वर्षो में भारत वर्ष का हिन्दीभाषी जन समुदाय क्या सोच समझ रहा था, इस बात की जानकारी का एकमात्र साधन हिन्दी साहित्य ही है।[2]

आचार्य द्वय–प्रवरों के इन कथनों का ध्यान रखें तो कहा जा सकता है कि बुन्देली काव्य परम्परा के अध्ययन से अभिप्राय यही है कि बुन्देली क्षेत्र के जनजीवन की भाव, विचार तथा संस्कारात्मक चित्रवृतियां को समझना ।

प्रश्न उठता है – लगभग एक हजार वर्ष के हिन्दी साहित्य में बुन्देली काव्य धारा का प्रारम्भ कहां से माना जाए ?

डा0 रामनारायण शर्मा ने अपनी पुस्तक'' बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास'' में इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए लिखा है कि–

चंदेल काल (10वीं से 14वीं शदी) में बुन्देली भाषा का उत्थान देखने को मिलता है जब जन नायक जगनायिचक (जगनिक) ने लोकमहाकाव्य 'आल्हा' की रचना बुन्देलीभाषा में कर इसे साहित्यक रूप प्रदान किया। रासो साहित्य की गणना में जगनिक का 'परमाल रासो' साहित्य के इतिहास में एक प्रमुख वीररस महाकाव्य माना गया।

हिन्दी विद्वानों ने इसकी प्रमाणिकता पर उंगलियां उठाई है किन्तु आज इसकी सत्यता नये प्रमाणिक पाठों के सामने आने से सिद्ध हो चुकी है और बुन्देली को भाषा न मानने वालों को हठ छोड़नी पड़ी। इस समय की वीर और प्रणय लोक गाथाऐं राछरे आदि साहित्यिक निधि मानी गई।''[3]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0 काल विभाग ।
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ0 15 ।
3. बुन्देलीभाषा साहित्य का इतिहास – डा0 रामनारायण शर्मा (उद्‌भावना) ।

बुन्देली साहित्य का पूर्ण विकसित रूप मध्य काव्य में देखने को मिलता है। यह सच है कि मध्यकाव्य की बुन्देलखण्ड की भाषा और साहित्य की नीव जगनिक के रासों और लोक भाषा साहित्य ने निर्मित कर दी थीं। डा0 रामनारायण शर्मा इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

''भारत और मध्य क्षेत्र में अधिकांश भागों पर मुगलों का आधिपत्य होने से वातावरण शांत हो रहा था किन्तु जनजीवन में उत्पीड़न के विरूद्ध चेतना का उभार स्पष्ट परिलक्षित होता रहा। बुन्देलखण्ड के रजवाड़े इसके विरूद्ध संघर्ष करते दिखाई देते हैं। भक्ति और शक्ति का समन्वित मार्ग यहां बना रहा। ''हारे को हरिनाम'' के स्थान पर भक्ति से शकि अर्जन के उपाय किये जाते रहे। विष्णुदास-हरिदास ने अपनी भक्ति रस पूर्ण रचनाओं से समाज को जाग्रत किया। लोकधर्म और लोक शक्ति के मर्म को रामकृष्ण के लीलामृत द्वारा सभी को प्रसाद रूप में प्रदान किया जिसने लोकशक्ति को प्राणवान बनाया। इस काल के उत्थान और जन आकांक्षाओं, आस्था विश्वासों की भावना का उन्मेष और जन जागरण का कार्य चित्रकूट में पयस्विनी के तट पर ''बाबा तुलसीदास'' ने किया। उन्होंने बैष्णवों, शैवों, सुगुनियां, निर्गुनियां जाति-पांति की संकुचित परिधि से समाज को निकाल कर समन्वयवादी लोकधर्म, लोकसंस्कृति, लोकभक्ति का संदेश दिया। बुन्देली भाषा संस्कृति संस्कार को भी अपने साहित्य का माध्यम बनाकर महत्वपूर्ण कार्य किया है। तुलसी काव्य की भाषा को अब विद्वानों ने ब्रज-बुन्देली, मिश्रित बुन्देली भाषा (कवितावली) को मान्यता प्रदान कर दी है।'' [1]

पं0 हरिहर द्विवेदी की पुस्तक मध्य देशीय भाषा – ग्वाविकारी की प्रस्तावना में हिन्दी साहित्य मनीषी डॉ0 राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है कि

'' जिसे हम ब्रज साहित्य कहते हैं – वह पहिले ग्वालियरी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। यह आज की ब्रज बुन्देली, कन्नौजी का सम्मलित साहित्य था। व्रजभाषा साहित्य में मानी जाने वाली अधिकतर पुस्तकें बुन्देली साहित्यकारों द्वारा ही निर्मित हैं। किन्तु वे ब्रज भाषा के खाते में गिनी जाती हैं।''[2]

विद्वानों के इन नाना मतों का सार यही निकलता है कि बुन्देली काव्य परम्परा लगभग 10 बी सदी से प्रारम्भ हो गयी थी। मध्यकाल में जो अपने उत्थान के शिखर पर पहुंच गयी थी।

---

1. बुन्देलीभाषा साहित्य का इतिहास – डा0 रामनारायण शर्मा (उद्भावना)
2. मध्य देसीय भाषा – ग्वालियरी – पं0 हरिहर द्विवेदी (प्रस्तावना अंश से)

बुन्देली काव्य परम्परा के अध्ययन के लिए दो कसौटियाँ सामने आती हैं– प्रथम– काल विभाजन की। द्वितीय– बुन्देली काव्य प्रवृतियों की। बुन्देली साहित्य के मर्मज्ञ डा0 कन्हैयालाल 'कलश' ने अपनी पुस्तक बुन्देली भाषा साहित्य एवं सस्कृति में बुन्देली काव्य परम्परा को भाषाई कसौटी से आठ चरणों में परखने का प्रयास किया है।[1]

1. प्रारंम्भिक अपभ्रंशकाल
2. साहित्यिक अपभ्रंशकाल
3. चन्देलकाल
4. तोमरकाल
5. मुगल काल
6. बुन्देली काल
7. लाल काल
8. वार्ताकाल

डा0 रामनारायण शर्मा ने बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास में बुन्देली साहित्य का निम्नलिखित वर्गो में अध्ययन किया है।

1. शौर्य एवं गाथा काल (10 वीं से 14 वीं शदी तक)
2. उपासना और लीलामृत काल (14 वीं से 17 वी शदी तक)
3. श्रृंगार काव्य –पूर्वाद्ध –उत्तरार्द्ध (17वी शदी से 19 वी शदी तक)
4. आधुनिक और वार्ताकाल (19 वी शदी से आज तक)। सागर विश्व विद्यालय बुन्देली पीठ के माध्यम से डा0 बलभद्र तिवारी ने बुन्देली साहित्य का क्रमबद्ध संकलन तथा अनुशीलन किया है।

डॉ0 बलभद्र तिवारी जी बुन्देली साहित्य को काल विभाजन की दृष्टि से निम्न रूप में विभाजित करते हैं। [2]

1. आदिकाल
2. कवीन्द्र केशव काल

---

1. बुन्देली भाषा साहित्य एवं संस्कृति – डा0 कन्हैयालाल 'कलश' पृ0 36 – 37 ।
2. बुन्देली काव्य परम्परा (प्राचीन काव्य) – डॉ0 बलभद्र तिवारी पृ0 142 ।

3. लाल काल

4. पद्‌माकर काल

5. आधुनिक काल

उल्लेखनीय है कि डॉ0 तिवारी बुन्देली लोक साहित्य की विवेचना पृथक से करते हैं। अतः मुझे बुन्देली काव्य परम्परा की विवेचना के लिए एक समन्वित दृष्टि का सहारा लेना होगा।

बुन्देली काव्य परम्परा का समन्वित रूप यह माना जा सकता है।

1. बुन्देली शौर्य एवं गाथा काव्य ।
2. बुन्देली भक्ति-काव्य ।
3. बुन्देली श्रंगार एवं फाग-काव्य ।
4. बुन्देली लोक-काव्य ।
5. बुन्देली का आधुनिक-काव्य ।

बुन्देली-शौर्य और गाथा-काव्य-

बुन्देलखण्ड मध्यभारत का एक हिस्सा है। यहां लेखनी और तलवार के प्रभाव की गौरवशाली परम्परा रही है । उत्तर से दक्षिण जाने के लिये यह मध्य है- यहां की धरती यदि आक्रान्ताओं के युद्धों से त्रस्त रही तो संतज्ञानी मुनियों के तप से पुण्य भी अर्जित करती रही। राजनीति के ज्वार भाटे आते रहे। विक्रमी 13 वीं शदी में बुन्देलखण्ड गढ़वारों (राठौर) के शासन के अन्तर्गत आता था। इसकी राजनीति सीमा कन्नौज से काशी तक फैली थीं। कालिंजर (महोबा) के परमर्दिदेव (परमाल) कन्नौज के राजा जयचन्द्र के मित्र थे। हर्षवर्धन के बाद गहरवार चौहान (दिल्ली के राजा) चन्देल और परिहार राजपूत राज्य प्रतिष्ठित हो गये थे। उस समय राजा अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए युद्ध लड़ने के आदी हो गये थे।राजनीतिक प्रभाव और प्रणय प्रसंगों के कारण भी युद्ध हो जाया करते थे ।

दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या कमला का विवाह अजमेर के राजा सोमेश्वर से हो गया था। इनका पुत्र ही पृथ्वीराज चौहान था। अनंगपाल की दूसरी कन्या सुन्दरी का विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल से हुआ जिसका पुत्र जयचन्द्र हुआ । पृथ्वीराज चौहान को गोद लेकर अनंगपाल ने दिल्ली से अजमेर तक एक बड़ा राज बनाया। स्वभाविक रूपसे इस सीमा विस्तार से कन्नौज राज खिन्न हो गया। परिणाम में कन्नौज और दिल्ली के बीच वैमनस्य के बीज अंकुरित हो गये। संयोगिता पृथ्वीराज के प्रणय से जो युद्ध हुआ उसकी भूमि यही आपसी वैमनस्य था।

कांलिजर (महोबा) के राजा परमाल कन्नौज के मित्र भी थे और सामंत भी थे। स्वाभाविक रूप से परमाल भी दिल्ली के विरूद्ध उठ खड़े हुए। परमाल रासों के अनुसार परमर्दिदेव के पुत्र ब्रह्मा का विवाह पृथ्वीराज की बेटी बेला से उसकी इच्छा के विपरीत हुआ। कालिंजर और दिल्ली भी सीधे युद्ध मैदान में आ खड़े हुए। इन लड़ाइयों में आल्हा-ऊदल के शौर्य और पराक्रम की चमक अलग दिखी।

आल्हा-ऊदल महोबा के सेनापति बच्छराज के पुत्र थे। इनकी वीरता पर मुग्ध होकर परमाल ने आल्हा-ऊदल को बच्छराज की मृत्यु के बाद अपनी सेना का सेनापति बना लिया। कहा जाता है इन वीर योद्धा भाइयों ने 52 लड़ाइयां लड़ी और बुन्देलखण्ड की शौर्य पताका को देश भर में फहरा दिया।

रासौ काव्य की कथावस्तु में इन्हीं युद्धों और प्रणय प्रसंगो का वर्णन मिलता है। इसी समवर्ती काल में 'बुन्देली' का स्वरूप भाषा की दृष्टि से दिखलाई देने लगा था। बुन्देलखण्ड के

विशाल भूभाग के लोग अपने विचारों और संस्कृति की अभिव्यक्तियों का आदान प्रदान बुन्देली भाषा में कर रहे थे। इस समय जन अभिव्यक्ति की भाषा बुन्देली ही बनी। इसीसमय जगनिक ने परमाल रासो बुन्देली भाषा में रच लिया। इस ग्रन्थ को बुन्देली का प्रथम काव्य माना जाता है – और जगनिक को बुन्देली का आदि कवि की प्रतिष्ठा दी जाती है ।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'– में वीरगाथा काव्य के प्रकरण 3 में लिखते हैं कि ''राजा भोज की सभा में खड़े होकर राजा की दानशीलता का लम्बा चौड़ा वर्णन करके लाखों रूपऐ पाने वाले कवियों का समय बीत चुका था। राज दरबारों में शास्त्रों की वह धूम नहीं रह गई थी। पांडित्य के चमत्कार पर पुरस्कार का विधान भी ढीला पड़ गया था। उस समय जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रुकन्या हरण आदि का अत्युक्तिपूर्ण अलाप करता या रणक्षेत्रों में जाकर वीरों के ह्वदय में उत्साह की उमंगे भरा करते थे – वही सम्मान पाता था।'' [2]

बोली तिलका उदल सै तव, बैआ सुनो हमारी बात ।
सौपति हौ तुमकौ मै लाखन, करियौ युद्ध एक ही साथ।
लाय मिलैयौ पूत हमारो, आड़े में तुम दीजौ साथ।
सुनकैं उदल उत्तर दीनौ माता सुनौ हमारी बात ।
सौवत नाहीं काउ क्षत्रि कौं निसिदिन रहत काल कौ साथ।
यै हम सपथ करत माता ये, हमरे वचन करौ परमान ।
गिरै पसीना जेहें लाखन कौ, देहौं तहां रक्त बो धार ।
बात सुनी रानी तिलका ने, भुरही हथीनी लई मांगया।

काव्यगत विशेषतायें की दृष्टि से ''आल्हा'' पूर्ण काव्य कृति है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश का अच्छा वर्णन है। सन 2000 ई0 में म0प्र0 संस्कृति विभाग भोपाल ने डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित ''चंदेल कालीन लोक महाकाव्य आल्हा'' का प्रमाणिक पाठ प्रकाशित किया है। आल्हा गायिकी दतिया, सागर, महोबा, पुछी करगुवा क्षेत्रों के आधार पर निश्चित की गई है। आल्हा की भाषा पाठान्तरों को ध्यान में रखते हुऐ ''लश्करी बुन्देली'' को प्रधान माना गया है। [3]

---

1. बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास डॉ0 रामनारायण शर्मा प्र0 12–13 ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – पृ0 18 ।
3. चंदेल कालीन लोक महाकाव्य – ''आल्हा'' सम्पादक डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त ।

जैसे यूरोप में वीरगाथाओं का प्रसंग ''युद्ध और प्रेम'' रहा है– वैसे ही यहां भी था। किसी राजा की कन्या के रूप का संवाद पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हरकर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था। इस प्रकार उन काव्यों में श्रृंगार का भी थोड़ा मिश्रण रहता था......।

ये वीर गाथाऐं दो रूपों में मिलती हैं– प्रबंधकाव्य के साहित्यिक रूप में और वीरगीतों (बौलाड्स) के रूप में। साहित्यिक प्रबंध रूप में जो प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध हैं वह हैं पृथ्वीराजरासो। वीरगीत के रूप में हमें सबसे पुरानी पुस्तक ''बीसल देवरासो'' मिलती है, यद्यपि उसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास मिलता है। जो रचना कई वर्षों से लोगों में बराबर गाई जाती रही हो, उसकी भाषा अपने रूप में नहीं रह सकती । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ''आल्हा'' है जिसके गाने वाले प्रायः समस्त उत्तरीय भारत में पाऐ जाते हैं।'' [1]

रासो-काव्य परम्परा-

शोर्यकाल के प्रमुख काव्य 'रासो' नाम से लिखे गये। रासो या 'रायसो' वीरता, यश, कीर्ति बोधक शब्द हैं। बुन्देली लोककाव्य में आकर रासो ''राछरो'' में परिवर्तित हुआ प्रतीत होता है। रासो ग्रन्थों में पृथ्वीराज रासो, जयचन्द्र प्रकाश और परमाल रासो में बुन्देलखण्ड की घटनाओं का समुचित वर्णन मिलता है। परमाल रासों में महोबा के राजा परमाल और आल्हा ऊदल के पराक्रम का गान किया गया। जयचन्द्र प्रकाश में कन्नौज के राजा जयचन्द्र और दिल्लीपति पृथ्वीराज की लड़ाइयों का वर्णन मिलता है। पृथ्वीराज रासों में कन्नौज कालिंजर की लड़ाईयों के वर्णन के साथ ही साथ यवन आक्रमणकारियों युद्धों का वर्णन मिलता है। इन रासो काव्यों में उस समय के राजाओं के प्रेम प्रणय प्रसंगो का वर्णन भी है।

जगनिक (परमाल रासो)-

परमाल रासो (आल्हा) बुन्देली भाषा की आदि काव्य रचना है। जगनिक कवि ने संवत 1230 वि0 में इसकी रचना की थी। कालिंजर (महोबा) के राजा परमाल (परमर्दिदेव) के यहां जगनिक आश्रित कवि थे। परमाल रासों का ''आल्हाखण्ड'' एक भाग माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि जगनिक कवि भी थे और रणक्षेत्र में तलवार लेकर लड़ते भी थे। 'आल्हा'

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0 18 ।

काव्य में महोबा के प्रबल चन्देल सम्राट परमद्रिदेव के मांडलिक नरेश आल्हा, ऊदल और मलखान तथा युवराज ब्रहमदेव कन्नौज के राठौर सम्राट जयचन्द्र और युवराज लक्ष्मणसिंह (लाखन) तथा पृथ्वीराज चौहान एंव उनके पुत्रों और सामन्तों के साथ विभिन्न राजपूतों का लोमहर्षक युद्ध का वर्णन मिलता है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, धर्म, अर्थ, नीति का परिचय भी इस ग्रंथ में मिलता है। बारहवीं शताब्दी का इतिहास भी कल्पना के साथ इस काव्य में व्यक्त हुआ है।

जगनिक आवाह्न करते हैं –

जिसकी आई बोई मरै है – बिन आई मो मरता नाय।

बीस बरस भर क्षत्री जीवै, बाकी जींवे कौ धिक्कार''।

देश पर न्यौछावर होने का आवाह्न कवि जगनिक करते हैं। उनका मानना है जिसको मृत्यु वरण करती वही मरता है। इसलिये मरने के भय से युद्ध क्षेत्र से पलायन नहीं करना चाहिये।

काया कभी किसी की अमर होकर नहीं आती है। शरीर तो सबको त्यागना ही पड़ता है । अमर यदि कुछ रहता है तो यशकीर्ति है।

मरना एक दिन होय जरूरी सदा अमर कोई रहता नाय ।

रन खेतों में जो मर गयौ सुरग लोक में पहुंचा जाय ।। [1]

---

1. जगनिक – परमाल रासो (आल्हा खण्ड) ।

बुन्देली गाथा-काव्य-

गाथा काव्य – प्राचीन बुन्देलीकाव्य का लोक प्रचलित काव्य है। इन गाथाओं में वात्सल्यता, प्रणय और वीरता का भरपूर गान है। इन गाथाओं में तत्कालीन सामाजिक जीवन की मानसिक और हार्दिक भावनओं का भंडार है। इन गाथाओं में जन संस्कृति की रसधारा भी बहती । यह गाथायें एक कंठ से दूसरे कंठ द्वारा सतत् मुखर होती रही है। इनका लिखित प्रमाणित पाठ्य उपलब्ध नहीं है। किसी एक कवि के नाम के रची गयी काव्य रचना भी इन्हें नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः इन गाथाओं में कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेममार्ग का महत्व दिखाया है। इस लौकिक प्रेम के बहाने परम प्रेमतत्व का आभास मिलता है। इन गाथाओं में मनुष्य के साथ पुशपक्षी पेड़ पौधे तक भी सहानुभूति है। ये गाथाऐं साहित्य कोटि की है।

बुन्देली की प्रमुख गाथायें हैं–

1. सांरगा भारंगा की गाथा
2. ढोला मारू की गाथा
3. धीरा दिनैया की गाथा
4. संत वसंत की गाथा
5. सुरहिन की गाथा
6. राजा गिलंद की गाथा

(1) यहां सांरगा भारंगा और संत बंसत की गाथाओं द्वारा बुन्देली गाथा साहित्य का परिचय दिया जा रहा है।

<u>सांरगा – भांरगा की गाथा</u>

यह एक प्रणय गाथा हे लेकिन शौर्य काल की भाषाओं में एक प्रमुख गाथा है। सांरगा भारंगा दो प्रेमियों की गाथा है। इस गाथा में राजा के पुत्र और प्रधान की बेटी के प्रणय प्रेम का गान है। राजा के पुत्र का नाम भृंगराज जिसे भांरगा पुकारते हैं। भ्रंगराज की प्रेमिका का नाम सारंगा है। इनमें परस्पर प्रेम की प्रगाढ़ता बढ़ी। राजा को यह प्रेम प्रसंग स्वीकार नहीं है। राजा क्रोधित हो जाता है। परिणाम में सांरगा और भारंगा को देश निकाले की सजा मिलती है। राजा की यह कठोर आज्ञा न दोनो के प्रेम को न तो कम कर पाती है ओर न ही समाप्त कर पाती है। दोनों की जीवन लीला समाप्त हो जाती हे किन्तु प्रेम की धारा दोनो के हृदयो में अगले जन्मों तक बहती रहती है। किसी जन्म में वे हंस हंसती रहे तो किसी जन्म

में हिन्ना हिन्नी रहे। अंत में सारंगा भारंगा का जन्म भोंरा और कमलिनी के रूप में होता है। उनका प्रेम सफल होता है। इस गाथा में जीवों के प्रेम के साथ मानस प्रेम का सामजस्य अद्भुत् प्रतीत होता है।

गाथा-काव्य की बानगी-

सरोवर में कमलिनी रूप में खड़ी सारंगा अपने भौरे रूपी भारंगा को देखकर अपने पिछले जन्म के प्रेम प्रसंग का गान करती है।

भारंगे सुरती भई, पाइ सोनि सुवास ।

सो उड़ पौचौ सुधकरत, सारंगा के पास ।

सरबर में ठाड़ी लखी, सारंगा मुस्कात ।

आंखन सेंई करत है, भारंगा रस बात ।

कमलिनी की विह्वलता देख भौरा (भारंगा) अपने प्रेम की गाथा कह चलता है।

सात जनम के हमहू तुम बंधे प्रेम की डोर ।

अब सजनी आकै मिलौ, प्रेम डोर न टोर ।

सुन के बोल अमोल जे, भारंगा के संग ।

विहँसत भई, सारंगिनी, मन में भरे उमंग ।

इस प्रकार सारंगा और भारंगा प्रेम में एकाकार हो जाते है। यह भारतीय साहित्य की सुखान्त परिणति है। शाश्वत प्रेम की पावनता तथा अमरता को प्रगट करती है। प्रेमियों के विश्वास को प्रगट करती है कि एक जन्म मे न सही किसी न किसी जन्म में तो मिलन होगा। [1]

संत-बसन्त की गाथा-

बुन्देली शौर्य काव्य में संत बसंत की लोक गाथा का भी बड़ा महत्व है। संत और बसंत दो भाई थे। दोनों हरे बांसौं के वृक्ष से उत्पन्न हुए थे। कथा कहती है कि राजा की बेटी का विवाह था। भण्डपाच्छादन के लिए बांसो को काटा गया । उसी समय बांसों से आवाज निकलती है।

---

1. बुन्देला भाषा साहित्य का इतिहास : डॉ0 रामनारायण शर्मा पृ0 24

काठी जान कुठार से ,

कपट न डारौ अजान ।

पूरव पुन्य औतरे,

संत बसंत सुजान ।

आवाज को सुनकर इन कुंवरो को निकाला गया। राजा ने उनका पालन पोषण किया। रानी को यह रूचिकर नहीं लगा । उसने आपत्ति की। रानी ने इन सुन्दर राजकुमारों को देश से निकलवा दिया।

देश निकाले का हुक्म हुआ –

आगे पग न बढ़ाइयो

राजन के दरबार ।

अपनीं प्यास बुझाइयो,

वन के रूख मंझार ।

सुमरियो हरे बांस के विरवा धने ।

द्वारपालों से राजा का संदेश सुनकर संत बसंत दुखी होकर जंगल की ओर चल देते हैं। सारे दिन चलकर रात्रि में ये एक वृक्ष के नीचे लेट जाते हैं। उस वृक्ष पर एक तोता मैना का जोड़ा रहता था। तोता मैना उन्हें अतिथि का सम्मान देते हैं। भोजन उपलब्ध होने पर वे अपने जीवन को उन दोनो अतिथियों पर निछावर कर देते हैं।

‘‘ धन्य पखेरू रूख के,

धन्य भयौ सतकार

प्रान दान कर देते हौ

भूखन कौ आधार ।

सुमरियो हरे बांस के विरवा धन ।

वन में संत बंसत ने बड़ी तपस्या की। एक दिन वे दोनो शिकार खेलते हुए विछुड़ जाते हैं। संत भाई को खोजता खोजता एक नगर में पहुंच जाता है। वहां वह राजा बन जाता है। वहां वंसत भी अपने भाई को तलाशता हुआ एक गांव में पहुंचता है। उस राज में एक चुड़ैल थी जो गांव के लोगों को बहुत तंग करती थीं। वहां के प्रधान ने प्रतिज्ञा की थी कि जो इस्स राक्षसी को मार डालेगा उसे में आधा राज्य दे दूंगा और अपनी लड़की से उसका विवाह कर दूंगा। बसंत ने चुड़ैल को तार डाला और वह आनन्द से रहने लगा।

दौनों भाइयों को एक दूसरे की तलाश बनी रही। 'संत' ने अपने भाई बसंत को खोजने के लिए मुनादी कि जो संत बसंत की कहानी सुनायेगा उसे ढेर सारा पैसा मिलेगा अंत में बसंत ने साधू का वेष धारण करके संत कहानी सुनाई–

हरे हरे बांसन औतरे,

संत बंसत कुमार ।

ऐसे घर भागन परे,

जितै कुलच्छन नार ।

सुमरियों हरे बांस के विरवा धने । [1]

इस गाथा से राजसत्ता की कठोरता, वनप्राणियों, पशुपक्षियों की दयाशीलता और परिश्रम व भाग्य का प्रभाव प्रगट होता है। एक संस्कृति का सृजन होता है कि धैर्य, पराक्रम और प्रयत्न से जीवन नष्ट होने से बच जाता है।

जगदेव कौ पंवरौ-

बुन्देलखण्ड की ग्रामीण जनता में एक विशेष प्रकार के धार्मिक गीत प्रचलित है जो माता के भजन कहलाते हैं। ये देवी या महामाई की पूजा पर प्रायः गाये जाते हैं। कुछ जाति विशेष में इनका प्रचलन अधिक है। अधिकांश गीत देवी की स्तुति से संबंधित हैं। इन गीतों को बुन्देली लोक जींवन में ''पवारों'' नाम से जाना जाता है।

इन पॅवारों को विद्वानों ने वीर गाथा नाम दिया है। मुहावरे में पंवारे शब्द लम्बी कथा के लिये प्रयुक्त होता है। पवारे का लम्बा और बड़ा होना आवश्यक है। मराठी भाषा में भी पौवाड़ा या पंवाड़े का अर्थ ही वीर गाथा है। बुन्देलखण्ड में जो पंवारे प्रचलित हैं उनमें प्रायः मालवे के परमार राजाओं का विशेष कर भोज और जगदेव का वर्णन है। संभव है परमार या पॅवार से ही यह पॅवारा शब्द बना हो।

पॅवारे गाथा गीत का परिचय देने हेतु यहां जगदेव का पॅवारा प्रस्तुत किया जा रहा है। जगददेव मालवा के राजा उदयादित्य (1059–873 ई0) का पुत्र था। यह उदयादिव्य अपने भाई भोज की मृत्यु के बाद मालवा का राजा हुआ। किसी घरेलू षडयंत्र के कारण जगद्देव को मालवा छोड़कर जाना पड़ा और गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के यहां

1. बुन्देलीवार्ता पृ0 5 ।

नौकरी करनी पड़ी। वह वहाँ अठारह वर्ष रहा। इसके बाद जब जयसिंह ने धार पर चढ़ाई का उपक्रम किया तो पुनः अपने पिता के पास आ गया।

इस घटना की सचाई का दाबा करना तो कठिन है किन्तु इसमें संदेह नहीं कि जगद्देव अनेक किवदंतियों और गाथाओं का नायक बना हुआ है। उसके नाम के अनेक पँवारे प्रचलित हैं। इन लम्बे गीतों में स्वर साद्रश्य प्रधान होता है।

जगद्देव के इस पँवारे में तीन नाम ऐसे आये हैं जिनकी खोज सामर्थ्य से बाहर है। एक नाम है धरमासान। उसे नगर कोट का राजा बताया गया है। दूसरा है दल पंगू। वह हुला नगर का राजा है। गीत में कश्मीर को कसामीर कहा गया है । इसी प्रकार दलपंगर और हुला नगर वास्तविक शब्दों के अपभ्रंश हो सकते हैं। [1]

कसामीर कहा छोड़े भुमानी नगर कोट काह आई हो – ओ, माँ ।
कसामीर कौ पापी राजा सेवा हमारी न जानी हो, माँ ।
नगर कोट धरमासन राजा कर कन्या विलमाई हो, माँ ।
कन्या कर विलमावे बारौ राजा पलना डार झुलाई हो, माँ ।
पलना डार झुलावे वारो राजा मुतियन चौक पुराये हो, माँ ।
मुतियन चौक पुरावे वारो राजा कंचन कलश धराये हो, माँ ।
देवी जलया राजा धरमासन खेलें पाँसासार हो, माँ ।
कोना के पांसे रतन संवारे कौना के पांसे लाल हो, माँ ।
देवी के पाँसे रतन संवारे धरमासन के पाँसे लाल हो, माँ ।
पैले पाँसे डारे धरमासन परो न एकउ दाव हो, माँ ।
दूजे पाँसे डारे भुमानी परे पचीस ऊदाव हो, माँ ।
हँस हँस पूंछे भइया लंगरवा को हारो को जीतो हो, माँ ।
घर मोहन राजा जीतीं मोरी आदि भुमानीं ।
हार चलो भोरो आद भुमानी सात समुद खाँ जाय हो, माँ ।
मनसे चली मोरी आद भुमानी सात समुद्र खां जाय हो ।
सात समुद पै डौले भुमानी डोले डोले वरन छिपाये हो, माँ ।

---

1. लोकवार्ता – पत्रिका – कृष्णानन्दन गुप्त संस्करण जून 1944 – टीकमगढ़ ।

मलिहा मलिहा टेरे भुमानी मलहा के नाच लियाओ हो, माँ ।
आज बसा लियों बासरेत में भोरई उतारौ पैले पार हो, माँ ।
पांच टका गांठी के खोले जबई उतारौ पैले पार हो, माँ ।
गर्भ न कर मलहा के बारे गर्भइ होत बिनास हो, माँ ।
गर्भ करो लंका के रावन सोने की लंका विनासी हो, माँ ।
गर्भ करो वन की गुमचू ने लाल बदन भों कारे हो, माँ ।
गर्भ करो चकइ चकबा ने सोने की रैन बिछोई हो, माँ ।
गर्भ करो रतनाकर सागर जल खारे कर डारे हो माँ ।
पहली चुरू जल अचये भुवानी समुद गये खलयाये हो, माँ ।
दूजी चुरू जल अचये भुवानी समुदा कीच गिलाये हो, माँ ।
तीजी चुरू जल अचये भुवानी समुदा धूर उड़ाय हो, माँ ।
उठ राजोमछ विनती करत है जिया जौन मर जायें हो , माँ ।
जैसे तैसे समुद भरा दो अबई उतारौं पैले पार हो, माँ ।
कारी घटा डर पीरी बदरिया जे दोउ उनई जायें हो, माँ ।
सात समुद पै जल बरसाये बरसे धोरा घोर हो, माँ ।
भरे समुद में सिंगा नचावै जलऊ न डूबे पांव हो, माँ ।
मनसे चली आद भुमानी हुलानगर खां जाय हो, माँ ।
छूलानगर मे डोले भुमानी लेवे सब के भाव हो, माँ ।
मनसे चली मोरी आद भुमानी जगदेव जू के रावरन जायें हो, माँ ।
आवत देखो जगदेव जू की रानी मन में गई मुसकाय हो, माँ । [1]

---

1. जगदेव का पंवरो – एक लोकगाथा का अंश – लोकवार्ता पत्रिका अंक जून 1944 पृ0 17 ।

कारसदेव की गाथा-

करसदेव बुन्देलखण्ड की पशुपालक जाति के एक वीर देवता हैं। विशेषकर उन जातियों के जो गाय और भैंस पालते हैं और ये पशु ही जिनकी आजीविका का मुख्य साधन हैं। बुन्देलखण्ड में सभी जगह – जहां गाय भैसें होती हैं – इनके चबूतरे पाये जाते हैं। इनको देहरो या देहरे कहते हैं। चबूतरे पर ईटों के दो छोटे से तिकोने घर के आकार से बने होते हैं । इनमें से एक कारसदेव और दूसरा उनके भाई सूरपाल हैं। कहीं कहीं मूर्ति के रूप में बटइयों (गोल मटोल छोटे चिकने पत्थर) रखी रहती हैं। इसी स्थान पर प्रत्येक माह की कृष्णा चतुर्थी और शुक्ल चतुर्थी को अहीर, गूजर रात्रि में एकत्र होते हैं। एक घुल्ला भी होता है। घुल्ला उस व्यक्ति को कहते हैं जिसके सिर पर 'कारसदेव' की सवारी आती है। सवारी के आहवान के लिए डमरू और घुंघरू लगी हुई ढोलक पर जो ढाँय कहलाती है और जो प्रायः पीतल या मिट्टी की बनी होती है, एक विशेष प्रकार के गीत गाये जाते हैं। ये 'गोटें कहलाती है। इनमें 'कारसदेव' और कुछ अन्य वीर पुरूषों का यशोगान और उनकी अद्भुत साहसिक कार्यों का वर्णन होता है। गोटें गाने वालों को 'गोटया' कहते हैं। [1]

लोक विश्वास है कि कारसदेव की उत्पति कमल के फूल से हुई। बुन्देलखण्उ में उस काल में नर्मदा और बेतवा के तटों पर महिष्मती और ओरछा नगरी थे। अजयपाल इस क्षेत्र के राजा थे। इन्हें शिवजी की कृपा से एक ''मंत्र शक्ति'' सिद्ध थी। वे इस मंत्र शक्ति का उपयोग– पशुरोगों, सर्प दंश को निस्तेज करने आदि में करते थे। भागवत पुराण में भी हैदयवंशी ऐसे ही अजयपाल राजा का उल्लेख मिलता है। माना जाता है कि कारसदेव अजयपाल के भक्त थे। जनकल्याण के कार्य करते रहने से वे लोकसमाज में देवता की तरह पूज्यनीय हुए। ''कारसदेव की गोटे'' इन्हीं के यशगान के गीत हैं। यह एक प्रकार से सामूहिक यशेगान गीत है।

स्थान भिन्नता के साथ 'कारसदेव' की कहानी में सामान्यतः एकरूपता के साथ भी थोड़ी बहुत भिन्नता मिलती है। कथा की दृष्टि से अन्तर होने पर भी लोक विश्वास की दृष्टि से ''कारसदेव'' की गोटों में प्रायः समानता है।

कारसदेव की शौर्य गाथा का एक रूप यह भी है। झांझ ग्राम की सरनी के कोई संतान नहीं थीं। एक बार प्रदोष के दिन वह सरोवर स्नान करने गई तो उसे 'शिव' की भक्ति से कमलपुष्प पर एक तेजस्वी बालक दिखा। 'सरनी' ने उसे पुत्र मानकर उसका लालन पालन किया। 'सरनी' के घर आनन्द बरसने लगा। कारसदेव के हीरामन और सूरजपाल दो ककेर

---

1. लोकवार्ता – सम्पादक – कृष्णानद गुप्त टीकमगढ़ दिसम्बर 1944 निबंध श्री रामस्वरूप योगी – पृ0 177

` (चचेरे) भाई थे। यह भी वीर और साहसी थे। इनके पास 'गौवंश'' की अपार निधि थी। तीनों भाई गायों को मनोयोग से चराने जाते । इसी गांव में गायों का हरण करनेवाला भुमनसिंह था। गौरक्षा करने के कारण कारसदेव और भुमनसिंह में वैर भाव पैदा हो गया। दोनों में खूब घमासान हुई। परन्तु संघर्ष में विजय कारसदेव को मिली। यह संघर्ष मात्र गौरक्षा के लिय ही नहीं था। इसमें लोकरक्षा भी निहित थी। इस लोकरक्षा की अनुभूति और प्रभाव ने कारसदेव की देवतुल्य मान्यता प्रदान कर दी। [1]

1. बुन्देली भाष साहित्य का इतिहास : डॉ0 रामनारायण शर्मा पृ0 51 – 52 ।

बुन्देली राछरे-

बुन्देली लोकगाथाओं कों पवारों की तरह 'राछरे' भी गाये जाते हैं। इनकी विषयवस्तु में राजाओं की वीरता और, प्रेम लीलाओं के रूप, आदि का गान होता हैं। आल्हा की साखियाँ (राछरे), कजरियों का राछरों, मथुरावाली का राछरो प्रसिद्ध है।

''मथुरावली का राछरो'' मथुरावली के बलिदान की गाथा बुन्देली लोक गाथाओं में अमर गाथा हैं। इसमें शौर्य काल के अंतिम चरण की स्थितियाँ का वर्णन मिलता है। यह वह समय था जब यवनों का अत्याचार सिर उठाये थे। राजा रजवाड़े आपसी कलह में फस कर कमजोर हो गये थें। जन जीवन को सुरक्षित रखने की चिंता किसी को नहीं थी।

'मथुरावलीं राछरे' की कथा वस्तु का सूत्र है कि मथुरावली बहुत रूपवती थी। एक तुर्क उसके रूप पर रीझ जाता हैं। मथुरावली के चाचा को अपनी कपट चालों में फांस कर तुर्क मथुरावाली को बलात उठा लेता है और कैद कर लेता है। मथुरावाली को मजबूर करता है कि वह उससे (तुर्क) से शादी कर ले। मथुरावाली तुर्क से शादी का प्रस्ताव पूरी तरह ठुकरा देती है। तुर्क उसे काबुल ले जाता है। काबुल में मथुरावली को तमाम रंगीन सपने दिखाये जाते हैं। मन लुभाये जाने की कोशिश की जाती हैं पर मथुरावाली का मन स्थिर है। मथुरावाली को तुर्क के चंगुल से छुड़ाने को तमाम कोशिशे की जाती है। किन्तु तुर्क मथुरावली को छोड़ना नहीं चाहते और मथुरावाली को छोड़ना नहीं चाहते और मथुरावाली तुर्क को अपनाना नहीं चाहती । मथुरावाली की ससुराल वाले
संघर्ष करके मथुरा वाली को मुक्त कराने के लाख प्रयास करते हैं। पर सफलता हाथ नहीं लगती है। मथुरावाली अपने भाई को वचन देती है कि वह परिवार की पगड़ी की लाज रखेगी। तुर्क से शादी किसी भी दशा में नहीं करेगी। पतिव्रता नारी का धर्म और घर की लाज मार्यादा बचाने के खातिर मथुरावाली अपने शरीर को ''अग्नि'' के हवाले कर अपने प्राणों का बलिदान देती है। मथुरावाली 'राछरा' – बुन्देली लोकगाथा काव्य की अमूल्यनिधि बन गया है।

मथुरावाली के बोल :–

सगौरी कका बैरी भयो
ल्याओ तुरकिया चढ़ाय ।
बंदी परी है – मथुरा वाली ।

आकाश में उड़ती हुई चील द्वारा मथुरा वाली अपने संबंधियो को समाचार भेजती है। संवाद पहुंच जाता है। मथुरावली के सगे संबंधी तुर्क के पास उसे छुड़ाने के लिए भेंट पर भेंट ले आते हैं किन्तु तुर्क (मुगल) उन्हें स्वीकार नहीं करता है। वह तो मथुरावली को अपना बनाने पर अड़ा है।

ससुर मिलाओ (हो) लै चलें,
लें चले हतिया हजार
लै रे मुगल के जे हतिया
बहू तौ छोड़ौं मथुरावली ।
••••••••••••••••••••••••
देवर पिलाऔ (हो) लै चले
लै चले घुड़ला हजार
लै रे मुगल के जे घोड़ला
भौजी तौ छोड़ौ मथुरावली ।
तेरे घुड़लन को मैं का करूं
मेरे हैं खच्चर हजार
एक न छोड़ो – मथुरावली
जाके..........................बीबी बनाउ मथुरावली ।

इस प्रकार सारे संबंधी मुगल को प्रसन्न करने में और मथुरावली को मुक्त कराने में असफल हो जाते हैं तब मथुरावली का भाई प्रयास करता है। वह मुगल के शिविर पर चढ़ाई करके सेना लेकर जाता है। बहन सोचती है युद्ध के कारण भारी रक्तपात होगा। मथुरावली अपने भाई से घर लौट जाने का आग्रह करती है। वह भाई को विश्वास दिलाती है, कि मैं तेरी पगड़ी की लाज रखूंगी।

'राछरे' का यह भाग बहुत भावुकतापूर्ण है।

बिरन मिलाऔ (हो) लै चलें
लै चले तेगा हजार
वन्दी परी हे मथुरावली ।
जाऔ बिरन घर अपने
राखौंगी पगड़ी की जाल,
बन्दी परी है मथुरावली ।

यह इस राछरे का चरमोत्कर्ष है। यह अत्यन्त करूण एवं हृदय विदारक दृश्य है। तुर्क (मुगल) मथुरावली को समझता है कि वह उसकी प्रेमसी बन जाए– और उसे कबूल करले। मथुरावली सारी वार्ता शांतिपूर्वक सुनती है। फिर कहती है मैं प्यासी हूं, तब मुगल स्वयं पानी का प्रबंध करने के लिए बाहर जाता है। इधर मौका पाकर मथुरावली शिविर में आग लगा देती है और ढोल बनाने वाले (ढोलिया) से कहती है ऊँचे स्थान पर बैठकर ढोल बजाकर घोषणा कर दो कि ''मथुरावली खड़ी खड़ी चल रही है''। [1]

बुन्देलखण्ड में ढोलियों ढोल बजाते हुये आज भी श्रावण मास में यह लोक राछरा गीत लोकगायक गाया करते हैं। बुन्देली लोकसंस्कृति अपनी दृढ़ता और साहस का सन्देश देती रहती है।

1. लोकवार्ता – सम्पादक कृष्णानन्द गुप्त पृ0 22 ।

बुन्देली भक्ति-काव्य :-

हम्मीर के समय में चारणों का वीर गाथा काव्य समाप्त होते ही हिन्दी कविता का प्रवाह राजकीय क्षेत्र से हटकर भक्ति-पथ और प्रेमपथ की ओर चल पड़ा। देश में मुसलमान साम्राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने पर वीरोत्साह के सम्यक संचार के लिये वह स्वतंत्र क्षेत्र न रह गया। देश का ध्यान अपने पुरूषार्थ और बल पराक्रम से हटकर भगवान की शक्ति और दया दाक्षिण्य की ओर गया। देश का वह नैराश्यकाल था जिसमें भगवान के सिवा और कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। रामानन्द और बल्लभाचार्य ने जिस भक्तिरस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धारा ने उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही कुतबन, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने अपनी प्रबंध रचना द्वारा प्रेमपथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दुःख भुलाया, उसका मन वहला। [1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति काव्य की यह पृष्टभूमि दी है। वस्तुतः मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को प्रायः एक स्वर से उत्तर भारत की एक महान सांस्कृतिक घटना के रूप में स्वीकार किया गया है। डॉ0 राम विलास शर्मा ने उसे इस आधार पर लोक जागरण कहा कि उसके पुरोधा तो लोक की चिंता से जुड़े ही थे, उसकी शक्ति और ऊर्जा का मुख्य श्रोत भी लोक था। [2]

एक कदम आगे बढ़कर भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य धारा की पीठिका का खुलासा करते हुए भगवतशरण उपाध्याय जी लिखते हैं कि ''सूत्र साहित्य से कुछ पूर्व ही क्षत्रियों के प्रभाव और ब्राह्मणों क्षत्रियों के प्राचीन संघर्ष के फलस्वरूप जो जैन बौद्ध धर्मो का उदय हुआ था, उससे ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था को काफी चोट पहुंची थी। बौद्धों ने संस्कृत और वर्ण धर्म दोनों पर चोट की। संघ में वर्ण व्यवस्था न थी और सारे वर्णो तथा अवर्णा के पुरूष वहां स्वीकार किये जाते थे, समान रूप से। जैन बौद्धों के अनुरूप वैष्णवों ने भी जनता के साथ समानता का व्यवहार करके वर्णधर्म की जड़ों पर आघात किये। ''जाति–पांति पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का होई'' यह पश्चात कालीन उद्घोष स्वतंत्र सलोगन नहीं, उसी परम्परा की तर्क सम्मत परिणति है। [3]

---

1. गोस्वामी तुलसीदास : रामचन्द्र शुक्ल : नागरी प्रचारणी सभा वराणसी
2. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य : शिवकुमार मिश्रा – पृ0 40 ।
3. भारत समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : भगवत शरण उपाध्याय 1973 – पृ0 112

लगभग तीन सौ वर्षों से भी ऊपर के समय तक भारतीय जीवन को अनुप्रमाणित करने वाले भक्ति आन्दोलन की चर्चा करते समय प्रायः विद्वानों ने एक महान ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक घटना के रूप में उसका स्मरण किया है। किसी किसी ने उसे धर्म, समाज, सांस्कृतिक, यहां तक कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसके तलस्पर्शी प्रभाव की चर्चा करते हुए उसे एक नया युगान्तर भी माना है। भक्ति आन्दोलन के व्यापक जनाधार, विशेषतः कोटि कोटि दलितों, पीड़ितों और शोषितों के जीवन में आत्मसम्मानपूर्वक जी सकने की एक नई आशा का संचार करने एवं उनके व्यापक सहयोग और शिरकत के बल पर देश के उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक शताब्दियों की कालावधि में भी अपने सार्थक प्रभाव को कायम रख सकने के नाते उसे मध्यकाल के एक महान जन आन्दोलन की संज्ञा दी है। [1]

भक्ति काव्य धारा की छाप बुन्देली के भक्तिकाव्य पर स्पष्ट देखने को मिलती है। भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास जी तो बुन्देलखण्ड में ही हुए। बुन्देली भक्तिकाव्य के संबंध में कहा जा सकता है कि बुन्देली भक्ति काव्य में द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वित स्वरूप को प्रगट हुआ है। बुन्देली में रामभक्त कवि भी है और कृष्ण भक्त कवि भी है। बुन्देली काव्य पर कबीर, जायसी की काव्य चेतना का असर भी दिखता है। जप, तप, भजन–कीर्तन, रामकृष्ण चरित्रगान आदि भावतंरतों ने बुन्देली भक्ति काव्य की धारा को तरंगित किया है। बुन्देली भक्तिकाव्य दोहे, सोरठा, चौपाई, कवित्त, कुण्डलियां आदि छंदों में प्रायः रचा गया है।

विष्णुदास, हरीराम व्यास, कृपाराम, बलभ्रद मिश्र, रामसाह, गुलाब कवि आदि बुन्देली के प्रमुख कवियों में भक्ति रस की प्रधानता देखने को मिली है।

विष्णुदास -

बुन्देली भक्ति साहित्य की श्री वृद्धि में गोस्वामी विष्णुदास का महत्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म ग्वालियर में सं0 1410 में हुआ था। ग्वालियर नरेश उगरेन्द्रसिंह तोमर के दरवार कवि थे विष्णुदास जी। कबीरदास से पूर्व के कवि विष्णुदास जी इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं।

---

1. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य : शिवकुमार मिश्र पृ0 20 ।

1. रूक्मिणी मंगल, महाभारत कथा, स्वर्गरोहण, मरक्ध्वज कथा, रामायनी कथा में तुलसीदास के पूर्व की रामकथा का स्वरूप रामायनी कथा में देखने को मिलता है। कवि विष्णुदास ने प्राचीन आख्यान को ''रामयनी कथा'' में समेटा है । कुछ स्थल बहुत सुन्दर बन पड़े हैं जैसे हनुमान जी का लोकमंगल, सीताजी से वार्तालाप। दोहा चौपाई में लिखे इस ग्रन्थ की हिन्दी साहित्य के इतिहास में चर्चा तक नहीं की गई है। पूरे ग्रन्थ की भाषा उस रूप को प्रस्तुत करती है जिसे ठेठ बुन्देली कहते हैं। इनके सभी ग्रन्थों के आंकलन के आधार पर कहा जा सकता है कि विकासशील महाकाव्यों की परम्परा में भक्ति की रसधारा बहाने का सर्वप्रथम श्रेय विष्णुदास को ही है। इनका रचनाकाल 1435 से प्रारम्भ होता है। रामायनी कथा इनकी अंतिम काव्य रचना है जिसे लगभग 1441 में लिखा गया था।

विष्णुदास ने अपने काव्य में आल्हा छंद, चौपाई, दोहे और हरितालका छंद का प्रयोग किया हैं

इनकी रामयनी कथा की कुछ काव्य पक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं–

सरजू सरित अजुध्यापुरी । सौ विसकर्मा – आपुन करी ।
बारह जो जन बसति लम्बाई । तितने फेर फिरी चौराई ।
ऊँचे मंदिर कोट पगार । कंचन कलस सोहित द्वार ।
बहुत बाग मठ सर बाउरी । कुवा निवाननि सोभित पुरी ।
ठॉ ठॉ प्रिय जू कहत पुरान । करहि अखारौ वीर सुजान ।

हरीराम व्यास-

कविवर हरीराम व्यास ओरछा सं0 1567 में जन्में थे। इनके पिता श्री समोरवन शुक्ल सखी–भाव के उपासक थे। इनकी माता का नाम देविका था। हरीराम व्यास का उपनाम तो 'शुक्ल' था किन्तु भागवत पुराण कथा वक्ता होने के नाते इन्हें व्यास नाम से सम्मान मिला और बाद में इनका उपनाम व्यास ही लोक प्रचलित हो गया । श्री हरीराम व्यास की कृतियों के नाम हैं:–

1. रागमाला 2. नवरत्न 3. व्यासवाणी 4. संगीत शास्त्र
5. रस पंचाध्यायी

इनके काव्य में रससिद्ध, श्रृंगार लीला और भक्ति की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। रसपंचाध्यायी में समाज सुधार की काव्याभिक्ति प्रबल स्वर में हुई है। व्यास जी ''रासप्रेमी'' थे। ओरछा में वे रास के लिए प्रसिद्ध हो गये थे।

बृन्दावन के प्रति व्यास का भक्ति भाव देखने योग्य है।

रूचत मोहिं वृन्दावन को साग
कंदमूल फलफूल जीविका
मैं पाइ बढ़ भाग
धृत, मधु, मिश्री, मेवा
मेदा मेरे या यै छाग
एक गाय पै वारौ।

कृपाराम

इनका जन्म सं0 1570 में हुआ था। इनके संबंध में व्यापक जानकारी तो उपलब्ध नहीं है। इनकी मुख्य कायाकृति ''हितहरंगिणी'' मानी जाती है।

सिधि निधि सिवमुख
चन्द्रलखि माघ सुद्ध तृतियास
हित तरंगिणी हौं रचौ
कविहित परम प्रकाशु

सींस महल में बसत हो,
गहें भोर की त्रास ।
कुज कुटीं में क्यों बचौ,
मोतन की लखि वास ।
तौ लौ ठानेंई रहै,
सून पनौ प्यौ जान ।

जौ लौ चित्त ना सुनै,
भोरी बांकी तान ।
लोचन चपल कटाक्ष सर
अनवारे विसपूर
मन मृग बेधें मुनिन के
जन जन सहित बिसूर ।

बलभद्र मिश्र :-

बलभद्र मिश्र ओरछा के पं0 काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे। आपका जन्म सं0 1600 वि0 में हुआ। इनकी काव्य साधना का समय 1640 के लगभग माना जाता है। बलभद्र मिश्र की काव्य साधना भक्तिकाव्य के उतरार्द्ध की काव्य शैली का उदाहरण है। बलभद्र ने अपने काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा संदेह आदि अलंकारो का उत्तम प्रयोग किया है। इनकी काव्य कृतियाँ के नाम है–

1. बलभद्री व्याकरण
2. हनुमन्नाटक
3. गोवर्धन सतसई
4. नखसिख वर्णन

काव्य उदाहरण प्रस्तुत है

पाटलन कोकनद केसे दल दोऊ
बलभद्र वासर अनींदी लखी बाल मैं
सोभा के सरोवर में वाडव की आभा कैधौ
देवधुनी भारती मिली है पुण्यकाला ।
काय कैबरत कैधों नासिका उड़प बैठो।
खेलत सिकार तरूनी के मुख तान मैं।
लोचन सितासित में, लोहित लकीर मानो।
बांधे जुग मनि रेसम की डोर लाल में।
मरकत के सूत, केधौ पन्नग के पूत, अति
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं ।
मखतूल गुनग्राम सोमित सरस स्याम,
काम मृग कानन के कुहू के कुमार हैं।
को की किरन, कै जलजनाल नील तंतु,
उपमा अनंत चारू चंवर सिंगार हैं।
कारे सटकारे भींजे सोंधे सों सुगंध बास,
ऐसे बलभद्र नव बाला तरे बार हैं। [1]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा वराणसी पृ0 114

रामसाह :-

श्री रामसाह ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म सं0 1600 वि में हुआ था। सं0 1649 वि. से 1662 वि0 तक ओरछा राज्य के महाराज पद को भी आपने सुशोभित किया। इनका ह्रदय भक्तिभाव में डूबा रहा है। इन्होंने अपना परिचय स्वयं इस कविता में दिया है:-

प्रभु तुम अपनौ कर मोय जानौ,
रामसाह मधुकर कौ बैटा।
ता नातै माय मानौ।
कुंठी तिलक छाप उरमाला
ये ई भक्त कौ बानो।
बचन कहित सुधि रही
न मोकौ हतो प्रेम कौ सानौ।
देवदरस अब आदि बिहारी,
लाखौ सो सकल जमानौ।
जौपुर नृपति परीक्षा कारन
कपट रूप को ठानौ।
जो प्रन पूरौ होय न मेरौ
तुरतई देहै तानौ।
तातै लाज राख दो प्रन की
जो भक्त पहचानौ।
प्रभु तुम अपनौ कर मोय जानौ।

राय - प्रवीन :-

राय प्रवीण का जन्म सं0 1642 वि में हुआ था। ओरछा नरेश महाराज इन्द्रजीत सिंह के यहां वह नर्तकी थीं। आचार्य केशवदास की छात्रछाया में वह काव्य रचना में प्रवीण हुई। वह अनुपम सुन्दरी थीं।

कहा जाता है राय–प्रवीन की सुन्दरता और काव्य प्रतिभा की ख्याति सम्राट अकबर तक

पहुंची थी। अकबर ने महाराज इन्द्रजीत को संदेश भेजा कि राय प्रवीन को ''दिल्ली दरबार में भेजा जाय'' । यह संदेश राय–प्रवीन को सुना दिया गया । राय–प्रवीन महाराज से अनुरोध करती हैः–

आई हों बूझत मंत्र तुम्हें,
जिन श्वांसन सौ सिगरी मति खोई।
देह तजौ कि तजौ कुल कानि,
हियें न लजौ लजि है सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ कौ पथ,
चित्त विचार कहो तुम सोई।
जामें रहे प्रभु की प्रभुता,
अरू मोर पतिव्रत भंग न होई।

यह निश्चय हुआ कि वाकपटुता में सिद्धहस्त विद्वान आचार्य केशवदास जी के साथ राय–प्रवीन सम्राट अकबर के राज दरबार में उपस्थित होगी। अकबर सम्राट के दरबार में ''अकबर तेरे'' पंक्ति पर एक समस्या पूर्ति हेतु दी गयी। रायप्रवीन ने ''अकबर तेरे'' समस्या पूर्ति में यह छंद रच डाला।

''अंग अनंत तहीं कुच शंभु,
सुकेहरि लंक गयन्दहि घेरे ।
है कच राहु तही उदै इन्दु,
सुकीर कि बिम्बन चोच न फेरे
भौह कमान तहीं मृग लोचन,
खंजन वयो न चुगें तिल तेरे।
कोउ न काहु सौं बैर करें,
सुडरें डर शाह अकबर तेरे।

सम्राट अकबर ने रायप्रवीन की काव्य प्रतिभा से प्रसन्न होकर उसे पुरस्कृत किया।

प्राणनाथ-

प्राणनाथ कवि का जन्म 1685 ई0 में हुआ था। इनकी कविता काल 1710 ई तक माना जाता है । प्राणनाजी संत कोटि के कवि थे। इनका मूलनाम मेहराज था। इनकी भक्ति भावना के अनुरूप महाराज के गुरू जी ने प्राणनाथ की उपाधि से विभूषित किया था। छत्रसाल महाराजा के दरबार में भी प्राणनाथ जी सम्मानित रहे।

प्राणनाथ जी की काव्य कृतियाँ हैं–

1. कीर्तन 2. कयारमत नामा 3. पदावली 4. प्रगटवाली 5. ब्रहमवाणी 6. राजविनोद आदि।

चन्द्र बिन रजनी, सरोज बिन सरवर।
तेज बिन तुरंग, मतंग बिन मद को।
बिन सुत सदन नितम्बिनी सुपति बिनु।
धन बिनु धरम नृपति बिन पद को।
बिनु हरि भजन जगत सो हैं जग कौन।
नोन बिनु भोजन विटय बिना छंद को।
प्राणनाथ सरस्स समान सौहे कवि बिनु
विद्या बिन बात न नगर विना नद को।

फुटकर बुन्देली भक्ति-लोक काव्य-

फुटकर बुन्देली लोक गीतों में भजन, रमटेरा, दिलरी, दुलारी, देवीगीतों की भरमार है। भक्ति में तीर्थाटन के महत्व को सभी जानते हैं। यात्रा– जिसे बुन्देली में ''जाना'' पुकारा जाता है सामाजिक एकता का भाव उभरता है।

बद्रीनाथ, गया, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम, द्वारिकापुरी की तीर्थ यात्रा प्रसिद्ध है। बुन्देलखण्ड के भी अपने तीर्थ हैं जिनमें प्रमुख हैं– चित्रकूट, बालाजी, ओरछा, अछरूमाता आदि ।

तीर्थ यात्रा के बुन्देली लोक काव्य कों ''रमटेरा'' (तीर्थ दर्शन काव्य) कहते हैं।

रमटेरा-

चलन चलन सब कोउ कहैं,
चलबौ हांसी न खेल हो।
चलबो साँचौ ओइ को,
जीखौ भैरों बताबे गैल हौ
चलन चलौ रे।

दिनरी गीत (वैराग्य भाव गीत)-

सबसे हिल मिलकर रहने का संदेश और माटी में देह मिल जाने का बोध जगाने वाला बुन्देलीगीत लोक जीवन निर्वेद भाव भरता है।

अरे अरे मनुआ,
ओरे करलै सब सौ चिनार।
काल कलां पंछी रम जै है,
तेरे ऊपर जमै नई घास।
खाले पीलै दैले लैलै,
करले भोग विलास।
सब काऊसौ हिललें मिललै,
कर लै तीरथ पिराग।
मटिया कुमरान लै है तेरी,
पूंछै न कोऊ बात।
अरे मनुआं,
और कर लै सबसौ चिनार।

बुन्देले हर बोलों का गीत-

हर गंगा हर गोपाल,
हर के बचन सुनौ दो चार।
एक बार शिव गंग बुलाय, लीने अपने अंग बिठाय।
सहजई पूंछ लई कुसलात, गंगा बोली मन मुस्कात।
सिरधर मौको दे सम्मान, राखें तुमनें मोरे मान।
अब सब मन की जानत बात कौन भेद जो तुमें छिपात।
हर गंगा हर गोपाल,
सुन सिव पुलक हों गई देह
गंगा जू से कीनो नेह। [1]

रामनाम भजन-

बुन्देली ग्रामीण महिलायें में यह गीत अत्यन्त लोकप्रिय है। वस्तुतः रसिक प्रिया के लिए इसे चेतावनी गीत कह सकते हैं।

राम राम खों भज लो प्यारे,
क्यों करते सेना कानीं।
हम जानी कै तुम जानीं।
बालपन हंस खेल गंवाये।
दूद पिये मुस्का जानी।
हम जानी कै तुम जानीं।

राम राम खों भज लो प्यारे।

इस भजन 'रत्ना' और कबीर की फटकार झलकती है। बचपन, जवानी और बुढ़ापा के दौर की मनोदशाओं को कितना स्वाभाविक और लोकलुभावन चित्रण हैं। इस बुन्देली लोकभजन में जिसे महिलाऐं बुन्देली 'गारी' के नाम से भी गाती हैं।

---

1. बुन्देली भाषा संस्कृति – डॉ0 कन्हैयालाल कलश ।

बुन्देली का श्रृंगार-काव्य -

हिन्दी साहित्य का उत्तर काल में काव्य चमत्कार प्रदर्शन की ओर उन्मुख हुआ। 'चमत्कार'–प्रदर्शन या कला – प्रदर्शनी – की इस मनोवृत्ति को साहित्यमनीषियों ने ''रीति'' का नाम दिया। ''रीति'' काव्य में जहाँ कविता की सजावट पर कवि का अधिक ध्यान था। कहाँ वही उनकी यह मनोवैज्ञानिक मजबूरी हो गई कि इस कविता सजावट के फेर में उन्हें ''काव्य भाव'' की दिशा भी बदलनी पड़ी। पूर्व मध्यकाव्य की कविता ''ईश्वर'' के रूपसौन्दर्य, गुणसौन्दर्य तथा प्रभाव सौन्दर्य को देख रही तो उत्तर मध्यकाल की कविता – नारीके रूप सौन्दर्य ,भावसौन्दर्य और कामसौन्दर्य पर नयन गड़ाने लगी। इस काव्य निधि को ही श्रंगार काव्य कहा गया है। इस काव्य में शास्त्रीय कला कारी तो है ही, नायक नायिका के आकर्षक, नारी के ''नखशिख'' वर्णन और प्रेम प्रणय की विभिन्न निजी और सामाजिक स्थितियों और मुद्राओं का रागात्मक अंकन है। इस बदलाव के कारणों और प्रभाव के विश्लेषण में न जाकर ''श्रंगार काव्य'' की अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों को रेखांकित करना यहाँ अभीष्ट है।

बुन्देली काव्य – मनीषी डॉ0 बलभद्र तिवारी ने लिखा है कि–

'' श्रृंगार गीतों में सौन्दर्य परक भावनाओं को विशेष रूप से व्यक्त किया गया है। पति पत्नि के बीच घटित होने वाले श्रंगार प्रसंगो की बुन्देली लोकगीतों में प्रचुरता है। इनमें मान लीला से लेकर सौत चिंतन तक की विभिन्न स्थितियों का वर्णन होता है'' ।

''यहाँ पर विप्रलम्भ श्रंगार की निराली सुषमा देखने को मिलती है। वर्षा में कोयल, पपीहा, श्रावण में झूले, शीत में लम्बी कालीरात या चन्द्रमा, बसंत में कोयल आदि उद्दीपन का काम करते हैं और काम की दशाओं को भड़काते हैं। श्रृंगार गीतों में उनसब बाधक तत्वों का भी वर्णन है जो श्रंगार को फलित नहीं होने देते और विप्रलम्य की प्रीतिति करते हैं ।'' जहाँ कही नायिका का सौन्दर्य वर्णन आया है वह किसी भाषा के साहित्य से हीन नहीं है।'' (1)

''चलतन परत पैजना छमके, पाउन गोरी धन के ।
सुनतन रोम रोम उठ आवत, धीरज रहत न तनके ।

---

1. बुन्देली लोक साहित्य – डॉ0 बलभद्र तिवारी – पृ0 58 – 59 ।

छुटे फिरत गैल खोरन में, सुर मुख्तार मदन के ।

करबे जोग भोग कछु नाते, लुट गए बालापन के ।

'ईसुर' कौन कसाइन डारे, जे ककरा कसकन के ।''

बुन्देल श्रंगार काव्य के प्रमुख कविगणः–

कोविद मिश्र – इनका जन्म सं0 1720 में हुआ था। श्री मिश्र जी महाराजा ओरछा उधोतसिंह के दरबारी कवि थे। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं– भाषा हितोपदेश, मुहुर्तदर्पण, राजभूषण नायिका भेद ।

इनके काव्य मुहुर्तदर्पण – से एक छंद पुस्तुत हैः–

भूरत के जन्म लग्न रासि सोहि जनु ।

स्वामी औतन उदय में सदा लसै ।

तीजै, छटै, दसन, एकादस, भवनरास

तिन ही तै तन माह अहित वहाँ जसै ।

अरि जन्म लग्नरास, स्वामी और तिनके जौ,

तिन तै हू उपचय रासि जो कछु बसै ।

चौथे सातवें शुभवर्ग सीर षोदय माह

करै नृयगौन सुख सम्पति लहै जसैं ।

नेवाज – ये अंतर्वेद के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनका समय संवत 1737 के लगभग माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि पन्ना नरेश महाराजा छत्रसाल के यहाँ राजदरबारी कवि थे। शिवसिंह ने नेवाज का जन्म संवत 1739 माना है। सच कौन सी तिथि है कहना मुश्किल है। इनके फुटकल कवि अनेक स्थानों पर संग्रहीत मिलते है। संयोग श्रृंगार के वर्णन में इनकी विशेष प्रवृत्ति जान पड़ती है। एक सवैया उद्धृत हैः–

देख हमै सब आयुस में जो कुछ मन गावै सोई कहतीं है।

ये घरहाई लुगाई सबै निसि घौंस नेवाज हमें दहतीं है।

बातें चवाव भरी सुनिकै रिस आवति, पै चुप हवै रहतीं हैं।

काह पियारे तिहारे लिये सिगरे व्रज को हंसिवो सहतीं हैं। [1]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0 145 ।

श्रीपति – श्रीपति कालपी के रहने वाले ब्राह्मण थे। इन्होंने संवत 1777 में 'काव्यसरोज' नामक नीतिग्रंथ बनाया। इसके अतिरिक्त इनके निम्नलिखित ग्रन्थ हैं।

1. कवि कल्पद्रुम　　2. रससागर　　3. अनुप्रास विनोद

4. विक्रम विलास　　5. सरोज कलिका　　6. अलंकार गंगा

इनका काव्य सरोज ग्रन्थ बहुत प्रौढ़ ग्रन्थ हैं। इसमें काव्यांगों का निरूपण बहुत स्पष्टता के साथ किया गया हैं। आचार्यत्व के अतिरिक्त कवित्व भी इनमें ऊंची कोटि की था। इनका रचना विवेक जाग्रत और रूचि अत्यन्त परिमार्जित थी। झूठे शब्दाडंवर के फेर में ये नहीं पड़े।

सारस के नादन को बाद न सुनात कहूं
नाहक हीं वकवाद दाहुर महा करै।
श्रीपति सुकवि जहां ओज ना सरोजन कीं,
फूल न फूलत जाहि चित दै चहा करै।
बकन कीं बानीं कीं विराजति राजधानी
काई सों कलित पानीं फेरत हहा करे ।
घोंघन के जाल, जामे नरई सेवाल ब्याल
ऐसे पापीं ताल को मराल लै कहा करै ?

करन कवि –

श्री करन कवि षटकुल कान्यकुब्जों के अंतर्गत पांडे थे। छत्रसाल के वंशधर पन्ना नरेश महाराज हिन्दुपति की सभा में रहते थे। इनका कविता काल 1860 के लगभग माना जा सकता हैं। इन्होने 'साहित्यरस' और 'रस कल्लोल' नामक दो रीतिग्रंथ लिखे। इनमें लक्षण, व्यंजना, ध्वनिभेद, रसभेद, गुणदोष आदि काव्य के प्रायः सब विषयो का विस्तार से वर्णन किया गया है। कविता भी इनकी सरस और मनोहर है। इससे इनका सुविज्ञ कवि होना सिद्ध होता है।

एक कवित्त देखिये–

कंटकित होत गात विपि समाज देखि,
　　　　हरीं हरीं भूमि हेरि हियो लटजतु है।
एते पै करन धुनि परति मयूरन कीं,
　　　　चातक पुकारि तेह ताप सरजतु है।
निपट चवाई भाइ बंधु जे बसत गांव,

पांव परे जानि कै न कोउ बरजतु है।

अरज्यो न मानी तू न गरज्यो चलत बार,

एरे घन बैरी ! अब काहे गरजतु है।

प्रतापसिंह –

श्री प्रातपसिंह चरखारी के महाराज साह के यहां रहते थे। श्री प्रतापसिंह रतनसेन बंदीजन पुत्र थे। इन्होंने ''व्यंग्यार्थ कौमुदी'' और काव्य विलास की रचना की। इन दो पुस्तकों के अतिरिक्त इनकी निम्न लिखित पुस्तकें और मिली हैं–

1. जयसिंह प्रकाश (सं0 1852) 2. श्रृंगार मंजरी (सं0 1889)

3. श्रृंगार शिरोमणि (सं0 1894) 4. काव्य विनोद (सं0 1896)

5. रसराज की टीका (सं0 1896) 6. रत्न चंद्रिका (सतसई की टीका सं0 1896)

7. जुगल नखशिख (सीताराम का नखशिख वर्णन)–

इस सूची के अनुसार श्री प्रतापसिंह का कविताकाल सं0 1880 से 1900 तक माना जा सकता है। पुस्तकों के नाम से ही इनकी साहित्य मर्मज्ञता को समझा जा सकता है । आचार्यत्व में इनका नाम मतिराम और श्रीपति के साथ आता था। नायिका के भेदों रसादि के सब अंग तथा भिन्न भिन्न बंधे उपमान का अभ्यास न रखने वालों के लिये इनके पघ पहेली की तरह ही हैं। '' व्यंग्यार्थ कौमदी'' का यह सवैया देखें:–

सीख सिखाई न मानति है

बर ही बस संग सखीन के आवै।

खेलत खेल नए जल में,

बिना काम वृथा कत जाम बितावै ।

छोड़ि के साथ सहेकिन को,

रहि कै कहि कौन सवादहि पावै ।

कौन परी यह बानि, अरी !

नित नीरभरी गगरी ढरकावै ।

प्रतापसिंह में काव्यकौशल अपूर्व है। सह्दयों की सामान्यदृष्टि में तो उक्त सवैया वयासंधि की मधुर क्रीड़ावृति का परम मनोहर दृश्य है। नायिकाभेद से अज्ञात यौवना भ्रम का उत्तम उदाहरण है। 'प्रतापसिंह' की काव्य भाषा एक रस चलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'प्रतापसिंह' को 'पदमाकर' के समक्ष बुन्देलखण्ड का एक बड़ा कवि माना है। [1]

वख्शी हंसराज –

श्री वख्शी हंसराज वास्तव श्रीवास्तव कायस्थ परिवार के थे। इनका जन्म सं0 1799 में पन्ना में हुआ था। इनके पूर्वज हरिकिशुन पन्ना राज्य के मंत्री थे। हंसराज जी भी पन्ना नरेश श्री अमानसिंह जी के दरबारियों में थे। इनके प्रमुख चार ग्रन्थ मिलते हैं–

1. स्नेह सागर 2. विरह विलास 3. रामचन्द्रिका
4. बारहमासा

'स्नेहसागर' नौ तरंगो में पूरा हुआ है। इसमें कृष्ण की विविध लीलाऐं सार छंद में वर्णित हैं। इनकी भाषा मधुर सरस और चलती है। अनुप्रास बहुत ही संयत मात्रा में और स्वाभाविक है। कल्पना भावविधान में ही पूर्णतया प्रवृन्त है। भावविकास के लिए अत्यंत परिचित और स्वाभाविक व्यापार ही रखे गए हैं।

दमकंति दिपति देह दामिनि सी चमकत चंचल नैना ।
घूंघट विच खेलत खंजन से उड़ि उड़ि दीठि लगै ना ।
लटकति ललित पीठ पर चोटी विच विच सुमन संवारी ।
देख ताहि मैर सो आवत मनहु भुजंगिनि कारी ।
••
इत ते चली राधिका गोरी सौपन अपनी गैया ।
उत तें अति आतुर आनंद सों आए कुवंर कन्हैया ।।
कसि भौहें, हंसि कुवंरि राधिका कान्ह कुवंर सौं बोली ।
अंग अंग उमगि भरे आनदौ, दरकति छिन छिन चोली ।।

बोधा –

श्री बोधा कवि राजापुर जिला बांदा के, जिसे आज चित्रकूट धाम कवी के नाम से

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0 175 ।

जानते हैं, के रहने वाले थे। ये अपने बाल काल से ही पन्ना रहने लगे थे। इनका वास्तविक नाम वृद्धिसेन था। ये सरयूपारी ब्राह्मण थे। पन्ना महाराजा इन्हें प्यार से बोधा पुकारते थे। बाद में बुद्धिसेन 'बोधा' नाम से ही प्रसिद्ध हो गये। इन्हें संस्कृत और फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म संवत 1804 दिया है। इसका कविता काव्य 1830 से 1860 संवत माना जाता है।

बोधा रसिक कवि थे। कहते हैं पन्ना महाराजा के दरबार में ''सुभान'' (सुबहान) नाम की एक वेश्या थीं। इन्हें ''सुभान'' से प्रेम हो गया। इससे महाराज इनसे नाराज हो गये और छः माह के लिए इन्हें देशनिकाला की सजा झैलना पड़ी। छः माह ''सुभान'' के वियोग में इन्होंने बिताये। इसी समय ''विरहवारीश'' नाम ग्रन्थ रचा। छः माह पश्चात जब बोधा पुनः पन्ना राजदरबार में लौटे तो इन्होंने महाराजा को ''विरहवारीश'' के कुछ कवित्त सुनाये। महाराजा प्रसन्न हुए। महाराजा ने प्रसन्न होकर ''बोधा'' का ''सुभान'' से मिलन करा दिया। 'विरहवारीश' के अतिरिक्त ''इश्कनामा'' भी इनकी प्रसिद्ध रचना है। इनके काव्य में प्रेम की पीर की व्यंजना बहुत ही मार्मिक हुई है।

कुछ पद्य प्रस्तुत हैं:-

अति खीन मृनाल के तारहु तें नहिं ऊपर पांव दै आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहाँ परतीति को टॉड़ो लदावनो है।
कवि बोधो अनी धनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित उरावनो है
....
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।

एक सुभान के आनन पै कुरवान जहां लगिरूप जहां को।
कैया सतक्रतु की पदवी लुटिए लखि कै मुसकाहट ताको।
सोक जरा गुजरा न जहां कवि बोधा जहां उजरा न तहां को।
जान मिलै तो जहान मिलै, नहिं जान मिलै तो जहान का को। [1]

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ0 204 ।

ठाकुर बुन्देलखण्डी –

ठाकुर नाम के तीन कवि हो गये। इसी कारण ठाकुर (बुन्देलखण्डी) लिखना पड़ा है। श्री ठाकुर कवि का पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। ये कायस्थ परिवार से थे। ठाकुर कवि का जन्म 1820 संवत 1823 में ओरछा में हुआ था। श्री गुलावराय – ठाकुर कवि के पिता थे। ठाकुर कवि को अच्छी शिक्षादीक्षा दी गई थी। काव्यप्रतिभा के धनी ठाकुर कवि को जैंतपुर के राजा केसरी सिंह ने बहुत सम्मान दिया। विजावर के राजा ने भी एक गांव देकर ठाकुर का समान किया था। ठाकुर कवि की यशकीर्ति चारों और व्याप्त हो गई थी। ठाकुर कवि का देहावसान संवत 1880 में हुआ। इनकी काव्य सेवा का समय सं0 1850 में 1880 तक समझना चाहिए।

यशकीर्ति के कारण ठाकुर कवि सर्वग्राही थे सच्चीं उमंग और ठाकुर कृत्रिमता से मुक्त सच्ची उमंग के कवि थे। ठाकुर की कविता में न तो कल्पना की उंचीं उड़ान होती थीं न ही शब्दाबंडर । ठाकुर अपनी स्वाभाविक भाषा में अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान कर देते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि जन जन की बोलचाल की भाषा में भावों को ज्यों का त्यों सामने रख देना ही ठाकुर कवि का काव्यलक्ष्य था। लोकोक्तियों का जैसा मुधर उपयोग ठाकुर कवि ने अपनी कविता में किया वैसा अन्य कवि में कम ही है। ये कहावतें कुछ तो सर्वत्र प्रचलित है और अधिकांश बुन्देलखण्ड में ही प्रचलित हैं। ठाकुर एक स्वच्छंद कवि ही कहे जायेंगे। क्योंकि उन्होंने किसी क्रम या विषय से बद्धहोकर कविता नहीं की। ठाकुर सच्चे उदार, भावुक और लोकहृदय पारखी कवि थे।

ठाकुर मुख्य रूप से प्रेम निरूपण में अधिक रमते थे पर लोक व्यवहार के अनेकांगदर्शी चिन्तवृति भी उनमें भरपूर थीं। प्रेमभाव की अभिव्यक्ति अधिकाधिक के अतिरिक्त वे फाग, बसंत, होली, हिंडोंरा आदि उत्सवों के वर्णन में भी मग्न हो जाते थे।

कवि कर्म सरल नहीं होता इस पर ठाकुर की उक्ति हैः–

सीखि लींन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीन्हों जस और प्रताप को कहानो है ।
सीखे लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीन्हों मेरू और कुवेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बांधियत बानो है।
ढेल सो बसाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्र कीबो खेल करि जानो है।

• •

ठाढे रहे घनश्याम उतैं,

इत मैं पुनि आनि अटा चढ़ि झांकी ।

जानति हौ तुमहू ब्रज रीति,

न प्रीति रहै कदहूं पल ढाँकी ।

ठाकुर कैसे हूं झूलत नाहिं नै,

ऐसी अरी वा बिलोकनि बांकी ।

भावत न छिन भौन को बैठिवौ,

घूघट कौन की लाज कहाँ की । [1]

---

1. बुन्देली काव्य परम्परा – (प्राचीन काव्य) डॉ0 बलभद्र तिवारी पृ0 235 – 266 । (1971)

बुन्देली फाग - फड़् काव्य-

बुन्देली का फाग काव्य सम्पन्न काव्य है। फागें फाल्गुन मास में गाये जाने वाले लोकगीत की धारा है। फाल्गुन मास प्रारंभ होते ही फागों के फड़ लग जाते हैं। फाग काव्य के फड़ो में विशेष रूप से चौकड़िया, छंदयाउ आदि फागों का प्रयोग होता है। मऊरानीपुर छतरपुर, चरखारी, महोबा, गुरसरांय, विजावर आदि प्रमुख स्थानों पर फड़काव्य की लोकप्रियता सर्वाधिक रही। फड़ों में प्रश्नोत्तरी फागों का विशेष महत्व था। यह एक प्रकार से प्रतिस्पर्द्धा काव्य शैली ही है। फड़ों में प्रश्नोत्तर की फागों के आचार्य कवि एक प्रकार से आशु कवि प्रतिभा में धनी होते थे। प्रश्न का उत्तर प्रश्न पूरा होते ही आ जाता था। 'भरत' कवि की एक फड़ फाग का उदाहरण देखें-

मुदरी कौन ठिया पै डारी, उत्तर कहो विचारी ।
कितनी बेरा कौन लगन में, सीता कर में धारी ।
कौन नक्षत्र कौन तिथि अन्तर गए रावन दरवारी ।
द्विज भरत कय भेद फाग को बता, बोल कै हारी ।
आशय है या तो प्रश्न का उत्तर दो या
हार स्वीकार करो ।

फाग काव्य- फाग काव्य धारा बुन्देली जन जीवन की चित्त भाव वृतियों को बहुत व्यापक रूप से सींचती है। बुन्देली फाग परम्परा बहुत प्राचीन है। डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त की मान्यता है कि ''नौवी शती से लेकर आजतक उसने कई उतार चढ़ाव देखे हैं। उसके विकास का प्रथम चरण ''दोहा'' छंद पर आधारित है। अपभ्रंश का लाड़ला छंद दोहा कब लोक काव्य में आ गया, यह खोज का विषय है।

दूसरे चरण में पहले पद शैली की फागों का प्रचलन हुआ। 15 वी शती में ग्वालियर सांस्कृतिक केन्द्र था। वहीं से पदशैली की गायकी शुरू हुई। 16वीं और 17 वी शती में ब्रज और बुन्देलखण्ड की सांस्कृति से ब्रज में ''रसिया'' का आगमन हुआ, लेकिन यह बुन्देली धज में ढल गया।आख्यानक और छंदयाउ फाग की रचना भले ही 12 वी 13 वीं शती में हुई हो, लेकिन 17वीं 18वीं शती में उसके प्रचलन का जोर रहा। इसी समय दोहे के साथ रोला छंद जोड़कर एक नयी प्रकार की फाग आयी । लावनी के विकास और उसकी रंगतों के प्रभाव से ''लाडली फागें'' और लेद के आविष्कार से 'लेद की फागे' विकसित हुई। इस प्रकार मध्ययुग फागो की विविधता का युग रहा।

19 वीं शती के अंतिम चरण में लोककाव्य का पुररूत्थान क्रांतिकारी सावित होता है। उस कालखण्ड में चौकड़िया और खड़ी फागों का उत्थान फागों के नये युग की दुंदमी बजाता है। चौकड़िया युग के प्रवर्तक ईसुरी हैं। [1]

ईसुरी के पहले फाग अपनी सीमित वस्तु और शिथिल गायकी के कारण अपने में सिमटी हुई थीं। एक तरफ लम्बे मुक्तक थे जो फड़वाजी के लिए अनुपयुक्त थे और दूसरी तरफ दोहे पर आधारित लघु मुक्तक थे, जो नृत्य और संगीत की दृष्टि से छोटे पड़ते थे। इसलिये ईसुरी ने निश्चित कड़ियों के छंद की रचना की, जो फड़बाजी और गायकी दोनों को व्यापक फलक देने में समर्थ थी। चौकड़िया फागरूप इतना लोकप्रिय हुआ कि बुन्देलखण्ड के गांव गांव में उसके स्वर उठे और लोकमानस में ऐसी हिलौर उठी कि लोक का तनमन नहा गया।

चौकड़िया जिसे फागछंद कहा जा सकता है, का अपना महत्व है। चौकड़िया की व्यंजना अपना विशेष महत्व रखती है। चौकड़िया की रसमयता सबसे बड़ी सम्पत्ति है। इसमें लोकभावुकता तो रहती है पर लोक चेतना का प्रकाश भी कम नहीं होता है। इस प्रकार चौकड़ियों द्वारा ह्रदय और बुद्धि दोनों को रसानुभूति होती है। चौकड़िया फाग का प्रथम चरण की अर्धाली में उक्ति का स्वाभिक कथन होता है, दूसरी ऊधोली इस कथन चटक रंग भर देती है। तीसरे चरण में उक्ति को विस्तार मिलता है। अंतिम चरण में ''उक्ति'' को सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार फाग वस्तुतः मुक्तक उक्तियों का भाव विचारमय कलात्मक रसभरा काव्य विधान है।

बुन्देली फाग के स्वरूप में परम्परा और नवीन प्रगति का समावेश है। इस लोक मुक्तक काव्य में श्रृंगार, सौन्दर्य और रसिकता की मूल प्रवृत्ति तो है ही साथ ही आधुनिक समाज की समस्याओं और विचारों को भी समुचित अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। बुन्देलखण्ड के आधुनिक कवियों ने फागों में सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ चित्रों को चित्रित किया। समकालीन चेतना का नयारंग भी बुन्देली फागों के भरा है।

---

1. 'बुन्देली प्रकाश' – ओमप्रकाश सक्सेना ''प्रकाश'' आधायिका में डॉ नर्मदा प्रसाद गुप्त ।

फाग काव्य के रचिताओं में हैं गंगाधर व्यास, ख्यालीराम, ईसुरी, परशुराम पटैरिया, रामनारायण व्यास, घनश्याम दास पाण्डेय, लाला शिवदयाल, पंडित हरदयाल, परमानन्द बुधोलिया, खुमान प्रसाद हयारण, गंगा प्रसाद हयारण, झलकन रामदयाल वर्मा, ओमप्रकाश सक्सेना ''प्रकाश'' एवं शिवाजी चौहान ''शिवा'' आदि कवि गणों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

यहां परिचयात्मक रूप से ईसुरी, ओम प्रकाश सक्सेना प्रकाश तथा गंगाधर व्यास की फागों का विशेष परिचय दिया जा रहा है।

कविश्रेष्ठ जनकवि ईसुरी–

बुन्देली काव्य की सुगंध मिठास ओर अमृतरस का श्रेष्ठतम स्वाद ''ईसुरी काव्य में भरा है। ईसुरी के बुन्देलीकाव्य रस का प्रभाव बुन्देली जनमानस पर जितना व्यापक है हिन्दी समालोचक और विद्धानों पर उनके काव्य का प्रभाव उतना ही गहरा है। ईसुरी ने ''बुन्देली'' को हिन्दी साहित्य में वही स्थान दिलाया जो उनके पूर्व ब्रज और अवधि को प्राप्त था। 'ईसुरी' का काव्य कृतित्व सर्वथा मौलिक है। दैनिक जीवन के विविध प्रसंगों की फागे ईसूरी के मुख से सहज झरने की तरह प्रगट और प्रवाहित होती है। ईसुरी के काव्य विषय में विवध ाता है। भक्ति, दर्शन, प्रेम–प्रणय, नायिक सौन्दर्य, लोक–नीति और लोक धर्म सब कछु है ईसुरी की फागों है।

ईसुरी का पूरा नाम ईश्वर प्रसाद था। इनका जन्म स0 1881 में झांसी जनपद की तहसील मऊरानीपुर के ग्राम मेढ़की में जिझौतिया ब्राह्मण घर में हुआ था। इनके पिता जी का नाम भगवती प्रसाद और माताजी का नाम गंगाबाई था।

डा0 श्यामसुन्दर बादल ने तमाम प्रणाम जुटाकर सिद्ध किया हे कि ईसुरी का जन्म 1896 और देवहासन सं0 1966 में हुआ था। डा0 बादल जी ने अपने शोधाग्रन्थ ''बुन्देली का फाग साहित्य'' में ईसुरी के पिताजी का नाम पं0 भोले अड़जरिया तिवारी और मामा का नाम पं0 मूथर नायक बतलाया है। ईसुरी जी की धर्मपत्नी का नाम राजा बेटी (स्यामबाई) बतलाया है। प्रमाण में यह फाग प्रस्तुत की है और ऐसा माना है कि यह फाग ईसुरी ने अपनी पत्नी की मृत्यु पर लिखी थीं। [1]

---

1. बुन्देली का फाग साहित्य – डॉ0 श्यामसुन्दर बादल ।

''हम पै डार गई मोहनियाँ, गोरे बदन की धनियां।
बाह बरा बाजूबंद सोहे, कर में जड़ी ककनियाँ।
नखसिख सब गानों पैरें पायन में पैजनियां।
ईसुर कात चिता पैंधर दयओ तोखां आज रजनियां।

बुन्देली काव्य मनीषी श्रीरामचरन हयारण मित्र अपने ग्रन्थ ''बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य में लिखते हैं–

''ईसुरी की माता का स्वर्गवास इनकी बाल्यावस्था में हो गया था। इस कारण इनका पालन पोषण इनके मामा जानकी प्रसाद के यहां हुआ था। मामा लुहर ग्राम (हरपालपुर) में निवास करते थे। ईसुरी की जब पढ़ने की व्यवस्था की गई तब इनका मन नहीं लगा (येतो) ग्रामीण मित्रों के साथ अथाई पर बैठकर फागें गाया करते थे। पाण्डे के अत्यधिक श्रम करने पर इनको बड़ी मुश्किल से बारह खड़ी और चन्नायके ही कंठस्थ हो सके । '' (2)

ईसुरी का कविता काल इसी समय से प्रारंभ होता है। खेतों की रख वाली करना, होरा खाना और फागे बनाना गाना ईसुरी को इसी में रस आता था। ईसुरी ने अपने छंद को फाग नाम दिया। इसे चौकड़िया फाग भी कहा जाता है। यह नरेन्द्र छंद की यतिगति से बंधा हैं। इस छंद में 28 मात्राऐं होती हैं। 16 व 12 मात्राओं पर यति होती है।

ईसुरी की फागे गायकी का सुन्दर अंग बन गयी। संगीत के स्वरों का माधुर्य इनकी फागों को गेय बना देता है। ईसुरी की फागों की प्रसिद्धि लुहर ग्राम की सीमाओं से बढ़ती हुई सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में फैल गयी।

ईसुरी की फागों में ''रजउ'' नाम का उल्लेख अधिक है। ''रजउ'' उनकी प्रेम साधना की प्रतीक है। ईसुरी की कविता पर ''रजउ'' के प्रेम का प्रभाव वैसा हीं जैसा कि घनानन्द की कविता पर ''सुजान'' नायिका का। ईसुरी ने अपनी फागों के ''लोकिक प्रेम'' को उसी ऊँचाई पर बैठाया जिस ऊँचाई पर अध्यात्मिक संतों ने अपने परम–इष्ट को बैठाया है।

''विधि''– से ईसुरी की अपेक्षा है कि काश मेरी देह को ''रजउ'' के घर की देरी बना देते तो मेरी चाह पूरी हो जातीः–

---

2. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – रामचरन हयारण मित्र – पृ0 226 ।

विधना करी देह न मेरी, रजउ के घर की देरी
आउत चरन की धूरा, लगत जात हर बेरी,
लागौ आन कान के ऐंगर, बजन लगी बजनेरी,
उठत चात अब हाट ''ईसुरी'' बाट बहुत दिन हेरी'' [1]

ईसुरी ने उगली की मुदरी (छला) का काव्य प्रयोग किस भावुकता के साथ किया है–

जो तुम छैल छला हो जाते, परे उगरियन रातें,
यौं पौंछत गालन कां लगतें, कजरा देत दिखाते,
घरी घरी घूंघट खोलत में, नजर सामनें राते,
मनचाही लख में बिदते, हात जहां जब जाते,
''ईसुर'' – दूर दरस के लानें, ऐसे काए ललातें ।

इस कामकाजी संसार में ''प्रेम'' के लिए भी दो चार पल बचा के रख लेना चाहिए। संसारिकता में निजी अस्तित्व को बचाऐ रखने पर यह फाग अनूठी हैः–

ऐगर बैठ लेव कछु कानें, काम जनम भर रानें।
सबकौ लागो रात जियत भर, जौ नई कमऊँ बड़ानें ।
करियौ काम घरी भर रै कें, विगर कुछ नई जानें,
ई धन्दे के बीच ''ईसुरी'', करत करत भर जानें ।

प्रेमिका की अंगिया का वर्णन भी कितना कलापूर्ण और भाव व्यंजना से भरपूर है।

जी में लिखे पपीरा , मोरे, ऐसी अंगिया तोरें ।
मुकते लाल मुनैयां लिपटे, चिरवा चारू चकोरे ।
पीरी हरी चिड़यां चिपकी, सुआ मुरक मुख मोरें ।
बूटा भरे भुजन पै भारा, बेलन बांदी कोरे ।
काइल करन कोइलया ईसुर, दो छातीं के दोरे ।

प्रेम और श्रृंगार की भरमार है ईसुरी की फागों में ईसुरी की काव्य दृष्टि सूक्ष्म भी है और व्यापक भी। वह जीवन की सच्चाई को भी जानते हैं। क्षण भंगुर जीवन की नश्वस्ता का बोध

ा भी ईसुरी को पूरी तरह है।

---

1. बुन्देलीकाव्य – डा0 हरगोविन्दसिंह पृ0 1 ।

गंगाधर व्यास – गंगाधर व्यास ने बुन्देली भाषा में उत्तम फाग गीत की रचना की है। श्री गंगाधर व्यास का जन्म सं0 1899 में हुआ था। इनकी काव्य सेवा का समय लगभग सं0 1920 से सं0 1972 तक माना जा सकता है। इनके प्रमुख ग्रन्थ है –

गौमहात्म्य, विश्वनाथ पताका व्यंग्य, पचासा, भरथरी चरित, अष्टयाम, नीतिमंजरी आदि । श्री गंगाधर व्यास को छतरपुर, पन्ना, विजावर, चरखारी के राज दरबारों में अधिकतम सम्मान प्राप्त था। व्यास की भाषा सरल और काव्यसौन्दर्य से पूर्ण है। आपने अपनी काव्यभिभक्ति लावनी और फाग छंद में की है।

एक नायिका का शरीर सौन्दर्य इस फाग में देखिये–

''जो तिल लगत कयोलन नींकौ, मन मोहत सब ही को।
कै पूरन पूनौ के ससि में, कुरा जमो रजनीं को।
कै निरमल दरपन के ऊपर, कै पति पारवती कौ।
गरलकण्ठ ले आय विराजौ, सुमन धरौ अलसी को।
गंगाधर मुख लखत श्यामरौ, राधा चन्द्र मुखीं को ।''

ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश'- श्री ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश' – बुन्देली फाग काव्य के आधुनिक कवि हैं। इनका जन्म फरवरी 23 सन् 1933 को महाशिवरात्रि को झांसी में हुआ था। इनके पिता जी का नाम श्री महेश्वरदयाल और माता जी का नाम श्रीमती नन्नीबाई है। कविवर प्रकाश ने अपने जन्म के संदर्भ में स्वयं एक फाग (चौकड़िया) लिखी है।

जन्मौ फागुन में फगवारौ, ईसुर कौ उजयारो
सम्वत हतौ उनइस निवासी, बुन्देली कौ प्यारौ।
मूल महाशिव रात्री चउदस, अंदिवारौ पखवारौ।
भव 'प्रकाश' झांसी मं जौतन, गुरूवार को धारौ।

बुन्देली काव्य रसिक – ''श्री प्रकाश'' को ''अभिनव ईसुरी'' की उपाधि देकर सम्मान देते हैं। प्रसिद्ध कवि श्री कैलाश अवस्थी ने अपनी एक कविता में ''श्री प्रकाश'' को फाग काव्य कला का चतुर चितेरा निरूपित किया है।

गंगाधर की गति निरख, परख बिहारी राग ।
ईसुर रूप प्रकाश अब, रचतई नित नई फाग ।
रचतई नित नई फाग, जाग जिय जरै जरा वै ।

विरह गीत, श्रृंगार वीर रस अभिनव गावै ।
कहै ''अवस्थी'' बुन्देली की अनुपम वाणी ।
कवि 'प्रकाश' की कविता, सुन्दर भई कल्याणी ।

श्री प्रकाश जी के ग्रन्थ हैं –

1. रणमेरी 2. देश की पुकार 3. बुन्देली प्रकाश 4. रासप्रकाश 5. फुटकर रचनायें।

श्री प्रकाश की फागों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है:–

1. भक्ति परक फागें 2. रूप सौन्दर्य परम फागें 3. लोकात्सय परक फागें 4. प्रेमपरक फागें 5. समस्या परक फागें ।

प्रकाश की फागों में रूप सौन्दर्य और प्रेम की फागे की अधिकता है। प्रकाश जी सौन्दर्य को परम्परा की आंखो से देखते हैं। उसमें संयम और मार्यादा का सुन्दर अवगुठन है।

घूंगट खोलौ आदर दैबे, पलक पॉवड़न लैबे ।
ऑखन में रसयार भरेंती, इन नैंनन में नैवे ।
खोले दोउ दोउ कजरारे, राखीं नईयां कैवे ।
कयं 'प्रकाश' हिय बाखर दैदई, जनम भरे को रैवे ।

'प्रकाश' नायिका के नयनों में दीवाली की आभा देखते हैं–

भौं पै घुंगटा की ढिक डारें, सैन उरैन समारें ।
पूरें चौक मांग सेंदुर दै, आखत टीका पारें ।
कजरा दैकें अमाउस, दोउ नैन उजयारे ।
लगत ''प्रकाश'' दिवारी आगई, हंसत फुलझरी वारे ।

कविवर प्रकाश ने रीतिकालीन श्रंगार ओर नायिका भेद नखशिख वर्णन तथा ऋतु गानों की परम्परा का निर्वाह अपनी 'फागों' में किया है।

बंसत ऋतु की नायिका भी बसंतमयी हो गई हैं–

गोरी पीरी पीरी हो गई, हिय में सरसों बो गई ।
लगतइ केसर में तन बोरो, गेंदन बीच समो गई।
हरदी कौ करो उवटनो, कै सोने में सौ गई ।
कय 'प्रकाश' ढूड़ें नइं मिलती, पुखराजन में खो गई। [1]

---

1. बुन्देली प्रकाश – ओमप्रकाश सक्सेना ''प्रकाश''

बुन्देली का लोक-काव्य -

लोक काव्य में उस काव्य को रखना उचित होगा जिसका लिखित रूप उपलब्ध नहीं है पर लोक जीवन में जिसका प्रचलन और प्रभाव है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप से आता रहता है। इस काव्य परम्परा में किंवदंतियां, लोक कहावते लोक मुहावरे, लोक सूक्तियों को रखा जा सकता है। इसे वार्ता साहित्य कहना ठीक होगा। श्री कृष्णानंद गुप्त जी ने लोकगीतों का एक हिस्सा इसी काव्य में रखा है । श्री गुप्त जी के अनुसार लोक गीतों के आठ वर्ग होते हैं। [1]

(1) ऋतुगीत (2) श्रमगीत (3) त्यौहार गीत (4) संस्कार गीत (5) यात्रागीत (6) धार्मिक गीत (7) बालगीत (8) विविधगीत

(1) जनश्रुति– जनश्रुति लोक काव्य का एक रूप है। ये जनता के सुने सुनाये वृतान्त है जो व्यंग व्यवहार संस्कृति और नीति को प्रगट करते हैं। जब कोई बात कही जाय और श्रोता कुछ सुन ले तो बुन्देलखण्ड में तपाक से लयबंदी वाक्य बोल दिया जाता है:–

''कयें खेत की सुने खरयान की''

बेफ्रिक आदमी और अनुभवहीन व्यक्ति को सम्बोधित यह जनश्रुति कितनी सटीक है

''करी न खेती परे न फंद ।
घर घर डोलें मूसर चंद ।।''

2. आहार चुके बे गये, त्योहार चूके वे गये ।
दरबार चूके वे गये, ससुराल चूके हो गये ।।

भोजन और व्यवहार में चूक जाने पर हानि होती है।

---

1. बुन्देली लोक साहित्य – कृष्णानन्द गुप्त पृ0 335 ।

2. बुन्देली - कहावतें – कहावतों में लोक जीवन आचार और व्यवहार तथा दृष्टिकोण को व्यक्त किया जाता हैं बुन्देली कहावतों का बड़ा भण्डार है। बुन्देली कहावतों का भण्डार हमारे लोक जीवन के चारों ओर फैला रहता है।

एक कहावत देखे :–

अक्का कोदों नीम बन, अम्मा मौरें धान ।

राय करौंदा जूनरी उपजै अमित प्रमान ।

जिस वर्ष अकौआ में खूब फूल आता है, उस वर्ष कोदों, जिस वर्ष नीम खूब फूलता है उस वर्ष कपास जिस वर्ष आम में खूब बौर आता है उस वर्ष ज्वार की फसल अच्छी होती है।

कहै दुरकन सुन पिय कांस ।

तुम लागौ दतुआ, हम लागै पोंस ।

बड़े बड़े बैल खुरारी पांस ।

का करै दुरकन का करैं कांस ।

दुरकन (बेल) कहती है– हे! प्रियतम कांस सुनो तुम तो बखर दंतुआ से चिपटो और मैं पांस में फंसूगी ताकि खेत में जोताइ बखराई न हो पाये। इस पर किसान उत्तर देता है मेरे बड़े बड़े बलवान बैल हैं। और पांस भी मजबूत धार वाली है मेरा क्या तो दुकरन बिगाड़ सकती है और क्या कांस ? [1]

जिसके पास आधार सबल हो उसे कोई हानि नहीं पहुंचाई जा सकती।

---

1. बुन्देली कहावत कोश – सूचना विभाग उ0प्र0 – कृष्णानन्द गुप्त । पृ0 55 ।

बुन्देली लोक काव्य (फुटकर) के श्रंगार गीत-

प्रेम की छेड़छाड़ की भाव भंगिमा

बहू ओढ़ो चटक चुनरिया
और सिर पै धरो गगरिया
छोटी ननदी ले लो साथ
रसीले दोइ नैना ।
मैने ओढ़ी चटक चुनरिया
और सिर पे धरी गगरिया
छोटी ननदी ले लई साथ
रसीले दोई नैना ।
वो बैठ कदम की छैंया
झट पकरी मोरी वैयां

साबन, अकती, झूला, तीजा, मेंहदी के लोकगीतों का रस भी श्रंगार के गीतों से कम नहीं हैं। बुन्देल लोक संस्कार का हिस्सा भी यही गीत बनते हैं। वर्षा ऋतु किसी को संयोग सुख देने वाली तो किसी को विरह पीड़ा में डुबो देने वाली हो जाती है।

''टूटी खटिया,
टपकति टटिया टूट,
प्रिय का बाँह उसी,
सौ सौ सुखलूट ।

एक नवेली का बालम कहीं बाहर जा रहा है और बरखा ऋतु का यौवन तन और हृदय पर छा रहा है । नवेली अपने बालम को बाहर जाने से रोकती है:-

परेदसिया बलम जिन जाव,
उड़न भई बादर की ।
लाल भरी मोरी मांग ।
उठन भई बादर की ।
कारी पाग जिन बांधो मौरे राजा,
कारे लछारे मौर केश,
उठन भई बादर की ।
पीरी बाग जिन बाँधो मौरे राजा
पियअरो चुनरिया कौ छोर,
उठन भई बादर की ।

मेंहदी रचाना युवतियों और नायिकों में सदैव से श्रंगार का एक विशेष रूपक रहा है। बुन्देली लोक अभिरंजन को प्रगट करता है यह मेंहदीगीत:–

टरो नगर की नाइनियां,
सिल लोढ़ा फिस ल्याय ।
लाल रचाये छिंगुरियां,
बहने हाता रचाय ।
देउरा की छिंगुरी रची,
भली भौजी के रचे कपोल ।
ऐसी हमारी महाउदी, ल्याये पिया अनमोल ।

प्रकृति के उतार चढ़ाव से बुन्देली लोक जीवन पर क्या असर पड़ता है इसकी झलक ऋतु गीतों में मिल जाती है। ग्रीष्मऋतु के प्रकोप से नदिया सूख जाती हैं। ताल तलैया भी सूख जाती है। जमीन में दरारे पैदा हो जाती है। विरहणी के हृदय के ग्रीष्म अग्नि कितनी दुःखदायी है।

जैसे ग्रीष्म लपटसों होत पहार अंगार
तैसे विरहानल लपट, जरत वियोगिन नार।
ननद बाई कैसे कैं धीर धरौं ।

इन लोक श्रंगारी गीतों में ठाकुर पदमाकर और बोधा जैसे रससिद्ध कवियों की काव्यलहरियों की झलक मिलती है। उसे भले ही लोक काव्य की संज्ञा दे दी जाय पर यह लोक काव्य ही आम जनजीवन की भाव दशाओं की मनोहर झांकी है।

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य– रामचरन हयारण मिश्र पृ0 291 ।

आधुनिक बुन्देली काव्य परम्परा -

बुन्देली काव्य की आधुनिक काव्य धारा 20 वीं शताब्दी में प्रारंभ होती है। अतएव यह सहज स्वभाविक है कि आधुनिक बुन्देली काव्य में इस युग में पनपी विविध प्रवृत्तियों के अच्छे नमूने मिलजाये। फलस्वरूप हम देखते हैं कि आधुनिक बुन्देली में वह समस्या पूर्ण काव्य मिलता है जिसकी भारतेन्द्र युग में और द्विवेदी युग में बड़ी धूम थी। [1]

डॉ0 भगीरथ मिश्र की यह उक्ति स्पष्ट करती है कि बुन्देली के आधुनिक काव्य में राजाओं के युद्धों के शौर्यगान, भक्ति की उपासना साधन के गान और नारी सौन्दर्य के नखशिख वर्णन, प्रेम प्रणय लीलाओं के चित्रण से जेसे सारी हिन्दी कविता आगे बढ़कर राष्ट्रीय जागरण और जनता की दुदर्शा पर ध्यान देने लगी थी, उसी तरह बुन्देली काव्य में भी राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना और जनता की आंकाक्षाओं की अभिव्यक्ति होने लगी थी।

भारतेन्दु देश की पीड़ा को प्रगट करते हुए कह रहे थे–

रोवहु सब मिलि, आबहु भारत भाई ।

हा! हा! भारत दुदर्शा न देखी जाई ।

इस दुदर्शा का कारण भी भारतेन्दु जी ने उजागर किया था–

अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी,

पै धन विदेस चलि जाते यहै अति ख्यारी [2]

---

1. बुन्देली काव्य परम्परा (द्वितीय खण्ड) डॉ0 बलभद्र तिवारी प्राक्कथन डा0 भगीरथ मिश्र से ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

आलस, फूट, खुदगर्जी और मिथ्या जीवन व्यवहारों के कारण भारत अभिशापों की चपेट में आता गया। द्विवेदी काल में रामदेवी प्रसाद 'पूर्ण' इसी और ध्यान खींचते हैं–

भरतखण्ड का हाल जरा देखा है कैसा ।
आलस का जंगल जरा देखो है कैसा ।
जरा फूट की दशा खोलकर आंखे खोलो।
खुदगर्जी का नशा खोलकर आंखे खोलो। [1]

देश की हीन दशा, धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्य तथा कलाकौशल के अभाव – भारत को आगे कैसे बढ़ने देगा? ठाकुर गोपालशरण सिंह ने कहा–

वह धीरता कहाँ है गम्भीरता कहाँ है ?
वह वीरता हमारी है वह कहाँ बड़ाई ?
क्या हो गयीं कलायें कौशल सभी हमारे ?
किसने शताब्दियों की ली छीन कमाई ? [2]

द्विवेदी युग की पूरी चेतना का प्रतिनिधित्व राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया। उन्होंने कवियों के पुरूषार्थ का आहवान करते हुए कवियों से साफ साफ कहा कि–

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म हानो चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ।
क्यों आज 'रामचरितमानस' सब कहीं सम्मान्य है ?
सत्काव्य युत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है । [3]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 499 ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 499 ।
3. भारत-भारती – मैथिलीशरण गुप्त ।

राष्ट्रीय-चेतना – बुन्देलीभूमि का स्वाभाविक गुण रहा है। आधुनिक युग का बोध यहाँ की जनचेतना को जगाने लगा। निवृत्ति पथ पर चलकर देश की जवानी सन्यासी न बने वरन प्रवृत्ति मार्ग का अनुसरण कर युगीन कर्तव्य का पालन करें। इसी भावना बुन्देली कवि जानकी प्रसाद द्विवेदी इन पक्तियों में व्यक्त करते हैं।

ऐसे ही नेता हमें चाहिये अब
जो कवि जानकी की देश जगावै।
या दुनियों में हमें रहने कहँ।
ठौर औ भोजन को दिलवा वै।
ऐसे नेतन की जरूरत ना अब
जो सनसार असार बता वै।
और मरने के अनन्तर पै,
हमें मोक्ष दिलाने की बात सुनावै। [1]

भारतीय जनता की दुर्दशा का चित्रण रामचन्द्र भार्गव के इस छंद में देखने को मिलता है। भारतेन्द्र की चेतना जाग्रत से बुन्देली कवि की यह राष्ट्रीय वाणी जाग्रत है।

दास बने सरकार कर दवे, कृषिकार
अधिकार कुप्रयोगपाके, हुए निराधार ।
एक बल करतार, लिए संग परिवार
त्यागे कारबार भूमि सम्पदा औ घर द्वार।
त्राहि त्राहि बापू कह आते हैं हजारे पास
ऊबकर भली भांति मोग कर अनाचार।
बेहद दया के पात्र देश के दुःखी मनुष्य
देउ पसली ये लादते हैं मन माना भार। [2]

---

1. बुन्देली काव्य परम्परा (द्वितीय खण्ड) डॉ0 बलभद्र तिवारी पृ0 11 एवं 25 ।
2. – वही –

मऊरानीपुर में जन्मे पं0 घासीराम व्यास स्वतंत्रता सेनानियों को राष्ट्रीय उद्बोधन के गीत सुनाने लगे। हे देश के महान योद्धाओं देश को गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिये हमें वैसा ही बलिदान करना पड़ेगा जैसा महाराणाप्रताप, शिवाजी और छत्रपाल ने मुगलों के समय किया था। मातृभूमि का ऋण चुकाना है तो शीश को हथेली पर रख कर आगे कदम बढ़ाना होगा–

याद है प्रताप, शिवा, छत्रसाल वंशज हो,
दौड़ता रगों में खून गीता ज्ञान ज्ञाता का।
सैनिक हो किसके जो विश्व वंदनीय हुआ,
आगे वही जाता हे उपाने विना छाता का।
बढ़े चलो मातृ भू की नमक अदाई हेतु
भय क्या है काल का विकाल का विधाता का।
गोलियां का खाना शीश फॉसी पै झुलाना मर
जाना पर वीरो न लजाना दूध माता का। [1]

अंग्रेजी सरकार की करबसूली की मार से जनता इतनी त्रस्त हो गयी थी कि भुखमरी की कगार पर आ खड़ी हुई । अनाज सस्ता हो गया इसी पर लगान वसूली वी सख्ती हुई। किसानों की महिलाओं के लंहगा लंगरा वस्त्र तक बिक गये जनता की गरीबी और सरकार की बेहरमी का चित्रण इस लोकगीत में पूरी मार्निकता के साथ हुआ है।

जुनरिया मन भर की ।
पोता लगा रहा महाराज ।
जुनरिया हो गई मन भर की ।
मुनसी आवे, पटवारी आवे
आवे तहसीलदार होनलगी कुरकी ।
जुनरिया मन मर की
लांगा बिक गयो, लंगरा बिक गयो।

---

1. राष्ट्रकवि घासीराम व्यास – व्यक्तित्व एवं कृतित्व रामचरण हयारण मित्र पृ0 21 ।

बिक गई अंगिया तन की ।
राजा के बांधन को सेला बिक गयो
फजिकत हो गई घर की
जुनरिया हो गई मन पर की ।

इन जन पीड़ी की तुलना भारत दुर्दशा नाटक की इन पंक्तियों से कर सकते हैं–

''सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।। ''[1]

गांधी के चरखे का आन्दोलन बुन्देली लोक जीवन में व्याप्त हो गया। यहां की महिलायें अपने लोक जीवन के गीतों में प्रेम श्रृंगार के स्थान पर ''सुराजगीत'' गाने लगी। नवजागरण की चेतना का यही व्यापक प्रभाव है। बुन्देली लोक गीत की यह काव्योक्तियां कितनी सरल और सहज हैं। इनमें राष्ट्रीय चेतना का तेज भी कूट कूट कर भरा है–

''विवाह संस्कार में सुराज भावना का अनूठा प्रयोग देखें''

चरखा से लेंगे सुराज
चरखवा चालू रहे।
गांधी बाबा बने दुलहवा
दुलहिन बनी सरकार ।
चरखया चालू रहे।
टीका में लेगे राज
दायजे में लेंगे सुराज
चरखवा चालू रहे।

ग्राम–नगर की बहने घर घर गाने लगी

भैया अब सुराज के लानें, मन से लग जानें ।
करौ फैसला घर अपने में न जइयौ कोउ थानें ।
बिस्कुट और बरण्डी छोड़ौं, समा लहारा खाने ।
द्विज खुमान अब पराधीनता से नातौ न राने ।[2]

---

1. भारत दुर्दशा – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ0 2 ।
2. बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहासः – डॉ0 रामनारायण शर्मा पृ0 381 ।

बुन्देली काव्य धारा का आधुनिक युग देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से विशेष प्रतिबद्ध है। जब समग्र भारतवर्ष स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था तो बुन्देली आधुनिक काव्य भी उसमें अपनी भागीदारी का योग समर्पित कर रहा था। गौरशंकर द्विवेदी, डा0 भगवानदास माहौर तथा लोकनाथ सिलाकारी ने इस युग के योगदान को उजागर करने में महत्वपूर्ण शोध और विश्लेषण विवेचना का कार्य किया हैं। आधुनिक काव्य के बुन्देली कवियों में देशराज भट्ट, मदनेश के साथ मुंशी रामाधीन खरे, घनश्याम दास पाण्डेय, घासीराम व्यास, नरोत्तम पाण्डेय 'मधु', रामनाथ त्रिवेदी तथा नाथूराम माहौर ने राष्ट्रीय चेतनामय बुन्देली भाषा में काव्य सृजन किया। इनकी कविता में राष्ट्र के प्रति निष्ठा और विदेशी सरकार के प्रति आक्रोश स्पष्ट रेखांकित हुआ है।

ब्याह के आई हतीं जबसे,
तन देखन हतीं स्वभाव भी भोरी ।
पीतम कों वश में करके,
करन लगीं हाय महा वर जोरी ।
चोरी करी है स्वतंत्रता की,
अरी ओरी प्रतीत भई उठ तोरी ।
ज्यादा कुचाल चली जो कहूं
तो निकार के मायकैं भेजहों गोरी । [1]

नव वधु के बहाने अंग्रेजी सरकार पर कितनी तीखी चोट कर रही है– ये बुन्देली काव्य पंक्तियां । बुन्देली काव्य परम्परा की आधुनिक चेतना के प्रारम्भिक कवि श्री मदनेश, घासीराम व्यास आचार्य घनश्यामदास पाण्डेय, गौरीशंकर शर्मा, जानकी प्रसाद द्विवेदी, सुखराम चौबे, रामचन्द्र भार्गव, शिवसंहाय चतुर्वेदी, हरिप्रसाद हरि, रामचरण हयारण मित्र, दुर्गेश दीक्षित, द्वारिका प्रसाद मिश्र द्वारिकेश, संतोष सिंह बुन्देला, शिवानन्द मिश्र बुन्देला, जगदीश सहांय खरे 'जलज' आदि प्रमुख कवियों की काव्य कृतियों ने हिन्दी आधुनिक काव्य में धारा को सतृत प्रवाहवान बनाया है।

---

1. गोरी सरकार के विरूद्ध – अन्योक्ति श्री नाथूराम गाहौर ।

आधुनिक बुन्देली-काव्य परम्परा के प्रमुख कविगणों का संक्षिप्त परिचय-

1. सुखराम चौबे गुणाकर– बुन्देली आधुनिक काव्य परम्परा में सर्वप्रथम श्री सुखराम चौबे गुणाकर का नाम आता है आप जिला सागर के कस्बा रहली के निवासी हैं।

2. पं0 गौरीशंकर शर्मा – श्री शर्मा जी गढ़ाकोटा के निवासी थे। आप आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के स्नेह भावन भी थे । इनकी सामाजिक विषयों पर रचित कविताओं को फक्कड़ नाम से प्रकाशित किया गया है। व्यंग्य और विनोद की झलक इनकी रचनाओं देखने योग्य है।

> नौ गांव के राज में लये गदे सब घेर
> महाराज आप चढ़े तो राखिये नातर दीजे फेर

3. गौरीशंकर सुधा– इनका जन्म सम्वत 1925 में दतिय में हुआ था। ये प्रसिद्ध कवि पदमाकर जी के प्रपौत्र तथा लक्ष्मीधर जी के पुत्र थे। ये दतिया दरबार के आश्रित कवि रहे। इनकी 'प्रताप वाहनी' पुस्तक प्रसिद्ध है।?

4. मीर अमीर अली– श्री मीर अमीर अली का जन्म सागर जिला के देवरी कस्बे में सम्वत् 1930 में हुआ था । स्वदेशी और राष्ट्रभाषा की निष्काम भावना से इन्होंने सेवा की। ''बुदें का व्याह'' इनकी प्रसिद्ध रचना है । इनकी भाषा में बुन्देली की सुगंध देखने योग्य है।

> बना देखने को सब दौड़े, जहां मिली जब खबर जिसे।
> लगै लोग आपस में कहने बना कहें मानना इसे।
> इस प्रकार जिसने जब देखा दूल्हा को धिक्कार दिया ।
> चम्पा का भविष्य सोचकर सबने हाहाकार किया ।

5. पं0 जानकी प्रसाद द्विवेदी – श्री द्विवेदी जी का जन्म सागर जिले के गढाकोटा कस्बे में सं0 1936 में हुआ था। द्विवेदी युग के कवियों में आपका विशेष स्थान हैं, आपके प्रमुख ग्रन्थ है। जानकी सतसई, मोद विनोद, नर्मदा महात्म्य, शिव परिणय, अन्योक्ति पचासा प्रकृति प्रमोद।

> **ऐसे ही नेता हमें चहियेअब, जो कवि जानकी देश जगावै।**
> **या दुनियां में रहने कहँठौर औ भोजन को दिलवावे।**
> **ऐसे नेतों की जरूरत ना अब, जो सनसार असार बतावे ।**

औ मरने के अनन्तर पै, हमें मोक्ष दिलाने की बात सुनावै।

6. शिवसहाय चतुर्वेदी– इनका जन्म सं0 1945 में सागर जिले के देवरी कस्बा में हुआ था। सन् 1915 में वे बम्बई चले गये और हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रकाशन संस्था में कार्य करने लगे। हितकारिणी सरस्वती चांद और माधुरी पत्रिका में इनकी रचनायें प्रकाशित हुई है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

भारतीय नीतिकथा, आर्दश चरित्रावली, गृहणीभूषण, कुलचन्द्रिका, सतीदाह, जननी जीवन, छायादर्शन, कर्मक्षेत्र शारदा राजारानी, सोने का चांद आदि।

''काक'' पर व्यंग उवित देखिये।

रूचिर आग्रवन में निशंक कर काग बसेरा ।
''काँव काँव'' कर खूब दोष इसमें नहीं तेरा ।।
पर होता है दुःख बुद्धि पर उसकी मुझको।
कोकिल के संग वास, दिया है जिसने तुमको ।।

7. घासीराम व्यास– आपका जन्म 5 सितम्बर 1903 को झांसी जनपद की तहसील मऊरानीपुर में हुआ था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में आपन आगे बढ़कर भाग लिया मऊरानीपुर में व्यास जी ने घुमक्कड़ दल बनाया था। दल के प्रमुख घुमक्कड़ थे श्री काशी प्रसाद अड़जरिया, बाबू लाल बहुरे, रामभरोसे अड़जरिया और बलदेव प्रसाद भ्रमर आदि। यह वास्तव में काव्यभक्तों का दल था। डा0 भगवानदास माहौर जी का कहना है कि

''व्यास जी के साहित्यिक और राजनीतिक व्यक्तित्व व कृतित्व के सम्बन्ध में इतना ही निवेदन है कि वह यह भलीभांति ह्रदयंगम किये हुये थे कि स्वातंत्रय संघर्ष की ऊपर से परस्पर विरोधी दिखाने वाली दोनो धाराओं में तात्कालिक अंहिसात्मक असहयोग तक विकसित खुले कांग्रेसी आन्दोलन की धारा और गुप्त सशस्त्र क्रांतिकारियों की धारा में वास्तव में कोई विरोध नहीं है।

तभी व्यास जी अंहिसात्मक ''सत्याग्रह के गीत'' और ''बेजा मत मान लेजा शीघ्र भेजा फाड़ नेजा पर टांग दे कलेजा देशद्रोही का'' समान उत्साह से गाते थे। उनका समस्त

काव्य प्राचीन परिपाटी का और नवीन राष्ट्रीय लहर का संगृहीत काव्य है। [1]

व्यास जी की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

अश्वमेघ यज्ञ, श्रीबालकृष्ण चरित्र, रूकमणिमंगल, श्याम सन्देश, कुरूक्षेत्र, हास्यरस, व्यंगरस, नवरस, ऋतुविहार, बुन्देलखण्ड ।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य पर व्यास जी की काव्योक्तियों देखियें:-

लेके करबालिका कराल काल बालिका सी
कालिका सी कठिन कठोर, प्रण ठाने थे।
रण रस रंगी जंगी फौज के तिलंगी हुये
अमित उमंगी तेज नंगी के निशान थे।
व्यास कहै महारानी लक्ष्मी तुम्हारे त्रास
सारे शत्रुओं के हीय होसिले हिराने थे।
कोई वने मोची कोई धोबी बने पोची कोई
कोई अंगरेज रंगरेज से दिखाने थे। [2]

8. हरि प्रसाद ''हरि'' – स्वर्गीय हरि प्रसाद ''हरि'' का जन्म ललितपुर जनपद के पाली ग्राम में सन् 1914 को हुआ था। श्री हरि राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थे। हरी उत्तरछायावादी पीढ़ी के प्रमुख गीतकार थे। इनके कवि व्यक्तित्व में वैयक्तिकता एवं सामाजिक चेतना का सुन्दर समन्वय है। यहीं कारण थे। मूलतः गीतवार होते हुये भी आपने ''महावीर'' रत्नावली तथा ''राहुल'' जैसी प्रबन्ध कृतियां लिखी है। देवगढ़, स्वप्न तथा अन्य प्रगीत मुक्तकों की रचना की है। इनके गीतों में राष्ट्रीय भावना आध्यात्मिक कल्याण और वैयक्ति प्रेम श्रृंगार तथा सामाजिक संघर्षो से जूझते मनुष्य की आशा निराशा को सशवत अभिव्यक्ति मिली है।

एक उदाहरण-

कौल हमें सन सन्तावन कौ है नंगी तलवार कौ
बैन नर्मदा और बेतवा मैया चम्बल घाट कौ।
चाय अबै जीते या हारे तुमरे विस्तर लाद दे,

---

1. राष्ट्रकवि घासीराम व्यास को व्यक्तित्व एवं कृतित्व- हार्दिक हर्ष प्रकाश डा0 भगवान दास माहौर पृ0 13 ।
2. राष्ट्रकव घासीराम व्यास का छंद ।

आय दूसरो सन सन्तावन हम पैलउ आजाद है

मरवै बारन की समाधि पै मेला भरे चढ़ाव रे

जा माटी नई मिले करो तुम कौटिन भांति उपाव रे।

9. गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर' – बुन्देली साहित्य को उत्कर्ष देने में पं0 गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर' का विशेष योगदान है। इनका जन्म तालवेहट (ललितपुर) में सम्वत 1896 में हुआ था। आप नौकरी करते हुये भी साहित्य साधना में निरन्तर लगे रहें। ''बुन्देल वैभव ग्रन्थ माल्य'' के तीन भाग आपने प्रकाशित कराये। ''कामरूप'' महाकाव्य का सम्पादन किया। 'ईसुटी प्रकाश' के माध्यम से लोकरागनी फागों के काव्य रस से हिन्दी जगत को परिचित कराया।

मैं हिन्दू हूं, मैं मुसलमान हूं संकल्प साधना दीपक इनकी प्रसिद्ध कवितायें हैं।

10. द्वारिका प्रसाद मिश्र ''द्वारिकेश'' – झांसी के प्रसिद्ध साहित्यकार और पत्रकार थे। आप बुन्देली के साहित्यकारों को उत्साहित करने में सबसे अग्रणी थे। बुन्देली संस्कृति और बुन्देली भूमि के गौरवगान को इन्होंने अपनी कविता में वर्णित किया है। ''बन्दौ वर बुन्देलखण्ड पर बुन्देली वानी में'' आपकी प्रसिद्ध कविता है।

जौ की बेहर में ''पलकै ललकै भर दओ हर साउन

वाल्मीकि कर गए जग जाहर रामरसायन राउन

वेद व्यास ने जौन भूम पज भारत के गुन गाए

जौ के संरग ''सनुकुआ'' ने शुरू सनकादि सयराये

जा सुर–बानी के सिंगार से भए भवभूति सयाने

मित्र मिश्र कवि कृष्णदत्त सुत काशिनाथ जग जाने

बन्दौ भारतीय भरौ सतगुन गुन रज पानी है।

बन्दौ वर बुन्देलखण्ड पर बुन्देली वानी में।

11. सुधाकर शुक्ल– आधुनिक चेतना के कवियों में श्री ''सुधाकर शुक्ल'' जी का महत्वपूर्ण स्थान है। मेघदूत की तर्ज पर ''किरणदूत'' खण्डकाव्य की रचना श्री सुधाकर शुक्ल

जी ने की है। इस खण्डकाव्य में जन चेतना का आहवान है।

या पराधीनता ते न बड़ी जग में कछु और बुराई ।

फूटन ही या की जन्मभूमि जननी है स्वजन लड़ाई।

हा चूक गयो चौहान हानि करयों भारत की भारी।

अल्हा ऊदल से जोधन सो भिरि जो निज भूमि उजारी। [1]

12. श्री ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी– श्री ज्योतिषी जी का जन्म 14 मार्च 1909 को नरसिंहपुर जिले के करेली ग्राम में हुआ था। आपने खड़ी बोली और बुन्देली दोनो भाषाओं में काव्य रचना की है। इन रचनाओं में ज्योतिषी के राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। बुन्देलों के जीत, खयान, कजली, चक्की नाम से प्रसिद्ध है।

जगौ उठो रे । जगौ उठो रे ।

जुद्ध छिड़ो जीवन को चौतरफा ।

चलो जुटौरे रे ।

आलस के सुसतीं के सपनो खो खेंओ।

बीत गई बा के लाने न रोओ।

आज नये सूरज किरणन की

गंगा जा उगड़ी है।

अरसानी ऑखों को कजरा को धोओ।

जागौ उठो रे औ वीर जुटो रे।

जुद्ध छिड़ौ जीवन को चौतरफा ।

13. श्री संतोष सिंह– इनका जन्म सम्वत् 1987 में ग्राम पहाड़ में हुआ था। बुन्देली कवि के रूप में इन्होंने बहुत प्रसिद्धि अर्जित की । कवि सम्मेलनों के मंच पर बुन्देली काव्य को इन्होंने आधुनिक युग में यथेष्ट प्रतिष्ठा दिलाई। कुछ समय के लिये इन्होंने फिल्मी क्षेत्र में साहित्यिक क्रियाशीलता दिखलाई।

---

1. किरणदूत – सुधाकर शुक्ल ।

गमैया

हम हैं दुखिया दीन गमैया

जिनकौ कोउ जगत में नैया

फिरै ऊसई चटकाउत पनैया कहावै अपड़ा देहाती

दो रोटन के लानै मारै रात दिना छाती

14. अवध किशोर श्रीवास्तव ''अवधेश'' – बुन्देली काव्य जगत में श्रीअवध किशोर श्रीवास्तव की काव्य सेवायें उल्लेखनीय हैं। आप ''अवधेश'' नाम से प्रसिद्ध हैं अवधेश जी झांसी जनपद के मोठं परगना के ग्राम पट्टी कुम्हरी के रहने वाले हैं । इनमें बचपन से ही काव्यरूचि रही है । अवधेश जी बुन्देली काव्य धारा के एक समर्थ और चिन्तनशील कवि हैं। इनकी प्रमुख रचनायें हैः–

ऊंचरी, चना मै ने बांगर जोत वयें, सुनों सावन कौ त्यौहार उठो हलधर के भइया, चुने चिरइया खेत।

एक कूंख के दोउ सुत जाये, दोउ एक उनहार

एक सजै बैलन की जोड़ी, एक सजै हथयार

एक देश के दोउ रखवारे दोउ एक उनहार

एक ठाढ़ो तन देत खेत में, एक मौत के द्वार

15. माधव शुक्ल ''मनोज'' – श्री माधव शुक्ल ''मनोज'' जाने माने कवि हैं। इनकी कविता में जितनी मिठास है इनका स्वर इतना उतना ही मधुर है। मनोज ने बुन्देली कविताओं में आधुनिक जीवन की जटिलताओं और व्यथाओं को उभारा है। ग्राम्य जीवन के अनुभव इनकी कविताओं में संजीव हो गये हैं।

दुख दूना रे

कि आई हिलोर फटे छाती ।

दुख दुना रे ।।

इन अखियन से टप टप टपकी
बिन बोले असुवन की बुदिया
उन खेतों में जब दिन डूबो
भर आई साजन की सुधियां
मै इधर गांव की कुटिया में ।

16. श्री दुर्गा प्रसाद दीक्षित ''दुर्गेश''– श्री दुर्गेश जी टीकमगढ़ के प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र कुण्डेश्वर के निवासी है। बुन्देली आधुनिक काव्य परम्परा में यह पहचाने हुए हस्ताक्षर हैं। इनकी रचनायें समय–समय पर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।
इनकी प्रमुख रचना।ऐं हैं :–

खुली किवरियां, ज्ञान के गुनिया, तकी तकाई गैले,
रेगबिरंगी चिरैया, गमैयन के गांधी, गांव की गल्लन
बाते, बुन्देली की ठाट, प्रमुख रचनायें हैं।

''प्यारे–बापू का गए''

अग्रेजन के मारे सबरे, उकरादे हो गए ते।
मनकौ धन कर लओ तो उन्नै, ऐन धराते लये ते।
सुर्त सभारी बापू जू ने, दुख देखो मैयन को।
कोड धनी धोरी नई तो, उन बछवा उर गैयन को।
फैट कसी तीं तुरतई उननें छोड़ कवारौ घर कौ।
सेंसई ऐसौ पूरौ मौरा, मुरकौ दुनिया भर कौ।
अपनी सांसी तागत कौ, फिर, दौरें दिया उजारो।
एक नई पाय घरी भर मड़या, ऐंन खदेरौ पारो।

17. गुणसागर सत्यार्थी – श्री गुणसागर सत्यार्थी वाणी पुत्र स्व0 मुंशी अजमेरी के पौत्र हैं, काव्य प्रतिभा इनकी पैत्रक धरोहर है। श्री सत्यार्थी जी कवि के साथ–साथ चित्रकार भी हैं। पत्र–पत्रिकाओं में आपकी रचनायें प्रकाशित होती रहती हैं। इनकी फुटकर रचनओं संग्रह ''प्रयास और बुन्देली चौकड़िया'' ''रंग फुआरों'' में संकलित है। एक बुन्देली कविता ''मुन्सारे'' उदाहरणाथ प्रस्तुत है।

मोरी बाखर के मुन्सारे ।
तुम आ जाओ, विन अलसावौ
आउत आउत जिन रूक जावौ
छोड़ो संकोच जिन सरमावौ
मै हेरत कब से बाट दिखा दो गए रेंन के अंधयारें
मोरी बाखर के मुन्सारे ।

18. **कोमल चन्द कल्याण**– श्री कोमलचन्द कल्याण का जन्म टीकमगढ़ जिले के हैदरपुर ग्राम में 1948 में हुआ था। इनकी चित्रकारी, गायन, कविता, लेखन, में गहरी अभिरूचि रही कविता के साथ-साथ श्री कोमलचन्द ''कल्याण'' जी अभिनय कला और नाट्य निर्देशन में भी प्रवीण हैं।

सोन चिरईया

भइया हो भइया हो मोरे भारत के रखवइया हो।

कोउ तौ अब पतौ बता दो का गई सौन चिरइया हो ।।

बुन्देले हर बोले बोलो,

का गई झांसी की रानी हो

भू गए का दारू में तुम

पानी पत कौ पानी हो

धौरी कबरी गइया हो, मोरे सूरज और जुँदइया हो।

बुन्देली-काव्य की विवेचना-

कविता की परीक्षा में दो बातों का विशेष महत्व है। ये हैं ''असलियत'' और ''गुरूत्व'' शक्ति। कविता की असलियत कवि की अभिव्यक्ति में होती है और कविता का गुरूत्व उसके हेतु या उद्देश्य में । दोनों बातों को विशेष बनाने में भावों की गहराई, विचारों की उच्चता और मांगलिकता का योगदान भी होता है।

बुन्देल कविता में असलियत भी है और उसमें गुरूत्व शक्ति भी है।

भारतीय काव्यशास्त्र 'रस' को काव्य की आत्मा मानता है। बुन्देली काव्य में यह आत्मा पूर्ण प्रकाशित हो रही है। श्रृंगार, वीर, करूण, हास्य, और शान्त रसों के भाव बुन्देली काव्य में अधिक अभिव्यक्त हुए हैं।

श्रृंगार रस का (संयोगपक्ष) देखिये –

भऔ मन मुसक्या रई रानी
मऔ नदिया कौ निरमल पानी
सोंन मछरिया अत छनकीली
मचलें घुंघटा में प्यासे नैंनरे
मन देखत मऔ बैचैन रे। *(सत्यार्थी)*

श्रृंगार का वियोग पक्ष – कितना मर्मस्पर्शी है :–

जब से भइ प्रीत की पीरा, सुखी नई जौ जीरा ।
कूरा माटी भऔ फिरत है, इतै उतै मन हीरा ।
कमती आ गई रकत मांस की, बहौ ह्गन दृगन से नीरा ।
फूंकत जात बिरह की आगी, सूकत जात सरीरा ।
ओई नीम में मानत ईसुर ओई नीम कौ कीरा । (ईसुरी)

वीर रस का उदाहरण :–

झटका दैके है गओ ठाड़ौ तन गई छाती
सिथिल अंग में जैसे महाशक्ति घुस आई ।
दई हुंकार कि जैसें वन में सिंह उड़ीकै,
बढ़ौ साथियों बरजोरा तरवार घुमाई।
(वरजोरा को समरपन – शिवानन्द मिश्र ''बुन्देला'')

हास्य रस का उदाहरण

एक जे लला लगा रए लेट

एक जे नंग धुरंगे सेट

कड़त आ रओ मटका सो पेट

पेट पै रोटी धरे चपेट ।

(हमाओ बीघन कौ परिवार – ''जलज'')

काव्य शिल्प में अलंकार योजना को भी महत्वपूर्ण माना गया है। बुन्देली काव्य में रस की विद्यमानता के साथ–साथ अलंकार योजना का श्रेष्ठ संयोजन और प्रयोग हुआ है। अनुप्रसा, यमक, रूपक, उमपा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, वकोक्ति, संदेह, भ्रान्ति, अतिश्योक्ति, दृष्टान्त, व्यतिरेक, अन्योक्ति आदि अलंकार अपनी पूर्ण शोभा और प्रतिष्ठी के सम्य बुन्देली काव्य में जड़े हुए हैं।

अनुप्रसा अलंकार का प्रयोग– ईसुरी की चौकड़िया.. में देखें :–

हम पै बैरिन बरसा आई, हमें बचा लेव माई ।

चड़कें अटा, घटा ना देखें, पटा देव अंगनाई ।

बारादरी दौरियन में हो, पवन न जावै पाई ।

जो द्रुम कटा छटा फुलबगिया, हटा देव हरियाई ।

पिय जस गाय सुनाओं 'ईसुर' जो जिय चाओ भलाई ।

उल्लेख–

इन पंक्तियों में कवि ने बेटी का वर्णन कई प्रकार से किया है। यह उल्लेख अलंकार उदाहरण का हेतु है।

सावन की सौभा है विटिया और दोज कौ टीकौ

न्यारौ न्यारौ रूप है ईकौ मात, बहिन पतनीं कौ ।

इसी प्रकार प्रायः सभी अलंकारो के सुन्दर प्रयोग बुन्देली काव्य में हुए है।

काव्य में बिम्ब विधान–

कल्पना का आश्रय लेकर शब्दों के माध्यम से कवि जो रागात्मक चित्र उपस्थित करता है उसे बिम्व कहते हैं। कवि अपने मनोभाव को विम्ब के माध्यम से इन्द्रियग्राह रूप में प्रस्तुत करता है। पाठक या श्रोता के संचित अनुभव को जागृत कर देने में और चित्र को

रागात्मक बनाने में यही विम्व सहायक होते हैं। स्पष्ट है विम्ब विधान से काव्य की सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि होती है।

विम्ब विधान में रूपसे अधिक महत्व दृश्येन्द्रिय का माना गया है। बिम्व शब्द से सामान्यतः चक्षु गोचरता का आभास होता है। पर काव्यानुभूति में चक्षु गोचरता की ही तरह त्वचा, कान, नासिका तथा रसना संबंधी विम्बों का भी महत्व है। इन सब में इन्द्रियों के पूर्व संचित अनुभव होते हैं। जो संबंधित बिम्बों के बोध में सहायक होते हैं। बिम्ब विधानों की दृष्टि से भी बुन्देली काव्य समर्थ काव्य कहा जा सकता है।

1. *चाक्षुष बिम्ब* – आज दिवारी के दिन नौनी लगै रात अधियारी
मानो स्याम बरन बिटिया नें पैरी जरी की सारी ।

2. *स्पर्शबिम्व* – का उदाहरण प्रस्तुत है।

''जब तुम ऊँघत बैठे बैठे खस की टरियन में प्यारे,
तब हम मैंटत लपट धाम सें, दौर दौर के उधारे ।''

बुन्देली-काव्य में प्रकृति का चित्रण-

कवियों को काव्य प्रेरणा प्रकृति की सुषमा सदा से मिली है। लोक जीवन तो प्रकृति गोद में ही पलता है। प्रकृति के आंगन में ही खेलता है और प्रकृति के शोभनीय शिखरों पर रमता है। बुन्देली काव्य में प्रकृति अपनी सभी छवियों तथा रूपों में विद्यमान है। इसके तीन रूप मुख्यतः हैं :-

1. आलम्बन रूप
2. उद्दीपन रूप
3. अलंकार रूप

प्रकृति का आलम्बन रूप– कवि प्रकृति से प्रभावित होकर उसका स्वतंत्र रूप से चित्रण करता है। बुन्देली काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में विशद चित्रण हुआ है। बुन्देलखण्ड का प्राकृतिक सौन्दर्य, नदिया का आनन्ददामयी प्रवाह, वृक्षों की लम्बी और घनी कतारे, पक्षियों का मनमोहन कलरव सबका सुन्दरतम तप वर्णन बुन्देलीकाव्य में देखने को मिलता है।

प्रकृति उद्दीपन के रूप में– उद्दीपन रूप में प्रकृति मन के स्थायी भावों को तीव्र कर देती है। विशेष रूप से श्रंगारी कविता में प्रकृति का उद्दीन रूप महत्वपूर्ण होता है। प्रकृति संयोग श्रृंगार की अनुभूति को भी और वियोग श्रृंगार के दर्द को तीव्र करने में उद्दीपन का काम करती है। ईसुरी की नायिका को बर्षा वैरन बन जाती है। काली घनघोर घटायें, शीतल पवन के झकोरे और फूलों की सौन्दर्य घटायें सारे उपादान ''काम'' को उत्तेजित करते हैं तब – विरहाग्नि और बढ़ जाती है।

हम पै बैरिन बरसा आई, हमें बचा लेव माई ।
चड़कें अटा घटा ना देखें, पटा देव अंगनाई ।
बारादरी दौरियन में हो, पवन न जावै पाई ।
जे द्रुम कटा घटा फुल बगिया, हटा देव हरियाई ।
पिय जस गाय सुनाओ 'ईसुरी' जो जिय चाओ भलाई ।

अभिव्यक्ति पक्ष–

लोकभाषा की सबसे बड़ी ताकत उसका सहज अभिव्यक्ति पक्ष ही है। इसी अभिव्यक्ति पक्ष के कारण अखड़ और फक्कड़ कवि कबीर जन जन के कवि बने और अभिव्यक्ति की सुबोधता के कारण ''नाना पुराण निगमागम'' के गुरू ज्ञान और दर्शन को तुलसी–जनसामान्य के ह्वदय और चित्त में उतार पाने में सफल हो सकें।

बुन्देली काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष न केवल सहज और स्वाभाविक है वरन् लोक जीवन और लोक व्यवहार के लिए मर्मस्पर्शी हृदयग्राह और चेतनाबोधक है। अभिव्यक्ति की इसी सरलता के बल पर आज बुन्देली काव्य लोक जीवन और लोकधर्म के जटिल और गूढ़ दर्शन को जनमानस के लिये सहज विषय बना सकने में सफल हुआ है। यह शरीर मिट्टी है। नश्वर है। इनका कोई मूल्य नहीं है। महत्व तो आत्मा और प्राण तत्व का है यह दर्शन और ज्ञान का विषय शास्त्रीय ग्रन्थों में चाहे जितनी कठिन भाषा में और शब्दों में समझाया गया है पर बुन्देली कवि ईसुरी ने इसे भाड़े अर्थात किराये का मकान कह शरीर मिथ्या है और आत्मा अमरता है यह बोध को जागृत कर दिया है।

''बखरीं बसियत है भारे की, दई पिया प्यारे की ।
कच्चीं भींत उठीं माटी की छाई फूस चारे की ।''

इस शरीर रूपी मकान के कई द्वार हैं। इनमें कोई किवाड़ आदि नहीं लगे हैं। इसे किसी भी समय खाली करना पड़ सकता है किराये का मकान जो है शास्त्र काया।

शरीर का मिथ्या होना शरस कहते हैं लेकिन बुन्देली काव्य की यह फाग अनपढ से अनपढ़ व्यक्ति को यह समझने में सफल है कि शरीर असली नहीं है ।

दिवाली की चमक ''होली'' की उमंग और रंग में सभी सरावोर हो जाते है। इन त्योहारों का यथार्थ चित्रण जितना सरस बुन्देली काव्य में हुआ दूसरी जगह ऐसा चित्रांकन देखने को नहीं मिलता है।

बुन्देली के प्रसिद्ध कवि सन्तोष सिंह बुन्देला की 'लमटेरा की तान'' बुन्देली कविता को इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

आज दिवारी के दिन नौनी लगै रात अधियारी,
यानो श्याम बरन बिटियाने पैरी जरी की सारी ।
मौनिया नचै छुटक कैं खोर
कि जैसे वन में नाचै मोर
दिवारी गावै कर कर सोर कि भइया बिन बछड़ा की गाय।
बिन भइया की बहिन बिचारी गली बिसूरत जाय।

भाई दौज आई है
कि टीका लाई है।

अच्छी कविता की व्याख्या में अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि वर्डसवर्थ ने कहा था–

Poetry is the spontaneous

Over flow of powerful feelings

इसी भाव से मिलती जुलतीं बुन्देली कविता की उक्त पंक्तियां बुन्देली की अभिव्यक्ति क्षमता को उजागर कर रही है। जैखे तुम कविता कहन लगे व हिरदे की उलछार आय''

''जैखें तुम कविता कहन लगे, व हिरदे की उलछार आय''

''तुम कविता पुकारते हो वह हृदय का सहज उछलना ही है।''

बुन्देली काव्य में जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति-

भारतीय साहित्य ''सत्य शिवसुन्दर'' को प्रकाशित करता है। 'सत्य' काव्य को जीवन के यथार्थ से जोड़ता है, सौन्दर्य अभिव्यक्ति को आनन्दमय बनाता है और शिव भावों की उदान्तता, विचारों की उच्चता और जीवन को सत्प्रेरणामुक्त बनाता है। जिस काव्य में जीवन का कोई आदर्श नहीं हो वह काव्य ''मानव'' जीवन की स्थायी निधि नहीं बन सकता। बुन्देलीकाव्य में जीवन मूल्यों और आदर्श की अभिव्यक्ति भी सटीक और प्रेरणाप्रद है।

ग्रामीण जीवन में बैलगाड़ी यात्रा और यातायात का अत्यन्त महत्वपूर्ण बाहन है। इसी बैलगाड़ी का सांगरूपक बांध कर इस बुन्देली कविता में जीवन को शुचितापूर्ण बनाने की प्रेरणा दी गयी है।

लड़का गाड़ी वान के

तुम हौ लरका गाडीवान के
जतन से गाडी हाँको।
सत संगत गुलगुलौ सलीता तुम गाड़ी में डारौ।
सुमति सखी रूठी, मनाय के बिनती कर बैठारौ।
घाम घमंड न देह तचाबै, रिस की लपट न नाच नचावै।
खुटला उसलें ना ईमान के
तुम छिया छाँयरो ढाँकों ।
बल बैभव दो बैल नहे हैं, इस लीला इन धौरा
मरजादा की नाथे इनकी, हैं संयम के जौरा ।
भरैं रोस में बने मुचर्रा, डर से काँपें बन जायें गर्रा ।

कवी ''बुंदेला'' आतम ग्यान कौ
तुम औगा लै लो बांकों । [1]

नव जागरण के प्रकाश में जनपदीय काव्य का स्वरूप निखरा और अपनी रूपरंगो की पहचान के साथ समाज के सामने मुखर हुआ। बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, बघैली आदि लोक भाषाओं को न केवल प्रोत्साहन मिला अपितु इनके काव्यसौन्दर्य और काव्य सौष्टव को प्रतिष्ठी भी मिली। यह भ्रम मिट गया कि जनपदीय काव्य लहर मानक हिन्दी साहित्य की प्रगति में बाधक होगी। सन् 1944 में प्रसिद्ध कवि 'रमई' काका'' के जनपदीय काव्य संकलन ''बौछार'' की भूमिका में डॉ0 राम विलास शर्मा ने लिखा है –

''ग्रामीण भाषाओं में सुन्दर कविता हो सकती है, यह सम्भावना आज सत्य बनकर हमारे सामने आ गयी है। यही नहीं ग्रामीण भाषाओं में जिस कोटि की व्यंजना सम्भव है, वह खड़ी बोली में अभी सुलभ नहीं है। इन कविताओं को पढ़ने से लगता है कि हमारी भाषाओं में सैकड़ों ऐसे शब्द भरे पड़े है जिन्हें अपनाने से हिन्दी समृद्ध होगी।'' [2]

डॉ0 भगीरथ मिश्र ने बुन्देली काव्य परम्परा के संदर्भ में लिखा कि –

''छायावाद युगीन स्वच्छन्दतावाद, रोमान्स, जीवन के प्रति भावुक कल्पना शील दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले भी कवि बुन्देली के आधुनिक युग में अनेक हैं। इसके अतिरिक्त उदाक्त कवि भी कम नहीं। हरिप्रसाद 'हरि', सुधाकर शुक्ल, बृजेश आदि जैसे– कवि उपर्युक्त दोनों प्रवृत्तियों के गायक और उन्नायक है। हम कह सकते हैं कि समसामयिक बुन्देली कविता अपनी सहेली भाषाओं की कविता से कम रसयुक्त और ललित नहीं है।'' [3]

आधुनिक बुन्देली कविता में अपने कविता में अपने बुन्देलखण्ड की वीरता और गौरव का गान भी है। यहाँ की नैसर्गिक सुषमा और प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण सजीव होकर कवियों की रचनाओं में उतरा है।

इन प्रवृतियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय भावना, बुन्देली संस्कृति, कृषक जीवन तथा आधुनिक विषमताओं और विसंगतियों पर व्यग्य विद्रोह की चेतना भी बुन्देली आधुनिक काव्य में प्रतिविम्बित होती है। बुन्देली के समकालीन जीवन को बड़े चुटीले किन्तु सुरूचिपूर्ण भाव–विचारों को बुन्देली काव्य में सजाया गया है।

---

1. बुन्देलीकाव्य – डा0 हरगोविन्द सिंह पृ0 36 ।
2. बौछार – रमईकाका – भूमिका से – डॉ0 रामविलास शर्मा ।
3. बुन्देली काव्य परम्परा – (द्वितीय खण्ड) – प्राककथन – डॉ0 भगीरथ मिश्र ।

बुन्देली संस्कृति और काव्य के प्रवर कवि

साहित्य वारिधि श्री रामचरण हयारण 'मित्र'

अध्याय – तृतीय
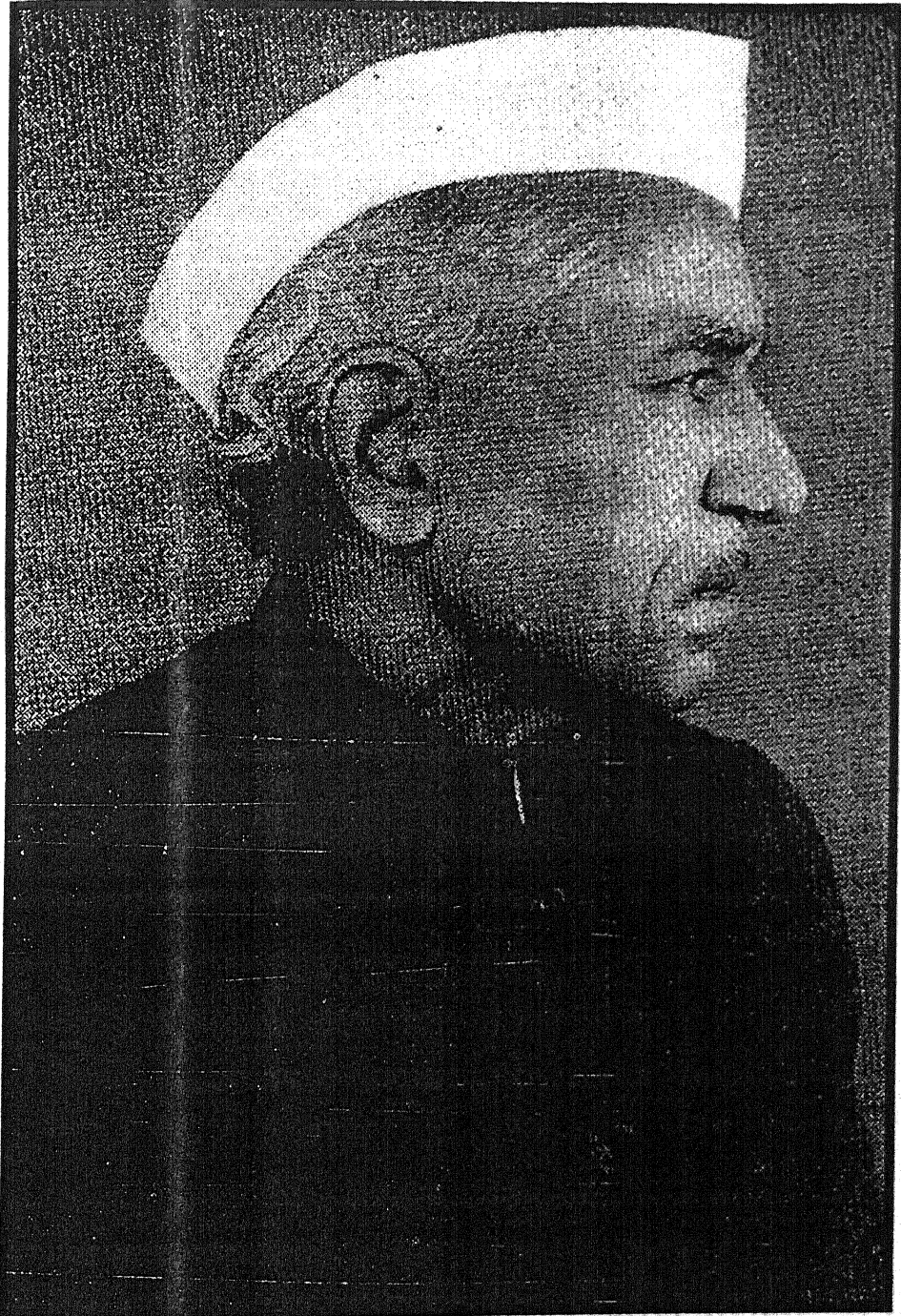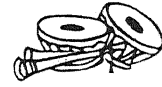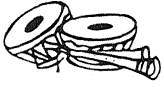
श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी का जीवन वृन्त

(अ)

* श्री मित्र जी का जन्म
* श्री मित्र जी की शिक्षा-दीक्षा
* श्री मित्र जी का गृहस्थ–जीवन
* श्री मित्र जी का व्यवसाय
* श्री मित्र जी का साहित्यिक-जीवन
* श्री मित्र जी का व्यक्तित्व

(ब)

* श्री रामचरण हयारण मित्र जी की समकालीन परिस्थितियाँ और उनका प्रभाव

  - नव जागरण का प्रभाव
  - दार्शनिक तथा अन्य विचारधाराओं का प्रभाव
  - राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव
  - आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव

रामचरण हयारण ''मित्र जी'' का जीवन-वृन्त-

किसी भी काव्य या साहित्य का अनुशीलन करने के लिये तथा उसकी मूलभूत प्रेरणाओं एवं प्रवृतियों को हृदयंगम करने के लिये उसके रचयिता के व्यक्तित्व का ज्ञान आवश्कय है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी आनुवांशिक परम्पराओं, पारवारिक एवं सामाजिक वातावरण, शिक्षादीक्षा, और संस्कारों वैयक्तिक परिस्थितियों एवं उसके बाह्य एवं आन्तरिक द्वन्द्व के प्रभाव से निर्मित होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिये उस व्यक्ति के जीवनवृत का ज्ञान अपेक्षित है।[1]

लौंजाइनस का कहना है कि यह बिलकुल स्वभाविक है कि जिनके मस्तिष्क महान विचारों से परिपूर्ण होते हैं उन्हीं की वाणी से उदान्त शब्द झंकृत होते हैं। [2] अस्तु श्री रामचरण हयारण 'मित्रजी' के काव्य का अनुशीलन करने से पूर्व उनके जीवन वृत तथा व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है।

श्री मित्र जी का जन्म–

बुन्देलखण्ड शोध संस्थान से एक पत्रक प्रकाशित हुआ था पत्रक का शीर्षक था'' बुन्देली साहित्य के भारतेन्दु कविरत्न साहित्यचक्रवर्ती साहित्य शिरोमणि साहित्य वारिधि रामचरण हयारण मित्र। इसके लेखक कवि भूषण राजारामसाहू विक्रम है। इस पत्रक में अंकित है कि 'मित्रजी' का जन्म संवत् 1961 चैत्र कृष्ण द्वादशी को हैहयवंशीय क्षत्रिय कुल में वरीभूमि झांसी में हुआ।[3] सन् 1993 की 14 जुलाई को भोपाल में अपने पुत्र के पास श्री मित्र जी गोलोकवासी हुए। यह जानकारी श्री नारायण व्यास जी के एक लेख से प्राप्त हुई।

कवि के माता-पिता–

कविवर श्री मित्र जी के पिता जी का नाम श्री जगन्नाथ प्रसाद हयारण था। माता जी

---

1. महादेवी नया मूल्यांकन – गणपतिचन्द्र गुप्त पृ0 19 ।
2. लौजाइनस ।
3. बुन्देली साहित्य के भारतेन्दु– रामचरण हयारण मित्र पत्रक लेखक कविभूषण राजाराम साहू 'विक्रम' ।

का नाम श्रीमती यमुना देवी था। मित्रजी के पिताश्री की अभिरूचि भी साहित्यिक थी। मित्र जी की कविप्रतिभा को प्रारंभिक प्रेरणा देने वाले इनके पिता जी ही थे। मित्र जी ने अपनी माँ की गोद में किलकारियों लेते हुए बुन्देली भक्ति गीतों और वात्सल्य गीतों के माधुर्य का रसपान अपने शैशवकाल में ही कर लिया था।

मित्र जी के नाना तालबेहट कस्बा के मूल निवासी थे लेकिन वे झांसी में बस गये थे। नाना का नाम श्री गुलाबसिंह और नानी का नाम राजरानी था। इनकी नानी किस्से कहानी सुनाने में प्रवीण थी। बुन्देली लोक जीवन में प्रचलित और प्रसिद्ध अनेक किस्से कहानियों को मित्र ने अपनी नानी से ही सुना और जाना था। मित्र जी को चेतना और भावना के संयोजन में इनके पारवारिक परिवेश का बड़ा योगदान रहा।

मित्र जी ने स्वयं लिखा है कि :-

''मुझे अपने बालकाल की एक माधुर्यपूर्ण घटना का स्मरण है जब मेरी प्रातः स्मर्णीया माता श्री यमुना यह लौरी

''मनमोहन उदक नई जांय, सखी री धीरे झुला दिओ पालना''

गाते मुझे अनसमादा देख गोदी से भूमि पर उतार देतीं तब मेरे रूदन को सुनकर मालिन कक्को ''जसौदा'' जिनके गृह की दीवाल हमारी वखरी की दीवाल से लगी थी, शीघ्र आतीं और मेरे सम्मुख अनेक रंगबिरंगे पुष्प विखेर देतीं। उनके उन पुष्पो में मेरे हृदय को शांत करने के लिए किन भावों का समन्वय था, यह मेरे लिए आज भी आश्चर्य का विषय बना हुआ है। किन्तु मुझे विश्वास है कि उन रंगविरंगे पुष्पों ने ही मेरे जीवन के उन्नयन में श्रम, काव्य और प्रकृति तथा राष्ट्रीय भावनाओं का हृदय में शाश्वत प्रेरणाओं का प्रस्फुटन किया होगा।'' (1)

---

1. उदय और विकास – श्री रामचरण हयारण मित्र – पृ0 13 ।

श्री मित्र जी की शिक्षादीक्षा–

मित्र जी पाठशाला की शिक्षा ही ग्रहण कर पाये थे। प्रारंभिक शिक्षा घर पर पूरी हुई। सातवी आठवी कक्षा में मित्र जी पढ़ रहे थे कि सन 1924 में इन्होंने अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी जी का ओजस्वी भाषण सुना। मित्र जी लिखते है कि ''सन् 1924 की बात है गणेश शंकर विद्यार्थी जी झांसी मैंगडोलिन हाईस्कूल में पधारे थे और राष्ट्रोत्थान एवं स्वतंत्रता प्रति के लिए उनका एक सुन्दर प्रेरणाप्रद भाषण हुआ था। जिसमें उन्होंने एक विशेष नारा दिया था ''स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए विद्यार्थियों स्कूल छोड़ो। श्री विद्यार्थी जी के इस नारे का प्रभाव मुझ पर विशेष इस कारण पड़ा क्योंकि मैं अध्ययन में गतिशील कम और संघर्षशील अधिक था।'' इस प्रकार मित्र जी के अध्ययन का सिलसिला कक्षा सातवी आठवी तक ही चला। स्कूल छोड़ देने से इने पिताजी को अधिक परेशानी नहीं हुई। वे जानते थे बेटा चिट्ठी पत्री लिख पढ़ सकता है। रामयण भी बांच सकता है। एक दुकानदार के लड़के के लिए इतना पढ़ा लिखा होना ही पर्याप्त था।

मित्र जी की स्कूलकी शिक्षा बीच में भले ही छूट गयी हो लेकिन विचार वान पिता ने बेटे रामचरण के लिए काव्यदीक्षा और बर्तन बनाने की कला सीखने का पूरा कार्य क्रम सुनिश्चित कर दिया था।

बकलम खुद मित्र जी लिखते हैं कि ''सांयकाल जनकवि जुगलेश के सवैया एवं रामायण का अध्ययन और दिन में समाज के एक वरिष्ठ पुरूष एवं चांदी पीतल के पात्रों के कुशल शिल्पी श्री मन्नूलाल जी की संरक्षता में बर्तन निर्माण की शिक्षा प्राप्त करने के लिए बैठा दिया। मैं इस पात्र निर्माण कला का परिज्ञान मध्याहन् तक करता और सायंकाल जुगलेश के सवैया तथा रामायण का साहित्य अध्ययन और जो समय समय पर राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत सभाऐं होती उनमें राष्ट्रीय कवि श्री घासीराम व्यास जिनसे मेरा

परिचय सन् 1921 में हो चुका था, उनके और कुछ अपने राष्ट्रीय छंदों द्वारा राष्ट्रीय मंच से स्वयं सेवकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरणा देता रहता''। [1]

श्री मित्र जी का गृहस्थ-जीवन–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' का विवाह भानुकुमारी के साथ हुआ था। ससुराल मऊरानीपुर में थीं। श्रीमती भानुकुमारी भारतीय मर्यादा और शील की शोभा से विभूषित थीं। स्वभाव से सरल, व्यवहार से मधुर और घर गृहस्थी के कार्यों में निपुण श्रीमती भानुकुमारी ने श्री मित्र जी के व्यक्तित्व को निखारने में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया था। कविवर श्री मित्र जी के गृहस्थ जीवन को वात्सल्यरस से भर देने के निमित्त श्रीमती भानुकुमारी ने 'रमादेवी' और 'कान्तीदेवी' दो पुत्रियों तथा कुलदीपक पुत्र 'श्री चन्द्रकांत' के जन्म दिया। मित्र जी का गृहस्थ जीवन सफल, सुखद तथा भौतिक सजावट से मुक्त धार्मिक सौम्यता से भरपूर था।

श्री मित्र जी का व्यवसाय–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी का व्यवसाय जीविकोपार्जन के लिए जितना उपयोगी था काव्य सृजन के लिए भी उतना ही सहयोगी था। झांसी के सराफा बाजार की एक छोटी गली में उनकी बर्तन की दुकान थी। इस दुकान पर वे बर्तन बेचते भी थे और हथौड़ी हथौड़ा चलाते हुए बर्तनों का निर्माण भी करते थे। उनका मस्तिष्क इतना उर्जावान था कि उनके हाथ बर्तन बनाने में लगे रहते और मस्तिष्क बर्तन बनाते समय हथोड़े की चोटों की धुनें से स्फूर्ति पाता हुआ कविता सृजन करता जाता था।

---

1. उदय और विकास – श्री रामचरण हयारण 'मित्र'।

यहाँ मित्र जी का कवि व्यक्तित्व ''सतंकबीर'' की परम्परा का निर्वाह करते हुए दिखता हैं। मित्र जी का श्रम कौशल एक ओर लोटा; थाली, हड़ाकोपर बनाता जाता दूसरी ओर कवि कौशल बुन्देली भावना चेतना के तेज को प्रगट करता हुआ काव्य सृजन करता रहता था।

प्रसिद्ध पत्रकार साहित्यमनीषी स्वतंत्रता सेनानी श्री रामसेवक रावत जी ने ठीक ही लिखा है कि–

''उन्हें (मित्र जी को) उस भावी युग का प्रतीक मानते हैं जिसमें श्रम और काव्य का सामंजस्य स्थापित हो सकेगा। इधर मित्र जी का हथौड़ा पात्र निर्माण करता है और उधर उनका मस्तिष्क अवाध गति से छंद निर्माण करता जाता हैं उनकी सर्वोत्तम रचनायें इसी प्रकार लिखी गई हैं। [1]

---

1. हिन्दुस्तान – समाचार पत्र – रामसेवक रावत – 2 अप्रैल 1960 ।

श्री मित्र जी का साहित्यिक-जीवन–

श्री मित्र जी का व्यक्तित्व पूर्णतः साहित्यिक था। उनका दैनिक जीवन घर ग्रहस्थी और बर्तन के व्यवसाय में उतना व्यस्त नहीं रहता था जितना साहित्यिक क्रिया कलापों में। दुकान पर ग्राहकों की भीड़ कम रहती थी, साहित्यिक मनीषियों कविगणों, पत्रकारों, स्वतंत्रता सेनानियों और काव्य जगत की विभूतियों का आना जाना अधिक होता था। श्री मित्र जी झांसी के ''माहौर मण्डल'' के सक्रिय सदस्य थे। इस साहित्यिक मण्डल में ब्रजभाषाचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', श्री भगवान दास 'दास' और डा0 भगवानदास माहौर जैसे स्वनाम धन्य महानुभाव भी थे। बुन्देली काव्य धारा का अमृत कलश भरने वालों में श्री मित्र जी सबसे विशेष और अनूठे ही कवि थे।

मऊरानीपुर के प्रसिद्ध कवि श्री घासीराम व्यास रीतिकाव्य और राष्ट्रीय चेतना को राष्ट्रीय मंचो पर मुखर कर रहे थे। श्री मित्र जी और व्यास जी के संबंधो में प्रगाढ़ता थी। वे एक दूसरे के न केवल कवि साथी सखा थे वरन मित्र जी की उन्हें अपना गुरू मानने लगे थे। मित्र जी ने अपने को व्यास जी का सच्चा अनुज और शिष्य न केवल व्यक्तिगत जीवन में माना वरन अपने साहित्यिक जीवन में कवि सम्मेलनों के मंचो पर और साहित्यिक गोष्ठियों में राष्ट्रकवि घासीराम व्यास के काव्य का पाठ पहले करके अपने साहित्यिक धर्म और मर्यादा का निर्वाह किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि कविवर व्यास का स्वर्गवास 39 वर्ष की आयु में ही हो गया था। पर मित्र जी अपने गुरू व्यास को अपने साहित्यिक व्यास को अपने साहित्यिक जीवन में जीवित बनाये रहे। श्री मित्र जी को बुन्देलखण्ड की भाषा संस्कृति, बुन्देलखण्ड की प्रकृति और बुन्देलखण्ड के लोक काव्य से गहरा लगाव था। वे जीवन भर एतद् शोधकार्य करते रहे और विभिन्न पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से अपने लेखों द्वारा प्रकाशित करते रहते थे। यही कारण है उन्होंने बुन्देलखण्ड शोधसंस्थन संस्था का गठन कराया, व्यास हिन्दी भवन का निर्माण कराया और तमाम कवियों तथा साहित्यिकारों को प्रेरणा प्रोत्साहन प्रदान किया। उनका साहित्यिक हृदय जितना मुधर था, उनका कंठ उतना ही सुरीला था और उनका मस्तिष्क साहित्यिक चेतना का शक्तिपुंज था। [1]

---

1. बुन्देली साहित्य के भारतेन्दु – रामचरण हयारण 'मित्र' पत्रक – लेखक कविभूषण राजाराम साहू 'विक्रम' ।

कविवर श्री मित्र जी का व्यक्तित्व– मैंने अल्पायु में परम मान्य कविवर श्री रामचरण हयारण मित्र जी के दर्शन किये हैं मैं अपने श्रद्धेय पिता जी डा0 उदय त्रिपाठी के साथ जब कभी झांसी के बाजार जाती तो पिताजी प्रणाम निवेदन करके श्री मित्र जी की दुकान पर अवश्य रूकते। मेरे ह्रदय और मस्तिष्क पर तभी से श्री मित्र जी के महान व्यक्तिव की छवि अंकित है। बड़े होकर उनके संबंध में बहुत कुछ जाना समझा। उसी आधार पर कह सकती हूं ''मित्र जी पूरी लम्बाई लिये थे। ललाट ऊँचा था। धोती कुर्ता परिधान। सिर पर गांधी टोपी खूब फबती थी। रंग गेहुंआ था। नासिका लम्बी थी। बंदगले बाला कोट पहनते थे। आखें न छोटी न बड़ी। उनके ऊपर भौहें के सफेद बाल उनके व्यक्त्वि को गंभीर बनाते थे। छोटी आधी बनी कटी हुई मूंछों की अपनी ही छवि थी।

उस्ताद मंगली प्रसाद के अखाड़े में नित्य प्रति प्रातःकाल व्यायाम करके मित्र जी ने अपने शरीर को पुष्ट और सुडौल बनाया था। भूतनाथ महाकालश्वेर अटखम्बा जाकर प्रायः स्नान करना और ''शंखपुष्पी'' की ठण्डाई बनाकर पीना और घर के शिवालय में प्रतिदिन देवों की पूजा करते रहने से उनका व्यक्तित्व ने केवल शोभनीय बन गया था वरन एक विशेष आभा से मंडित भी हो गया था। मधुर सुरीली वाणी में जब ओजस्वी कविताओं का पाठ करते तो ''दिनकर छवि'' की प्रतिमूर्ति दिखते थे। उत्तरप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने साहित्य बारिधि से, आर्य सेवासंघ ने साहित्य चक्रवर्ती की उपाधि से, बुन्देलखण्ड साहित्य परिषद ने ''साहित्य शिरोमणि'' की उपाधि से और विक्रम शिला हिन्दी विद्यापीठ द्वारा 'कविरत्न'' की उपाधि से श्री मित्र जो को विभूषित किया गया। अनेक स्थानीय और बाहरी शैक्षणिक साहित्यिक संस्थाओं ने श्री मित्र जी को अभिनन्दन और सम्मान पत्र भेंट किये थे। केशव जयन्ती समारोह ओरछा में भी मित्र जी का अभिनन्दन किया गया था। 'हिन्दुस्तान दिल्ली' में श्री रामसेवक रावत विशाल कलकत्ता में भगवान दास सेठ संसार (काशी) में डा0 बनारसीदास चतुर्वेदी दैनिक जागरण (झांसी) नवजीवन लखनऊ तथा सूत्रकार कलकत्ता

पत्र में राजाराम साहू विक्रम ने आपकी साहित्यिक साधना पर लेख लिखे हैं।

मध्य प्रदेश शासन शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तक ''हिन्दी बाल भारती'' में श्रीमित्र जी की ''कविता बेतवा'' पाठ्यक्रम में रखी गयी थी। 'लोक गायनी', बुन्देली त्यौहार कला संस्कृति और बुन्देली लोक काव्य की समग्र भावना और चेतना की मोहक झाँकी कविवर श्री रामचरण हयारण मित्र जी के व्यक्तित्व को परम आकर्षक और शोभनीय बनाती है।

महान् साहित्यकार श्री विष्णुप्रभाकर ने श्री मित्र जी के व्यक्तित्व पर सटीक टिप्पणी की है ''सरल प्राण मित्र जी के व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण है जो उससे प्रभावित होने वाले को उदान्त भावों से भर देता है उनका साहित्य उन्हीं का प्रतीक है।'' [1]

---

1. विष्णु प्रभाकर – दिल्ली दिनांक 17 दिस0 1975 ।

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी की समकालीन परस्थितियाँ और उनका प्रभाव:-

श्री रामचरण हयारण मित्र जी की काव्य साधना पर युगीनचेतना और परिस्थितियों का प्रभाव निश्चित रूप से है। श्री मित्र जी की समकालीन परिस्थितियों और उनके प्रभाव की विवेचना करना इसीलिये अभीष्टा हो जाता है।

नवजागरण का प्रभाव–

श्री रामचरण हयारण मित्र जी के युग पर पुनर्जागरण का गहरा प्रभाव था। सामाजिक चेतना राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक तथा धार्मिक चेतना देश में एक साथ जागृत हो रही थीं। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, बाबा भीमराव अम्बेडकर, पं0 जवाहर लाल नेहरू इस जागृति का सामयिक नेतृत्व कर रह थे। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, अमरशहीद भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद के क्रान्तिकारी स्वर देश में गूंज रहे थे। ब्रह्म समाज, आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रभाव देश को नयी स्फूर्ती प्रदान कर रहा था। बाल विवाह का विरोध और विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया जाने लगा था।

साहित्यिक जगत में भारतेन्दु जी ने जनता को उदबोधन प्रदान करने के उद्देश्य से लोकगीत शैली पर सामाजिक कविताओं की रचना पर बल दिने की प्रभावी प्रेरणा प्रदान की थीं। [1]

भारतीय वीरों में महाराणाप्रताप, छत्रसाल, शिवाजी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान की कहानियाँ राष्ट्रीयता के लिए उत्साह का संचार कर रही थीं। लाला हरदयाल विपिन चन्द्रपाल, अरविन्द घोष, सुखदेव और राजगुरू आदि की गतिविधियाँ नव जागरण की ऊष्मा को और तेजस्वी बना रही थीं। द्वितीय विश्वयुद्ध का नरसंहार मानवता को घायल कर चुका था।

---

1. कविवचन सुधा – मई 1879 ।

भारतीय जनता अपने कर्त्तव्य अधिकार और स्वाभिमान के प्रति सजग हो गयी थी। यही सजगता श्री मित्र जी की काव्य चेतना को आलोकित रखने लगी थी। श्री मित्रजी वाणी वंदना में कह उठे थेः–

''देवि कुछ ऐसा गा दे राग ।
फटे यह तम का ह्रदय कठोर,
निकलती आवे ऊषा कोर,
उठे रवि अरूण रश्मियाँ जाग,
देवि कुछ ऐसा गा दे राग। [1]

दार्शनिक तथा अन्य विचारधाराओं का प्रभाव–

सनातन धर्म, वैदिक परम्परा और वैष्णव विचार दर्शन का प्रभाव भारत की जनता पर गहरा रहा है। राजा राममोहन राय और महर्षी दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से वैदिक मानवतावादी भावना का प्रभाव बढ़ रहा था। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ने व्यवहारिक जीवन में वैदिक चेतना को जगाने का सफल प्रयास किया था। धर्म आलोकिक ही नहीं है वरन धर्म अनुभव की आत्मिक शक्ति है– स्वामी विवेकानन्द जी का यह संदेश युवकों को आकर्षित करने लगा था। विराट की साधना के माध्यम से विश्वधर्म, विश्वबन्धुत्व और विश्वमानव की चेतना जागृत हो रही थी। राष्ट्रीय चेतना की प्रक्रिया उससे तीव्र हुई और राष्ट्रीय आन्दोलन का उत्साह बढ़ने लगा। नास्तिकों और अस्तिकों दोनों को जीवन के नये अर्थबोध झकझोर रहे थे। विवेकानन्द जी ने दुनियाँ भर को समझाया कि भारत पश्चिमी राष्ट्रों की नीतियों के परिणाम में दरिद्र बनाया गया है। मानवता प्रेमी विदेशी जनता को भारत की जनता की मदद करनी चाहिए। धर्म की थाली से दरिद्र जनता का पेट

---

1. साप्ताहिक वीर अर्जुन दिल्ली – 2 दिसम्बर 1938 ।
(भेंट)

नहीं भरा जा सकता उसे पेट भरने के लिए रोटी चाहिए।[1]

दूसरी ओर महात्मा गांधी जी की विश्व बन्धुत्व की विराट कल्पना भी अपना प्रभाव देश दुनियां पर छोड़ रही थी।

''सत्य अहिंसा परमोधर्म'' का संदेश देकर गांधी जी ने समाजसेवा को मुक्ति का साधन माना लिया था। ''मेरी राष्ट्रसेवा मेरी अध्यात्मिक साधना है'' गांधी जी का यह विचार दर्शन देश को नयी स्फूर्ती प्रदान कर रहा था। गांधी जी की दार्शनिक चेतना ने अहिंसा को सत्य का दूसरा रूप माना था। सहअस्तित्व और शान्तिमय जीवन के प्रति उनकी आस्था का जनता पर भी असर पड़ रहा था। [2]

इन दार्शनिक विचारों का प्रभाव समकालीन और उत्तर कालीन कवियों साहित्यकारों पर भी पड़ा। श्री रामचरण हयारण मित्रजी तो धार्मिक विश्वासों के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति थे। मित्र जी की काव्य साधना पर बुद्धिवादी, आदर्शवादी, जनवादी, राष्ट्रवादी और मानववादी विचार धाराओं का स्पष्ट प्रभाव है। श्री मित्र जी की काव्यकृतियों पर सबसे गहरा प्रभाव महात्मागांधी की आध्यात्मिक चेतना का पड़ा है।

''नव ज्योति'' कविता में मित्र जी को आस्था इस रूप में प्रगट होती है:–

''उसकी छाया में गांधी ने देखा हरजन में हरि दशर्न
इसकी रक्षा हित वीर जवाहर किया समर्पन तन मन धन
भारत वीरो! तज भेद भाव संगठन शक्ति का करो मान
जनता जनार्दन के सुख हित से कुछ श्रम का करो दान ।''

---

1. स्वामी विवेकानन्द ।
2. यंग इंडिया 3 अप्रैल 1928 ।

राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के जीवन का पूर्वाद्ध स्वाधानती संग्राम के राजनीतिक आन्दोलन से प्रभावित रहा और उत्तराद्ध स्वाधीन भारत के विकास अभियान से ओतप्रोत रहा है। महात्मा गांधी जी का व्यक्तित्व कभी प्रत्यक्ष कभी अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन पर छाया रहा । राष्ट्रीय आन्दोलन में पूंजीपतियों और जमीदारों से निर्मित मध्यवर्ग अधिक क्रियाशील रहा। असंतोष की लहर कृषक, मजदूर और छोटे ग्रहोद्योगी कारीगरों में अधिक तेज थी। सन् 1919 में सामूहिक असंतोष से अनेक हड़तालें हुई जिससे स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन में तेजी आ गयी। इस समय गांधी जी का नैतिक और सदाचारी नेतृत्व देश का मिल रहा था। गांधी जी ग्राम केन्द्रीय आर्थिक विकास और ग्रामस्वराज्य की नीति को महत्व दे रहे थे।

मित्र जी ने इसी भावना को ''कर्त्तव्य'' शीर्षक कविता में व्यक्त किया है:–

गई गावन के भैया हो, भारत की नैया के तुमई खेनहार ।

समुद कररओ भेदन सौं घोर,

ज्वार रूपी ऐनस को जौर

पवन के झींका देत झकोर

परी तिसना की भौंर मरोर ।

डूब न जाबै कौनउं तरियां बन जइओ पतवार ।

कृषक और श्रमिक संघ की स्थापना से जनता में वर्ग संघर्ष का वातावरण बनने लगा था। जनतांत्रिक आन्दोलन की शुरूआत हो चुकी थी जिसके व्यापक प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही ''नमक'' आन्दोलन सफल हुआ था। सन् 1930 में डॉडी नमक सत्याग्रह को ब्रिटिश सरकार के दमनेकारी चक्र से दबाया गया था। किन्तु जनता ओर अधिक आन्दोलित हो रही थी। इस समय तक राजनीतिक दलों में विशेष रूप सें कोंग्रेस में समाजवादी विचार

---

1. कर्तव्य – रामचरण हयारण' मित्र' ।

धारा का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इन तमाम राजनीतिक परिस्थितियों से जनता की आत्मशक्ति और आत्योत्सर्ग की भावना राष्ट्रीय चेतना के सापेक्ष प्रगट हुई।

राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव मित्र जी की ''आजाद हिन्द गीत'' में स्पष्ट दिखता है।

''हम खड़े हुए तूफ़ान लिये, प्रलयकारी सामान लिये।
पल भर में विश्व कंपा देंगे, है शांति लिए अरमान लिये ।
'भारत छोड़ों' होंगे स्वतंत्र बस काफी यही इशारा है।
आजाद हिन्द के सैनिक हम जयहिन्द हमारा नारा है'' । [1]

आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव–

भारत की आर्थिक दुर्दशा हो चुकी थी। न ग्रामवासी चैन से जी पा रहे थे न नगरवासी सुख की सांस ले पा रहे थे। देश की अर्थव्यवस्था असंतुलित थी। यूरोपीय सामंतवाद और भारतीय सामांतबाद की आर्थिक व्यवस्थाओं की मार से आम जनता दरिद्र हो गयी थी। गांवों में किसनों का शोषण हो रहा था। श्रमिक मजदूरों का शोषण नगर कस्बों में हो रहा था। किसानों के आथिक शोषण और उत्पीड़न की करूण कहानी प्रेमचंद्र के 'गोदान' उपन्यास में प्रगट होती है। राजा रजवाड़े शासन तो कर रहे थे पर जनता को संरक्षण नहीं दे रहे थे। अंग्रेजी हुकूमत इन्हीं राजाओं के माध्यम से जनता का आथिक दोहन कर रही थी। जनता की आर्थिक कठिनाईयों का समाधान नहीं होता था हाँ नाना प्रकार के टैक्स लगा कर जनता से अधिकसे अधिक धन बसूला जाता था। आवागमन के साधनों का विकास नहीं हुआ था परिणाम में ग्रामीण आर्थिक चेतना पनप नहीं पा रही थी। इन आर्थिक परिस्थितियों से भारत की जनता निर्धन होती जा रही थी। बुन्देलखण्ड की जनता की और

1. युगान्तर कानपुर – फरवरी 10, 1946 में प्रकाशित ।

भी बुरी दशा थी। अंग्रेज बुन्देलखण्ड के जुझारू स्वभाव से भय खाते थे। अंग्रेज सरकार जानबूझ कर ऐसी आर्थिक नीतियां बनती थी ताकि बुन्देलखण्ड किसी भी दशा में आर्थिक रूप से आगे न बढ़ सके।

खेत अनेक टुकड़ों में बांट दिये गये थे। किसान और सकरार के मध्य अनेक विचौलिये पैदा हो गये थे। ग्रामीण उद्योगधन्धे नष्ट कर दिये गये थे। खेती पर ही किसान आश्रित थे। शहर में आकर किसान मजदूर बनने पर विवश होन लगा था। [1]

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी की काव्य चेतना पर इन आर्थिक परिस्थितियों और दशाओं का गहरा प्रभाव दिखता है। कृषक क्रन्दन कविता में कृषक की वेदना और दुःख का मार्मिक वर्णन है।

मेंड पर मुरझा गई हैं सेंम की सब फलियों,
पंख फैलाये पड़ी खलिहान में है विहंग बलियों ।
कामधेनु रंमा रही है, दाबती मुख में नही तृण,
कर रही है कृषक कुटिया, आज कैसा करूण क्रन्दन ।

संदेश गीत में – बुन्देलखण्ड की बहना का कष्ट देखियेः–

इतनी विरन सौ बदरवा जा कइओ
बैना बिलखै बमूरा की छांय ।
उजर गई निठुआंई फुल बगिया ,
कयारिन जमीं सनाएं ।
गुबरीला सुख भोगे भौरा
नीमन पै मड़राय ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डा0 नगेन्द्र प्र0 442 ।
2. लौलैयाँ – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।
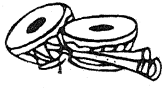
अध्याय - चतुर्थ

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी की काव्य कृतियों एवं रचनाओं का परिचय

* पद्य-रचनाऐं
* सम्पादित-रचनायें
* गद्य-साहित्य
* फुटकर- रचनायें
* पद्य-रचनाओं का संक्षिप्त परिचय
  - भेंट
  - सरसी
  - साधना
  - गीता दर्शन
  - ओरछा दर्शन
  - लौलैयाँ
  - लोकगायनी
* गद्य-साहित्य
  - बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य
  - उदय और विकास
  - लेखों का विवरण

श्री रामचरण हयारण "मित्र" की काव्यकृतियों एवं रचनाओं का परिचय -

आधुनिक काल के आरंभिक कवियों में ईश वंदना से मातृभूमि वंदना और राष्ट्रवंदना की ओर झुकाव को दिखाने के लिए अनेक प्रसिद्ध रचनाऐं सामने आती है। इस क्रम में पहली महत्वपूर्ण खड़ी बोली रचना है मैथिलीशरण गुप्त की ''मातृभूमि'' :-

''नीलाम्बर परिधान हरित तट पर सुन्दर है

सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है''

आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास क्रम में देशभक्ति, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक चेतना और जन अस्मिता की पहचान साहित्य और देश के संबंधो की उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती प्रतिक्रियाऐं हैं।[1]

श्री रामचरण हयारण मित्र की रचनाओं में राष्ट्रीयता का उभरारंग मैथिलीशरण गुप्त की प्रेरणा को रेखांकित करता। राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक चेतना का स्वर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के प्रभाव को उजागर करता है। काव्य के उत्थान के लिये जिन अंगो, कल्पनाओं, भावराशियों और जीवन चित्रों की आवश्यकता होती है- मित्र जी की रचनाओं में उन सब की उपस्थिति सहजरूप से मिलती है।

श्री मित्र जी मौलिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, बुन्देली लोकपरक और अनुदित, सम्पादित कृतियाँ निम्नांकित हैं:-

---

1. आधुनिक कविता यात्रा - रामस्वयप चतुर्वेदी - पृ० 6 ।

पद्य रचनायें–

1. भेंट – (राष्ट्री काव्य)
2. सिरसी – (राष्ट्रीय, सामाजिक तथा प्राकृतिक पद्य रचना संग्रह)
3. साधना – (अध्यात्मिक पद्य रचना संग्रह)
4. लौलैंया – (बुन्देली काव्य संग्रह)
5. लोक–गायनी – (बुन्देली काव्य कृति)
6. ओरछा दर्शन – (ऐतिहासिक काव्य रचना)
7. गीता दर्शन – (पद्य – अनुवाद)
8. वीरांगना मानवती – (ऐतिहासिक परिचय)

सम्पादित रचनाऐं–

1. विस्वबसकरन – राजकवि हीरालाल व्यास हृदेस कृत (सम्पादन)
2. राष्ट्रकवि घासीराम व्यास – सम्पादन – प्रकाशन (व्यक्त्वि कृतित्व)

गद्य साहित्य–

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य (संस्कृति और लोक काव्य का विवेचनात्मक – ग्रन्थ)
2. 'उदय' और विकास'–
3. मानवता की विजय – सामाजिक उपन्यास ।
4. चित्र (कहानी)

फुटकर रचनायें–

1. वन्दना
2. राष्ट्रीय कविता के स्वर
3. छत्रसाल
4. शिवाजी
5. महारानी लक्ष्मीबाई
6. देवकी की साधना
7. ब्रजांगना हास विलास
8. बुन्देलखण्ड और उसकी नदियां
9. बुन्देलखण्ड प्रशस्ति
10. वर्षा वर्णन
11. शरद सौष्टव
12. नवज्योति
13. भारतीय वीरों की रण विजय
14. परिवर्तन
15. संदेश
16. समरांगण गीत
17. क्षीण अभिलाषा
18. बुन्देलखण्ड गारी
19. बंगलाविजय
20. उद्धव – सम्वाद
21. कवि से
22. ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा
23. श्रंगार रस
24. कर्मफल
25. पथिक
26. परम्परा
27. चन्द्रोक्तियां
28. चातक
29. गुरूनानक
30. गरूगोविन्दसिंह
31. श्री लालबहादुर शास्त्री
32. मुक्तक
33. विनती
34. भोर
35. गांव पुरा की बातें
36. जौ जुग सूदेयन को नैयां
37. जो वरसत वे गरजत नैयां
38. विदा
39. किसान की बिटिया
40. चौकड़ियाँ
41. कर्त्तव्यशील भारत और उसके दोस्त
42. बुन्देलखण्डी लोकगीत
43. अँखियाँ
44. बसंतगीत
45. मोरी जाय न झांसी की लाज
46. चंदा सात समुद्र गऔ पर (राष्ट्रीय जागरण गीत)
47. जागौ विरन (जागरण गीत)
48. बुन्देलखण्ड
49. जो पन्द्रा अगस्त
50. ग्रामबाला

पद्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय -

भेंट– श्री रामचरण हयारण मित्र जी की काव्यकृति ''भेंट'' में राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत चालीस कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं ने राष्ट्रीय चेतना जागरण में यथेष्ठ योगदान दिया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने ''भेंट'' के संबंध में लिखा था –

''मित्र जी की भेंट नाम पुस्तक की कविताऐं दिल को हिला देने वाली हैं। मेरा विश्वास है इस वाणी से साहित्य सम्पन्न होगा।'' [1]

पं0 जवाहर लाल नेहरू जी ने भेंट में आजादी की लहर देखी थी और टिप्पणी की थी कि भेंट में जीवन और बल मौजूद है। ऐसे साहित्य से देश का हित होगा। [2]

'भेंट' की भूमिका श्री वियोगी हरि ने लिखी है। आपकी सारगर्मित टिप्पणी है कि भेंट की अधिकांश कविताओं का झुकाव राष्ट्रीय जागरण की ओर है। भेंट की कविताओं की भाषा सुन्दर है। आधुनिक परिपाटी के छंदों का प्रयोग किया गया है।

'भेंट' में 'स्वतत्रंता'' की पुकार लगायी गयी है। भेंट की प्रारमंभिक कविता है :–

''दुख दासता द्वन्द्व निकंदिनी तू
    अय भारत वन्दिनी आजा जरा ।
सुखसाज सजा जा सदा के लिए
    मुरझाए प्रसून खिला जा जरा।
जगती तल के जग भाग उठें,
    वह वीणा की तान सुना जा जरा।
करूणा कर देश पुकार रहा,
    अरी मात स्वतंत्रते आजा जरा । [3]

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – शान्ति निकेतन –(सम्मति)।
2. पं0 जवाहर लाल नेहरू – 31 दिसम्बर 1937 –(सम्मति)।
3. ''भेंट'' – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।

मित्र जी की अभिलाषा है – देश उठखड़ा हो और आगे बढ़ता जाए । वाणी वंदना में यही भाव उभरा है ।

''देवि कुछ ऐसा गा दे राग,
फटे यह तम का ह्रदय कठोर,
निकलती आपे ऊषा कोर,
उठे रवि अरूण रश्मियां जाग,
देवि कुछ ऐसा गा दे राग ।''

''झाँसी के दुर्ग'' में बलिदान के यश का गान गाया जाता है–

पराधीनता के बन्धन में,
स्वतंत्रता का गाया गान,
शीश चढ़ाकर बलि वेदी पर,
पुण्यभूमि की राखी शान ।

''कौन'' कविता में देश पर खून चढ़ाने वालों को स्मरण किया गया है–

पीड़ितों की आशा की लता
सींचता है शोणित से कौन

कृषकों की दुर्दशा को व्यक्त करने वाला एक गीत ''कृषकक्रन्दन'' भी बहुत मार्मिक है।

था नहीं संतोष लेकर कृषक की सम्पत्ति सारी,
वेदना को जानता मृग जानता है क्या शिकारी,
क्रोध कर बोला जकड़ लो बन्धनों से शीघ्र सब तन,
कर रही है कृषक कुटिया, आज कैसा करूण क्रन्दन ।
••••••••••••••••••••••••••••••••••••
रो उठी करूणा कृषक पर देख अत्याचार सारा,
हिल उठा ब्रह्माण्ड कम्पित हो उठी त्यों यमुन धारा।
कह उठे ग्रामीण नर नारी बचाओं लाज मोहन ।
कर रही है कृषक कुटिया आज कैसा करूण क्रन्दन।

'भेंट' में बेतवा, झाँसी की रानी, अमर शहीद गणेश शंकर विघार्थी पर भी उत्तम कविताऐं हैं। 'भेंट' काव्य कृति में श्रीमित्र जी ने स्वाधीनता संग्राम की युगीन चेतना को प्रभावी अभिव्यक्ति दी है।

सरसी– 'सरसी' पुस्तक में भी मित्र जी की कविताओं का संग्रह है। इस पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध पत्रकार एवं साहित्य मनीषी पं0 बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखी है। इस काव्य संग्रह में ''सरसी'' नीव के पत्थर, परिवर्तन, तिनके की कहानी, तुलसीदास, बुन्देलखण्ड आदि प्रमुख कविताओं को प्रकाशित किया गया है। श्री रामचरण हयारण मित्र जी ने ''सरसी'' के बाबत निवेदन शीर्षक में लिखा है:–

''सरसी'' की कविताओं को कसौटी पर तो साहित्य मर्मज्ञ ही कसेंगे मैं एकाध बात इन कविताओं के संबंध में कह देना चाहता हूँ । मेरा अपना मत कभी भाषा और भाव के बन्धनों को स्वीकार करके नहीं चला है और इसीलिये मेरा अनुमान है कि मैं काव्य क्षेत्र में विद्यमान आज के विभिन्न वाद वर्गों में से किसी में भी नहीं आता।

बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य से मुझे प्रेरणा मिली है, उसी के फल स्वरूव बुन्देलखण्ड की कई नदियों का यशोगान 'सरसी' में है। राष्ट्रीयता ने भी मेरे मन में तूफ़ान के क्षण पैदा किये हैं और उन क्षणों में ने सरसी के लिये कतिपय पुष्प संजोये हैं। सामाजिक और आर्थिक विषमताओं ने मेरे मन में हाहाकार मचाया है और इस हाहाकार क्रन्दन में ही 'सरसी' की कुछ लघु लहरियों का निर्माण हुआ । '' [1]

इस प्रकार यह स्पष्ट कि ''सरसी'' की कविताओं में बुन्देलखण्ड का प्राकृतिक सौन्दर्य, राष्ट्रीयता का उद्‌बोधन और सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं की सम्वेदनाओं को अभिव्यक्ति दी गयी है।

भाषा के संबंध में भी 'मित्र' जी ने साफ शब्दों में लिख दिया है:–

''जिस तरह भाव स्वतंत्रता ''सरसी'' में है उसी तरह भाषा के संबंध में भी मैं ने पूरी स्वतंत्रता से काम लिया हैं पाठक देखेंगे कि ''सरसी'' में ब्रजभाषा बुन्देलखण्ड और खड़ीबोली सभी का प्रयोग हुआ है।'' [2]

---

1. सरसी– निवेदन अंश – श्रीरामचरण हयारण 'मित्र'।
2. सरसी – निवेदन अंश – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।

''सरसी'' की भूमिका अंश में पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी जी लिखते हैं कि– मित्र जी की ''सरसी'' में भिन्न भिन्न भावों और रंगों के कितने ही पुष्प खिले हुये हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े प्रेमी हैं और बुन्देलखण्ड की नदियों के प्रति उनके हृदय में अनन्य श्रद्धा है। इस विषय में हमारी और उनकी रूचि का पूर्ण मेल है।'' [1]

'सिरसी' – में बेतवा के माध्यम से बुन्देलखण्उ के गौरव का गान मित्र जी इस प्रकार करते हैं–

धन्य धन्य विमल बुंदेल की बसुन्धरा है,

जहाँ बेतवा की यशधारा लहराती है।

तुंगारण्य तीर तुंग तरल तरंगिनी की,

बूंद–बूंद कोविद कवीन्द्र प्रगटाती है।

स्वर लहरी के ताल ताल में प्रवीनराय,

'मित्र' रश्मियों के साथ थिरकत आती है।

स्वर्णदान धारा बन जाती वीरसिंह जू की

वही छत्रसाल का दुधारा बन जाती है।

''तिनके की कहानी''– कविता द्वारा 'मित्र' जी अहंकार में डूबों लोगों को संदेश देना चाहते हैं– कि कोई छोटा बड़ा नहीं होता है। वक्त पर सब की अपनी अपनी भूमिका होती है। इसी भूमिका के सापेक्ष छोटे बड़े सभी समान रूप से महत्वपूर्ण और विशेष बन जाते हैं।

सपने नहीं प्रेम बुन्द झरें, कहते मुख से हैं सदा कटु बानी ।

धरते नहीं पैर सुमारग में, चलने की कुमारग में हठ ठानी ।

प्रिय 'मित्र' की बात सुनें न सुनें, करते रहते अपनी मनमानी ।

तन के मद में जो तने ही रहें, तिनके लिए ये 'तिनके' की कहानी ।

---

1. सरसी – भूमिका-अंश – बनारसी दास चतुर्वेदी ।

'तिनके' की सार्थकता को प्रगट करती हैं ये पंक्तियाँ :-

अपने भर उज्जवल अंचल में, कुछ ले गई बेतवा की प्रिय धारा।

करने लहरों से लगा अठखेंलियां मोद में डूबा हुआ नहीं न्यारा।

दिन में प्रिय 'मित्र' की रश्मियों से, चमका निशि में शशि बिम्ब के द्वारा।

ब्रत सेवा का भूला नहीं क्षण को बना डूबते को तिनके का सहारा।

''कविगणों'' के यशगान में मित्रजी बहुत ही व्यवहारिक और सटीक भाव लहरियों को 'सरसी' में प्रगट करते हैं। मित्र जी की मान्यता है कि कवि विधि के विधान का विधाता बन सकता है।

जहाँ 'मित्र' रश्मि का प्रकाश कुछ होता नहीं,

वहाँ कवि भाव का प्रभात सरसता है।

जहाँ चित्रकार की तूलिका चढ़ाती न रंग,

वहाँ कवि मोदमयी मूर्ति को सजाता है।

विहवल जो ह्रदय सरोवर हो वेदना से,

वहाँ सुख शान्ति रूपी कमल खिलाता है।

सृष्टि निर्माता है विधाता यदि विश्व बीच,

कवि भी तो विधि के विधान का विधाता है।

मित्र जी ने सरसी की कविताओं में कई भावों को बड़ी खूबी के साथ उतारा है। अत्याचार से पीड़ित नारी के ह्रदय की पीड़ा को 'मित्र' जी ने बहुत ही मार्मिक वाणी प्रदान की है-

''नर किन्तु ह्रदय को थाम जरा मन की दर्पन को साफ करे ।

खुद अपनी चरित्र हीनता का कुछ न्यायोचित इन्साफ करे।

क्या भूल गई है सृष्टि चतुर चतुरानन की वह पाप कथा।

सुरपति औ विश्वामित्र आदि ऋषियों की लिप्सामयी व्यथा।

''वृन्दा के साधन का खण्डन, वह सती अहिल्या का क्रन्दन ।।

है ह्रदय विदाकर सीता का वह अग्नि परीक्षा का बन्धन ।''

सामाजिक कठोरताओं पर ''मित्र जी'' का यह सात्विक क्रोध वंदनीय है।

'नींव के पत्थर' कविता में मित्र जी कहते हैं कि श्रम जीवी वर्ग ही क्रान्ति का अग्रदूत बनेगा। इनके योगदान से ही भावी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होगा।

''उन्नत भाल देश का करने लिए हथेली पर अपना सर ।

तर कर कर वह ह्रदय रक्त से जमा रहा था नीं के पत्थर।

जब मित्र जी मजदूर के मुंह से यह गौरवपूर्ण पक्तियाँ कहलाते है तो ह्रदय गद्गद् हो जाता है:-

''मेरी इस बलिदान शिला पर दीन राष्ट्र का दुर्ग उठेगा।

अरूण पताका फहराने को, पीड़ित शोषित वर्ग उठेगा। ''

साधना-

'साधना' पुस्तक में मित्र जी की उन कविताओं को संग्रहित किया गया है जो झांसी गीतामंदिर में समय समय सुनायी जाती रही हैं।

सन् 1952 मई 5 को इस संबंध में श्री लक्ष्मीनाराण सजपाली ने लिखा था:-

''गीता मंदिर झांसी की ओर से मिश्र जी की पुस्तिका 'साधना' प्रकाशित करते हुए हमें संतोष होता है कारण इस पुस्तिका में उन भाव-रस पूर्ण कविताओं का संकलन किया गया है जो श्री मित्र जी गीता मंदिर के साधकों को समय समय पर सुनाते रहे हैं।''[1]

इसकी भूमिका अंश में श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश' जी ने लिखा है कि-

''मित्र जी ने वहाँ (गीता मंदिर में) लोगो को कोरे भक्त नही रहने दिया न भगवान को कोरा भगवान मानने को वे तत्पर हुए।''

श्री मित्र जी का कहना है कि

''जो पतित पावन बना दे उसे मैं भगवान कहूंगा।

वेदना सुख मूल कर दे उसे दुख भंजन कहूंगा।''

मित्र जी जीवर वाले व्यक्ति थे। संयमशील मित्र जी की वांछा है कि उनका समाज साहस के साथ संघर्ष करे मन की चंचलताओं पर संयम रखे और आगे बढ़ता जाए । 'साधना' में वे लिखते हैं–

''जिस जीवन में संघर्ष नहीं, वह जीवन ही क्या जीवन है।

साधन में संतोत्कर्ष नहीं, वह साधन भी क्या साधन है।

जो बांध न पाये चंचल मन, वह बन्धन भी क्या बन्धन है।

साधक की भावना सात्विक होनी चाहिए। उसे निर्लित होना चाहिए– इन भावों को ''साधना'' में मित्र जी किस सरलता से प्रस्तुत करते हैं:–

''अगम अगोचर अजेय अज अविनासी,

अखिलेश ब्रह्म पूर्ण विश्व का विधाता है,

बन्धन से मुक्त, भावना के वहीं बन्धन से,

राम घनश्याम का स्वरूप बन जाता है।

'साधना' की कविताऐं उन लोगों को संजीविनी का काम दे सकती हैं, जो केवल भगवान के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। और जिनकी मनोवतृति कर्महीन हो गयी है। अतीत पर छाती फुलाकर ही नहीं जिया जा सकता है। हमें अपना कर्म और कर्तव्य तो करना ही होगा।

''झूठा पुराण का तुझे मान, झूठा गीता का तुझे ज्ञान ।

मों पतित पावनी गंगा का, झूठा करता तू ह्दय ध्यान ।

मंदिर में झूठे अर्चन से, बन्दी कर शखे वीर राम ।

ओ तपः पूर ओ अग्निदूत, ओ महापुरूष तज क्लीव वेष ।

अब कर्मक्षेत्र में उतर शीघ्र तज प्राण मोह बन कर्मवीर ।

1. साधना – (दोशब्द) लक्ष्मीनारायण राजपाली – दिनांक 5 मई 1952 ।

अपनी संस्कृति की आन बान रखना अर्पण कर तन मन धन ।

जिस जन में जाग्रत ज्योति नहीं, उसका जीवन भी क्या जीवन ।

स्वाधीनता प्राप्त हो गयी थी लेकिन बाद की विषम परिस्थितयों से मित्र जी का मन व्यथित हुआ। 'साधना' के गीतों में मित्र जी कुछ कर गुजरने की प्रेरणा देते हैं–

''ओर भारत माता के सपूत फिर से भारत कर दे अखण्ड ।

स्वतंत्र देश का उजड़ा वन फिर से बन जावे नन्दन वन ।

इस प्रकार श्रीमित्र जी की ''साधना'' काव्यकृति केवल भक्ति पूजार्चन और आध्यात्मिक उक्तियों वाली रचना नहीं अपने अपने कर्तव्यों की साधना करने की प्रेरणा देने वाली कृति है।

गीतादर्शन–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी ने 'गीता' का सुन्दर और सरल भाषा में हिन्दी रूपान्तर किया है। गीता देश की सर्वमान्य धर्म पुस्तक है। 'गीतादर्शन' की भूमिका हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखी है।

आचार्य द्विवेदी जी लिखते हैं कि–

''अत्यन्त भौतिकता प्रधान आधुनिक युग में भी गीता ने देश में नवीन शक्ति और नवीन मंत्र दिया है। ऐसे ग्रन्थ रत्न का जितना प्रचार हो उतना ही कल्याण होगा। ऐसा जान पड़ता है कि हमारे कवियों और विचारकों के चित्त में अभी तक इस ग्रन्थ के रूपान्तर करने में संतोष नही हुआ–जो इस अमृत का पान करता है, उसे नया स्वाद मिलता है और वह व्याकुल भाव से अपने आस्वादित रस को अन्य साथियों को भी अनुभव करा देना चाहता है। 'मित्र' जी ने भी इस रस का चख के पान किया है। मुझे यह कहने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि उन्होने न केवल इस रस को पान करके अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करने में सफलता प्रापत की है,

बल्कि उस आनन्द को सहज सरल भाषा में व्यक्त करने में भी वे सफल हुए हैं।''[1]

श्री वियोगी हरि जी ने अपनी सम्मति में लिखा है

''गीता दर्शन में हिन्दी पद्यों के साथ कई स्थलों में विद्वानों की टिप्पणी दे दी गई है, इससे संस्कृत श्लोकों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इस शुभ प्रयास के लिए मैं श्री मित्र जी को बधाई देता हूं।'' [2]

''गीतादर्शन के कुछ पद्यांश''–

कर्मयोग (तीसरा अध्याय)

(श्री अर्जुन)

यदि कर्म से तुम बुद्धि को ही श्रेष्ठ ठहराते प्रभो ।
फिर क्यों भयंकर कर्म मुझसे आप करवाते प्रभो ।
मिश्रित वचन सुन आपके मम मति भ्रमित भगवान है।
प्रभु एक निश्चत कर कहो जिसमें निहित कल्याण है।

(श्री कृष्ण)

पहले कहीं इस लोक की निष्ठा द्विधा श्रुति धर्म से,
जो ज्ञानियों की सांख्य से है योगियों की कर्म से ।
निष्कर्मता मिलती न कर्मारम्य ही को रोक के ।
हो साध्य सिद्धि न कर्म के सन्यास से ही लोक के।

है इन्द्रियों के राग द्वेष स्व विषय में रहते सदा ।
इनके न वश में हो कभी, ये शत्रु ही हैं सर्वदा ।
है वर, विगुण भी धर्म निज, पर धर्म सुचरित से सदा।
है श्रेय मृत्यु स्व धर्म में, पर धर्म में भय सर्वदा ।

---

1. गीतादर्शन – हजारी प्रसाद द्विवेदी (भूमिका अंश) कविवर श्री रामचरण हयारण 'मित्र।'
2. गीतादर्शन – पर सम्पत्ति – वियोगी हरि दिनांक 15 दिसम्बर 1954 ।

(श्री अर्जुन)

प्रेरित हुआ किससे पुरूष यह पाप है करता प्रभो,

मनो स्वयं चाहे न, परवश से नियोजित सा प्रभो।

(श्री कृष्ण)

होता रजोगुण से प्रकट यह क्रोध अरू यह काम है,

बहु भोग, भोग न तृप्त हो, यह शत्रु अति उद्दाम है।

ज्यों धूम से ढंकता अनल, मल से मुकुर आवृत यथा,

ज्यो गर्भ झिल्ली से ढका यह ज्ञान विषयों से तथा। [1]

ओरछा-दर्शन–

'ओरछा-दर्शन' श्री मित्र जी की ऐतिहासिक काव्य कृति है। बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक एवं धार्मिक केन्द्र ''ओरछा'' को केन्द्र में रखकर 'ओरछा दर्शन' की रचना की गयी है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लेखक डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा जी ने ओरछा दर्शन पर अपनी सम्पति में लिखा था कि:–

''भाई श्री रामचरण जी हयारण मित्र विन्ध्य प्रदेश के प्रतिभावान कवि हैं। ओरछा दर्शन में उनके विन्ध्य भूमि प्रेम का पर्याप्त निदर्शन हैं। उन्होंने बेतवा के एक एक रजकण की ओर से सुमेरू पवर्त तक को चुनौती दे दी है।'' [2]

श्री पन्नालाल अग्रवाल जी 'दोशब्द' में 'ओरछा दर्शन' के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं:–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' भी हमारे बुन्देलखण्ड के उन्हीं प्रतिभाशाली कवियों में एक है जिनके राष्ट्रीय साहित्य द्वारा दीन राष्ट्र को बल मिला है''

---

1. गीतादर्शन – पद्यानुवाद – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।
2. ओरछा दर्शन – (सम्माति डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा)

आज हमको उनके ओरछादर्शन नाम गीत काव्य प्रकाशित करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है जिसमें श्री 'मित्र' जी ने अपनी साहित्यमयी वाणी से ओरछा का प्राकृतिक तथा स्थानीय विशद वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। [1]

'ओरछा दर्शन' की वंदना में मित्र जी विन्ध्यवासनी का यशोगान करते हुए कहते हैं कि

माँ विन्ध्य निवासिनी ! वन वासिति ।

कमले ! कल्याणी कमलासनि !

वरदे ! ब्रह्माणी जगत जननि !

माँ उमा ! शैलजा ! सिंहासनि !

माँ सिंहवाहिनी को प्रणाम ।

मां चन्द्रहासिनी को प्रणाम ।

यश विन्ध्यभूमि का लिखता हूं ।

कर विन्ध्यवासिनी को प्रणाम ।

कविवर श्री मित्र जी ''बुन्देलखण्ड'' शीर्षक कविता में बुन्देलखण्ड की संस्कृति और इतिहास के महत्व का वर्णन करते हैं।

बुन्देलखण्ड की विश्व बीच,

है अमल आर्य संस्कृति अविचल ।

जिसका प्रतीक गुरू आज्ञानत,

यह विन्ध्य आज भी पूर्ण अचल ।

ओरछा का वैभव इन पंक्तियों में प्रगट हो रहा है:-

है सता द्वीप नवखण्ड बीच,

बुन्देलखण्ड की छवि अखण्ड।

जिसका विशाल, 'ओरछा' देख

लज्जित होता है मार्तण्ड ।

---

1. ओरछा दर्शन – (दो शब्द श्री पन्नालाल अग्रवाल)

'ओरछा दर्शन' में श्री मित्र जी बेत्रवती सरिता की सृजनशीलता, वीरता और वैभव का वर्णन करके कहना चाहते हैं कि ओरछा का इतिहास एक प्रकार से ''बेत्रवती'' सरिता के प्रभाव से ही बना है।

बेत्रवती

माँ बेतवती ! स्वर लहरी से,
मेरी वाणी के भर दे स्वर ।
स्वर में भर लय, लय में द्रुतगति,
द्रुतगति में विद्युत शक्ति प्रखर।

मित्र जी 'बेतवा' से वरदान मांगते है कि मातृभूमि पर मिटने की शक्ति प्रदान कर दे है–मां बेतवा।

मानस में भर दे भव्य भाव,
भावों में वीरोचित प्रभाव ।
निज मातृभूमि पर मिटने का,
वरदायिनि! भर दे चारू चाव ।

• •

तेरी प्रतिभा से चमक रहा,
बुन्देल नृपों का अतुल दान ।
तेरी प्रतिभा को ह्रदय धार,
'हरदौल' कर गए गरल पान ।

'ओरछा' का दुर्ग जिस गौरव की कहानी कह रहा है उसका वर्णन ओरछा दुर्ग शीर्षक कविता में है।

ओरछा मध्य है सुद्रढ़ खण्ड,
नरसिंहों का यह दुर्ग अभय ।

जिसको छूकर कहता समीर,

वर बुन्देलों की जय जय जय ।

••••••••••••••••••••••••••

बुन्देलों का यह स्वर्ण मुकुट,

बुन्देलखण्ड का गुण गौरव ।

अरियों का रंग बंदरंग किया,

जर्जरित किया भेजा रौ रव ।

ओरछा नगर की जीवन शैली और शोभा का वर्णन ''ओरछा नगर'' शीर्षक कविताओं में है।

गणनायक गृह के द्वारा द्वार,

विघनों को करते छार छार ।

मंगलमय वन्दनवार अमित,

लहलहा रहे सुखप्रद अपार ।

••••••••••••••••••••••••••

मंगल सूचक शुचि स्वर्ण कलश,

गृह द्वारा द्वारा पर हरे चमक।

चित्रांकित मणि माणिक जिनमें,

जग मग जग मग थे रहे चमक। [1]

---

1. ओरछा दर्शन – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।

गद्य साहित्य–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी के दो गद्य ग्रन्थ विशेष महत्वपूर्ण हैं।

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य ।
2. उदय और विकास ।

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य–

बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहितय को ''राजकमल'' दिल्ली ने 1969 में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक को शौर्य खण्ड, वैभव खण्उ और बुन्देली संस्कृति और साहित्य तीन खण्डों में तैयार किया गया है। शौर्य खण्ड में राजा परिमाल चंदेल, मधुरक शाह ओर रानी श्री गणेश कुंजी से लेकर महारानी लक्ष्मीबाई, वीर मर्दन सिंह की यश कीर्ति क्रा अच्छा विवरण दिया गया। इसी खण्ड में स्वतंत्रता संग्राम के क्रान्तिकारियों का वर्णन हैं। विश्व प्रसिद्ध रूस्तम–ए–जहां गामा पहलवान तथा हाकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद पर भी लेख हैं।

वैभव खण्ड में बुन्देलखण्ड की कीर्तिगान, बुन्देलखण्ड की नदियों, बुन्देलखण्ड का वक्षस्थल खजुराहो, बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक और प्राकृतिक स्थल, बुन्देलखण्उ का कृषि साहित्य बुन्देलखण्उ की लोक रागिनी, लोक साहित्य, सूक्ति साहित्य, लोक कथा साहित्य बुन्देलखण्ड के लोक नृत्य, चित्रकला, बुन्देली बाद्य और गायन कला पर लेख हैं।
बुन्देली संस्कृति और साहित्य खण्ड में वसंत, ग्रीष्म, वर्षा शरद हेमन्त और शिविर ऋतु के व्रत मेले, तीज त्यौहार और उत्सवों की विशद जानकारी दी गई है।
डॉ0 भागीरथ मित्र ने इस ग्रन्थ के संबंध में लिखा है कि
मित्र जी के इस ग्रन्थ के द्वारा बुन्देलखण्ड प्रदेश का ऐतिहासिक, काव्यगत और सांस्कृतिक वैभव उद्घाटित हुआ है।
आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी का कहना है कि :–
''मित्र जी ने इस ग्रन्थ में बुन्देलखण्ड की संस्कृति साहित्य और वीरों के शौर्य का वर्णन

किया तथा यहां के प्राकृतिक स्थलों, तीर्थों, नदियों, वनों, उपवनों एवं बुन्देलखण्डी ग्राम्य जन जीवन का गघ और पघ में सजीव चित्रण किया वह अत्यन्त सरहानीय है।''[1] स्पष्ट है की मित्र जी द्वारा लिखा गया'' बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य'' ग्रन्थ एक शोधपूर्ण ग्रन्थ है। बुन्देलखण्ड के अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ पर्याप्त पुष्ट प्रमाणित सामग्री संजोए है।

उदय और विकास– 'उदय और विकास' ग्रन्थ श्री मित्र जी की दीर्घकालीन साहित्यिक साधना और बुन्देलखण्ड के विकास की चेतना को समाहित किये है। इस पुस्तक का प्रकाशन बुन्देलखण्ड शोध संस्थान, झांसी ने 1976 में किया था। इस ग्रन्थ की भूमिका पद्मभूषण डा0 श्री बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने लिखी है। इस पुस्तक को मित्र जी ने चार भागों में पूरा किया है।

उदय उन्मेष, विकास उन्मेष, प्रकाश उन्मेष और प्रशस्ति उन्मेष ।

प्रसिद्ध विद्वान श्री यशपाल जैन ने इस ग्रन्थ के संबंध में लिख है कि

''पुस्तक में विविध विषयों की सुन्दर तथा उपयोगी सामग्री समाविष्ट हैं मित्र जी बुन्देलखण्ड के हैं और अपीन भूमि से डनहें बेहद प्यार है। वहां के साहित्य सेवियों के प्रति उनका अनन्य अनुराग है। स्व0 काली कवि, पृथ्वीनाथ रसनिधि, गंगाधर व्यास 'ह्रदेश', मुंशी अजमेरी, नाथूराम माहौर, घनश्याम दास पाण्डेय, घासीराम व्यास प्रभृति के साहित्य का उन्होंने जो विवेचन किया है वह जहां सामान्य पाठकों को प्रेरणाप्रद सिद्ध होगा वहीं शोधकर्ताओं को भी अनुप्रमाणित करेगा।''।[2]

---

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।
2. उदय और विकास – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।

श्री रामचरण हयारण मित्र की बुन्देली काव्य कृतियाँ एवं रचनायें-

लौलैयाँ- श्री मित्र जी की बुन्देली काव्य कृति है। इस कृति में बुन्देली बोली में बुन्देलखण्ड के गृह जीवन ग्रामीण जीवन, प्राचीन वीरता की परम्परा और आधुनिक राष्ट्रीयता का संदेश देने का सफल प्रयास श्री मित्र जी ने किया है।

बुन्देली साहित्य के मर्मज्ञ श्री त्यौहार श्री राजेन्द्र सिंह जी ने ''लौलेयाँ'' की भूमिका में लिखा है किः-

''जिन पाठकों की मातृभाषा बुन्देलखण्ड नहीं है, उनके लिए इस संग्रह में आए हुए- सौकाँरू , लौलैयाँ, गोसली, उरैयाँ और ढिकौला आदि शब्दों कुछ अनौखे लगेंगे किन्तु हम लोग जो नित्य ही इन शब्दों को सुनते बोलते हैं उनको इन शब्दो से विशेष आनन्द आवेगा। क्यों कि इनमें जो विशेष अर्थ मरा हुआ है वह अन्य शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। नित्य बोलचाल की भाषा में जो सरसता और मधुरता है। वह दूसरी भाषा में मिलना कठिन है।

''लौलेयाँ'' के प्रथम गीत में जिस प्रेमपूर्ण घरेलू वातावरण को प्रगट किया गया है वह खड़ी बोली में अनुवाद करने से बनावटी लगने लगेगाः-

बड़ी बहिन अपेन छोटे भाई को प्रेमपूर्ण शब्दों में जगा रही है। भाई को ''वीरन'' कहना लाड़ प्यार और गहरी आत्मीयता को इंगित करने वाला सम्बोधन है।

वीरन हो रओ भोर, दूद सीं डूबन लगीं तरैयाँ ।

बड़ी भुजाई ने बखरी कौ,

टाल टकोरा कर लऔ।

माते जू के बड़े कुआ कौ,

मींठौ पानी भर लऔ।

मुरगन ने दइ बांग, डरैंयन बोली श्याम चिरैयां।

वीरन ! हो रऔ भोर, दूद सीं डूबन लगीं तरैयाँ ।

''तरैयाँ'' अर्थात तारों की उपमा ''दूध'' से देने का प्रयोग अनुपम है। शुभ्रता को उभारने वाला है।

''लौलेयाँ'' के गीतों में ऋतुओं के सौन्दर्य की छटा भी देखने को मिलती है। शरदऋतु के सौन्दर्य को ''धुव गई नभ की सुरंग चुनरिया'' और श्रावण की घनघटा को ''सावन की जा झपक जुनैया'' कह कर मित्र जी ने नयी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यदि महाकवि कालीदास ''मेघों'' से ''दूत'' का काम लेते हैं– तो बुन्देली कवि श्री मित्र जी ''बदरवा'' से संदेश भिजवाते हैं:–

इतनी विरन सौ बदरवा जा कइयो,
बैना बिलखै बमूरा की छाँय ।
उजर गई निठुअई फुल बगिया,
कयारिन जमीं सनाँय ।
गुबरीला सुख भोगे भौंरा,
नीमन पै मड़राँय ।

बुन्देलखण्ड के समर विजेताओं का स्वागत करने के लिए उनकी साहसी पत्नी के ह्रदय में जो भावना उठती है, वह भी पति की वीरगति प्राप्त होने पर अपना बलिदान कर देने का उत्साह रखती हैं:–

जीत सन्न संग्राम परो घर,
रानी समर मंझार रे ।
तिलक करावन रानी विजय को,
आओ सीस दुआर रे ।
सुनके हुमक उठीं क्षत्राणी,
सज सोरड श्रंगार रे ।
करकें तिलक सीस धर ओली,

लओ निज सत्त समार रे ।

यह तो थी पति पत्नी के प्रेम की भावना। इनकी कविताओं में भाइ बहिन के प्रेम की उमंगे भी हैं। राखी का त्यौहार समीप है। भाई बहुत दूर है। उसे बहिन व्याकुल होकर संदेश भेजती हैं।

''वीरन तोरे बिन कोउ नैयाँ,

राखी को बंद वैया ।

एक दिना सावन को रै गऔं,

ल्यौ सुद मोरे भैया ।

''लौलेयां'' के संबंध में श्री मित्र जी का कहना है ''संसार में लौलेयां की बेला सभी को प्रिय लगती है। इसी समय में दूर दूर से पक्षी तथा पथिक गण विश्राम लेने अपने अपने निवास स्थान में आ जाते हैं। वास्तव में इस काल में ही जड़ चेतन सभी जीवों को विश्राम मिलता है। मेरा विश्वास लौलैयां के कुद क्षण बाद ही चन्द्रमा का उदय होगा जो कि अपनी सुधामयी किरणों द्वारा साहित्य प्रेमियों के ह्रदय को सिक्त करेगा।'' (1)

लोक-गायनी–

''लोकगायनी'' भी बुन्देली भाषा में रचित काव्य कृति है। कवि सम्मेलनों के मंच और आकाशवाणी के मंचों पर जिन गीतों को श्री मित्र जी गाते रहे हैं – उनमें से अधिंकाश गीत इस कृति में संकलित किये गये हैं।

'लोकगायनी' के बुन्देली गीत आधुनिक लोक साहित्य के नीवन अध्याय का श्री गणेश करते प्रतीत होते हैं। ग्रामीणों क्षेत्रों में नव उत्साह का संचार करते रहने के लिए यह आवश्यक भी था कि ग्रामवासियों को उनकी अपनी बोली में रोचक प्रेरक और उद्‌बोधक गीत रचे जाते । श्री मित्र जी ने ''लोकगायनी'' द्वारा इसी लोक दायित्व का निर्वाह किया है।

---

1. लौलैंयाँ – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।

लेद शैली में ''सोने के ककना'' गीत का भाव सौन्दर्य देखने ही बनता है:-

''हँस दैलय झंझर किबार

सजन! ककना बनवा देओ सौने के।

वारे देवरा ने दुलरी लै दई,

रूच गढ़ दई सुघर सुनार ।

ननदेउआ ने विछिया लै दये,

पग धरत होत झनकार ।

सजन । ककना बनवा देओ सौंने के ।

हंस दैलय झँझर किबार सजन ।

लोक गायनी के बुन्देली लोकगीत रीतकालीन काव्य के लक्षण युक्त एंव संगीत लय से युक्त हैं। ''बिन्तवारी'' गीत में गैलारे से आग्रह है कि आगे घना जंगल है। जंगली जानवरो का खतरा है। अतः सावधानी की बतौर आगे न जाकर रात्रि विश्राम यहीं कर लों।

गैलारे ! झपक आई साँज

अंगारू डॉग करौंदा की भारी

जाँ मे रउत दलांकत नार,

तुमकयन जी जाँगा हिम्मत हारी ।

चौंके चिरई न फरकत बार,

न फुटत तीर बिकट ऐसी झारी ।

तइपै आड़े परै पाहार,

कड़ी तिन फोर बेतवा मतवारी ।

डॉ0 रामकुमार वर्मा जी ने ''लोकगायनी'' की भूमिका में लिखा है – कि ''इधर इन्होंने (मित्र जी ने) 'लोकगायनी' के स्वरों में हमारे नैसर्गिक और लोक जीवन को अनेक लयों में गाने की सुरूचि प्रदर्शित की हैं वे (मित्रजी) बुन्देलखण्ड के निवासी हैं। अतः

बुन्देली बोली स्वभावतः उनके कण्ठ की निवासिनी है। जनपदीय भाषा में उन्होंने ह्रदय की गहराइयों में पहुंचकर लोक जीवन के सुन्दर चित्रों को उभारा है।[1]

श्री रामचरण हयारण मित्र जी ने 'लोकगायनी' के संबंध में स्वयं लिखा है कि–

''लोक साहित्य मानव जीवन का वह श्रोत है, जिसमें जन जीवन फलता फुलता ओर समुन्नत होला है। लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, हमारे नये जीवन का शास्त्र है, जिसका दर्शन हमको धरती पुत्रों (किसान) के लोकगीतों में होता है।

मैं ने अपनी लघु कल्पना शक्ति द्वारा इस जनपद की सेवा में जो बुन्देलीखण्डी गीत प्रस्तुत किये हैं, वह इसी द्रष्टि से किये हैं कि यहां के वर्तमान कवि तत्पर होकर इस भूमि का श्रंगार करने लिए आकर्षित हों, जिससे इस जनपदीय बोली का साहित्य भण्डार भरें।'' [2]

श्री रामचरण हयारण मित्र जी द्वारा लिखे गये विभिन्न लेखों का विवरण–

प्रकाशन का विवरण

1. हमारे एक अज्ञात कवि – 'मधुकर' टीकमगढ़ 1 अगस्त 1941 ।
2. स्व0 मुंशी अजमेरी जी और उनकी साहित्य साधना – विशाल भारत कलकत्ता जनवरी 1958 ।
3. स्व0 राजा पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' की काव्य साधना – विशाल भारत कलकत्ता मई 1958
4. बुन्देलखण्ड को नदियों की दैन – दैनिक जागरण झाँसी 1 फरवरी 1959 ।
5. बुन्देलखण्डी लोक गीतकार – दैनिक जागरण झाँसी 14 जून 1959 ।
6. स्व0 नाथूराम माहौर के काव्य में राष्ट्रीयता की झलक – दैनिक जागरण झाँसी 25 अगस्त 1959 ।
7. आचार्य स्वर्गीय पं0 घनश्यामदास पाण्डेय – बुन्देखण्ड शोध संस्थन झांसी ।

---

1. 'लोकगायनी' – की भूमिका से ।
2. लोक गायनी – की रामचरण हयारण 'मित्र' (निवेदन से)

8. स्व0 श्री माहौर की ब्रजसाहित्य साधना – विशाल भारत कलकत्ता सितम्बर 1959 ।

9. श्री नरोत्तमदास पाण्डेय, मधु की काव्य साधना – दैनिक भास्कर झांसी 26 जनवरी 1960 ।

10. सामाजिक बसंत उत्सव – विशाल भारत कलकत्ता – फरवीर 1960 ।

11. बुन्देलखण्ड के जनकवि स्व0 श्री गंगाप्रसाद सुनार – दैनिक जागरण झांसी 19 जून 1960 ।

12. स्व0 श्री कवि बचनेश और उनकी काव्य साधना – विशाल भारत – कलकत्ता अगस्त 1960 ।

13. स्वर्गीय 'ह्रदयेश जी'' का वर्षा वर्णन – स्वतंत्र भारत – लखनऊ 4 सितम्बर 1960 ।

14. उन्हें फिर मैं कोई कविता न सुना सका – अमर शहीद गणेश शंकर विघार्थी अंक नूतन प्रकाशन मंदिर ग्वालियर अक्टूबर 1961 ।

15. रससिद्ध कवि ''कालीकवि'' की काव्य प्रतिभा – साप्ताहिक हिन्दुस्तान नई दिल्ली जून 1962 ।

16. स्व0 घासीराम व्यास का ब्रज साहित्य – कल्याण गोरखपुर जुलाई 1963 ।

17. बुन्देलखण्ड के वीर सपूत क्रान्तिकारी पं0 परमानन्द – अभिनन्दन ग्रन्थ मथुरा ।

18. प्ररेणा के श्रोत – राष्ट्रकवि गुप्त – दैनिक जागरण झाँसी 1967 ।

19. स्व0 श्री भगवान दास 'दास' – दैनिक जागरण झाँसी 1968 ।

20. स्व0 पं0 सत्यनारायण शर्मा 'कविरत्न' – कविरत्न सत्यनारायण स्मृति ग्रन्थ – आगरा

21. झांसी की लक्ष्मीबाई – विश्वमित्र कलकत्ता 15 अगस्त 1969 ।

22. चित्रकार कालीचरण वर्मा (जर्मनी से प्रकाशन स्वदेश में अज्ञात) – नवभारत टाइम्स नईदिल्ली 2 अगस्त 1970 ।

23. बुन्देलखण्ड का शाश्वत भूभाग – दैनिक मध्य देश दीपावली 1972 ।

24. वीर नौने अर्जुनसिंह प्रमार – मध्यप्रदेश संदेश, ग्वालियर अक्टूबर 1972 ।

25. शहीद राव महीपक्षसिंह पँवार – समता भारती 15 अगस्त 1973 ।
26. बुन्देला वीर परीछत – बुन्देलखण्ड शोध संस्थान – झाँसी ।
27. लोक ज्योतिष – आशा लोक शास्त्र अंक के0एल0 जैन इण्टर कालेज सासनी ।
28. डा0 भगवान दास माहौर का राष्ट्रीय साहित्य को योगदान – बुन्देलखण्ड शोध संस्थान झाँसी ।
29. गीता की विश्व को देन – दैनिक जागरण झाँसी – अक्टूबर 1970 ।
30. स्वर्गीय श्री गंगाधर व्यास– दैनिक जागरण झाँसी ।
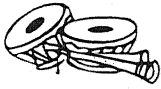
अध्याय - पंचम्

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी की काव्य साधना का साहित्यिक अध्ययन

* अनुभूति-पक्ष

- बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक सुषमा
- पर्वत
- नदियाँ
- ऋतुऐं
- भक्ति भावना और दर्शन
- राष्ट्रीय चेतना के स्वर

* अभिव्यक्ति-पक्ष

- खड़ी-बोली
- ब्रजभाषा
- बुन्देलीभाषा
- कहावतों और मुहावरों का प्रयोग
- छंद और अलंकार योजना
- गीतशैली
- बुन्देली चौकड़ियाँ

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी की काव्य साधना का साहित्यिक अध्ययन-

कविता विचार है या शैली , भाव है या ढंग इस विषय की विचिकित्सा बहुत पुरानी है। साहित्य की उंचाई तो भावों और विचारों से मापी जा सकती है किन्तु वह साहित्य है या नहीं इसकी परख कला की कसौटी पर ही की जा सकती है जब हमें कोई अच्छी कविता आनन्द विभोर करती है तब यह कह पाना कठिन होता है कि कविता का इतना प्रतिशत आनन्द उसके भावों से मिल रहा है और इतना प्रतिशत शैली से। साहित्य के कारखाने में अब तक वह आरी नहीं बनी है जिससे कविता का भावपक्ष उसके शैलीपक्ष से चीर कर अलग किया जा सके। जैसे अर्थ शब्दों के साथ लिपटे होते हैं, वैसे ही भाव भी शैली में समाया रहता है। [1]

कविता व्यक्ति और युग दोनों की ही चेतना का प्रस्वेद होती है। जैसी लकड़ी वैसी गंध जैसा भोजन वैसा विचार यह उक्ति बहुत दूर तक कविता पर भी चरितार्थ होती है। प्रत्येक युग अपनी चेतना और भावुकता के अनुरूप कुछ खास किस्म के कवियों को उत्पन्न करता है और प्रत्येक कवि अन्ततोगत्वा, किसी न किसी यात्रा में उन बन्धनों को स्वीकार करता है जो उसके युग के स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। कविता आनन्द, संस्कार शिक्षा और प्रेरणा देने को तत्पर दिखती है भले ही उसका घोषित लक्ष्य वह न हो । [2]
जिस प्रकार व्यक्ति विशेष के हृदय में चलने वाले द्वन्द्व अपनी अभिव्यक्ति के लिए शैली विशेष को जन्म देते हैं उसी प्रकार युगविशेष की बेचैनी भी विशेष प्रकार की शैली में प्रकट हुआ करती है। [3]

---

1. काव्य की भूमिका -रामधारी सिंह 'दिनकर'– पृ0 105 ।
2. काव्य की भूमिका -रामधारी सिंह 'दिनकर'– पृ0 69 ।
3. मिट्टी की ओर – रामधारी सिंह 'दिनकर' पृ0 49 ।

अनुभूति- पक्ष-

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के व्यक्तित्व में समायी चेतना में बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक सुषमा बुन्देली संस्कृति का लालित्य, राष्ट्रीय जागरण की ऊष्मा और बुन्देली काव्य धरोधर की खुशबू का खासा प्रभाव है। श्री मित्र जी की काव्यसाधना कभी बुन्देली लोक कवि ''ईसुरी'' के काव्य मंदिर की पूजा करती दिखती है, कभी श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'राष्ट्रीय आत्मा' और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्य परम्परा का मंत्र पढ़ती दिखती है, और कभी बुन्देली संस्कृति और साहित्य को आलोकित करती हुई श्री बनारसी दास चतुर्वेदी की कुटिया में माला जपती प्रतीत होती है। नव जागरण का प्रकाश मित्र जी की काव्य साधना का आभा प्रदान करता है। श्री मित्र जी की काव्यसाधना के चाहे जितने रूप हों पर इनता निश्चित है कि उनकी आरती की ज्योति में प्रकाश बुन्देलखण्ड की महिमा का ही है।

श्री मित्र जी की काव्यसाधना का साहित्यिक अध्ययन इसी दृष्टि कोण से करना होगा। एतद मित्र की काव्यानुभूति और काव्याभिव्यक्ति को परखना होगा।

सहजता से समझा जाए तो काव्य में अनुभूति आत्मा रूप में और अभिव्यक्ति शरीर रूपा है। इद्रियों की संवेदनाओं से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को ह्रदय जैसे ग्रहण करता है वही ह्रदय की अनुभूति कहलाने लगती है पर नाना अनुभूतियों और मानसिक दशाओं का समन्वित रूप भाव कहलाने लगता है। मित्रजी की काव्य रचनाओं में भाव व्यंजनाओं का अनौखापन आकर्षित करता है।

श्री मित्र जी के काव्य में बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक- सुषमा-

श्री रामचरण हयारण मित्र जी की आत्मा बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य से सर्वाधि क आनन्दित होती है। मित्र जी ने बुन्देलखण्ड के पर्वतों, नदियों, नगरों और वनसम्पदा का वर्णन बड़े चाव से किया है। 'मित्र' जी अपना परिचय ठेठ बुन्देलखण्डी के रूप में ही देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है बुन्देलखण्ड मित्र जी की न केवल काव्य साधना में समाया है वरन् मित्र

जी की आत्मचेतना भी बुन्देलखण्ड की आभा से आलोकित होती है–

''बुन्देलखण्ड प्रशस्ति'' कविता में यही काव्य अनुभूति प्रगट हो रही है:–

''मैं शौर्य प्रदत्त बुन्देलखण्ड का रहने वाला,

गर्ज तर्ज कर जहां वारिधर वर्षा करते ।

मित्र जी यह कहते हुए गौरव से भर जाते है कि मैं उस बुन्देलखण्ड का रहने वाला हूं जहाँ प्रकृति की न्यारी छटा फैली हुई है।

मैं सौरभ प्रिय बुन्देलखण्ड का रहने वाला

जहां स्वभाविक प्रकृति नदी करती है नरतन

पर्वत

मित्र जी बुन्देलखण्उ के पर्वतो को अत्याधिक सम्मान के साथ स्मरण करते हैं:–

चित्रकूट, सतपुड़ा, स्वर्णगिरी औं विन्ध्याचल ।

देते नव संदेश सौम्यता का प्रति पल पल ।

जिससे होते परम प्रवाहित निर्मल निर्झर ।

जिनका जल पीकर स्वच्छन्द विचरते वनचर ।

नदियाँ

यदि बुन्देलखण्ड के शिखर मित्र को सिर ऊँचा रखने की प्रेरणा देते है तो यहाँ की सरिताओं की जल धारा उनके ह्रदय को सरसता और तरलता प्रदान करती हैं।

उर्मिल, धसान, सिन्ध, चम्बल, पहूज, सौन

साहजाद, चन्द्राकल, भानुजा, घुरारी है।

बुंदनै, बबेड़ी पतरई, डुमरई, टोंस,

असनई, कनेरा, सातार, केन, क्वांरी है।

मौअर, लखैरी, अनगौरी, जमडार छैव,

जामनें, तिलाई, बीना, बेत, अमरारी है।

पारवती, ब्रह्मा, नर्मदा हे बेतवती 'मित्र'

विमल बुन्देलखण्ड की ये छटा प्यारी है।

इस छंद में बुन्देलखण्ड की अधिकांश नदियों को मित्रजी ने प्रणाम किया है।

ऋतुओं का वर्णन–

'श्री मित्र जी ने अपने काव्य का माधुर्य ऋतुओं की शोभा से सृजित किया है। वर्षा, शरद, बसंत, शिशिर, हेमन्त, और ग्रीष्म ऋतुऐं बुन्देलखण्ड की गोद में मोद के साथ खेला करती है। वर्षा ऋतु का आगमन ऐसा लग रहा है जैसा अम्बर और धरा की गांठ जोड़ने के लिए वर्षा की धारें उपस्थित हो गयी और अम्बर–धारा के इस पाणिग्रहण संस्कार में बरातियों की तरह बादल घिर आए

केकी कलकंण्ठी कोकिलान की कलापैं परीं,
दाहुर दरायैं परी पातें बगुलान कीं ।
'मित्र' माननींन की गुमान गढ़ ढाहिबे कौं,
रटन लतान में परी है चातकान कीं ।
चित चकचौंध कौंध बीजुरी वियोगिन कीं,
सुरत करावत पियान पतियान की ।
धारन तें अम्बर धरा की गांठ जीरबे कौं,
घेरि घेरि आई हैं बरातें बदरान की ।

''शरद'' ऋतु बुन्देलखण्ड में क्या आतीं है मनो चारों और संगीत की स्वर लहरियों नये नये गान गाने लगतीं हैं। झरनों का बाँसुरी बजाना और विहंगवृस्दों का मुदित होकर गान गाना हृदय में कोमल और मृदुल भावों को भर देता है।

''विन्ध्य श्रंग के निर्झर झर बांसुरी बजावै,
ध्वनि सुन बन विहंग पुलकित हो मृदुस्वर गावै।
कहूँ तरंगे फैन रूप चन्दन बन जावैं,
कहूँ झुक झुककैं और सुद्रश प्रिय रूप दिखावैं।''

श्री 'मित्र' जी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर–

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी उस युग में कविता कर रहे थे जब कवियों को केवल प्राकृतिक सुन्दरता ही मोहित नहीं करती थी, उन्हें मनुष्य को भी सुन्दर देखने की चाह अन्दर से प्रेरित करती थी। महान कवि श्री दिनकर जी ने इसी समय कहा था कि–

''देशमाता का शस्य श्यामल अंचल सिर्फ इसलिए सुन्दर नहीं लगा चूंकि उसमें प्राकृतिम सुषमा निखर रही है, वरन इसलिए भी कि उसके साथ भारतीय किसानों का श्रम, उनकी आशा और अभिलाषाऐं लिपटी हुई हैं।''

जिसने अधिक से अधिक आघात सहे हैं, जीवन के घमासान में अधिक से अधिक अनुभूतियों प्राप्त की हैं, अपने को अधिक से अधिक समीप से पहचाना है वह अधिक से अधिक बलवान कवि है और सच पूछिये तो उस मात्रा तक कवि है जिस मात्रा तक जीवन ने उसे अपना रूप दिखाया है। उसके लिए कविता केवल जीवन की समीक्षा ही नहीं है, प्रत्युत गम्भीर अनुभूतियों के प्रभाव से वह संसार के अर्थों की टीका, जिन्दगी की उलझनों की तस्वीर और उसकी समाचाओं का हल भी बन जाती हैं। सच्चा काव्य जाग्रत पौरूष का निनाद है।''[1]

श्री मित्र जी का काव्य इसी अर्थ में जाग्रत पौरूष का निनाद कर रहा है। इनके काव्य में अपनी मिट्टी की पीड़ा है और अपने समाज के विकास की अभिलाषा भी है। ऐसा ही काव्य राष्ट्रीय चेतना का काव्य कहा जाता है और ऐसे कवि को राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़ा कवि माना जाता है। इसी भाव दशा से भर कर मित्र जी कविगणों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

''जननी का तुम्हें वरदान मिला कवि,
राह, कुपंथ की जाना नहीं।
रखना सदा 'मित्र' औ शत्रु का ध्यान,

---

1. मिट्टी की ओर – श्री रामधारी सिंह दिनकर पृ0 37 ।

कृतघनियों के गुन गाना नहीं ।

शुचि शारदा के तुम सेवक हो,

रमा के वन–बाहन जाना नहीं।

खल कायर क्रूर कपूतन को,

कविता कभी भूल सुनाना नहीं।

'चेतना गीत' में श्री मित्र जी खुलकर कहते हैं कि सावन में चाहे जितनी सुखद वर्षा हो और मयूर झूम झूम कर वन में नाचतें रहें पर दुष्टों द्वारा आम जनता का उपकार सम्भव नहीं है– उसके लिये तो निर्मल मन से समाज सेवा करनी होगी।

''किसी तरह भी दुर्जन जन से जन उपकार नहीं होने का।

साबन जलद सजल नभ छाकर,

झूम झूम कर वर्षा करते ।

हरित भूमि करके मयूर का

दुखित ह्रदय सुख से हैं भरते

पर इससे तपसी चातक का कुछ आधार नहीं होने का किसी तरह भी दुर्जन जन से जन उपकार नहीं होन का।'' किसानों की पीड़ा से ''मित्रजी'' दुःखी होते है किसानों की दुर्दशा से मित्र जी की सम्बेदना द्रवित होने लगती है।

''मेंड पर मुरझा गई हैं सेंम की सब सहम फलियां,

पंख फैलाये पड़ी खलिहान में हैं विहंग बलियां।

कामधेनु रंभा रहीं है दाबती मुख में नहीं तृण,

कर रही है कृषक कुटिया आज कैसा करूण क्रन्दन ।

'पन्द्रह अगस्त' कविता में मित्र जी ने देश की जनता का आहवन किया है कि अब हमें एकता बनाये रखकर अपनी आजादी की रक्षा करनी होगी।

''जौ पन्द्रा अगसत कौ दिन सांचउ सौने को भैया ।

जौई जन्नी। के पांवन की बेड़ी को कटवैया।

बिन्ती इतनी मित्र मित्र को सुन लइओ चिन्त धरकैं

जा स्वतंत्र भारत की रच्छया करियो सब जुर मिलकैं।

मित्र जी की काव्य साधना में राष्ट्रीय चेतना के श्रेसु स्वर हैं। मजदूर किसानों के शोषण के प्रति यदि वे जाग्रत हैं तो अपनी आजादी रक्षा के प्रति पूरी तरह सावधान भी हैं। वे सुविध ा भोगी पूंजीपतियों के विरूद्ध काव्य का बिगुल बजाते है और समाज की विषमता को दूर करने के लिए समाज और शासन को प्रेरित करते हैं।

भक्ति-भावना और दर्शन-

श्री मित्र जी के हृदय में अध्यात्मक और दर्शन का दिव्य आलोक प्रकाशित होता है। मित्र जी व्यक्तिगत जीवन में भी प्रतिदिन पूजा पाठ करने के प्रति निष्ठावान रहे। उनके इस मित्र जी व्यक्तिगत जीवन में भी प्रतिदिन पूजा पाठ करने के प्रति निष्ठावान रहे उनके इस स्वभाव और जवींनदर्शन का प्रभाव उनके काव्य पर भी पड़ा है। मित्र जी भक्तिभावना और दर्शन प्रधान कविताओं का संकलन ''साधन'' काव्य कृति में हुआ है। ''साधना'' में संकलित कविताओं के अलावा भी उन्होंने भक्ति भाव से भरी अन्य कविताऐं भी रची हैं। शारदा की ''वंदना'' में कविवर श्री मित्र जी सामान्य कवियों की तरह केवल कविता का वरदान नहीं मांगते मित्र जी की कामना है कि हे ! शारदे माँ आपकी सच्ची कृपा हो जाए तो संसार की दरिद्रता भी समाप्त हो सकती है।

''शरदे तिहारी कृपा कोर कौ सहारौ पाय,

भव, भव सिन्धु कौ दरिद्र दरिवो करैं।

मित्र जी भक्ति केवल आत्ममुक्ति के लिए नहीं करते। वे तो मृतक जीवन में भी प्राण भर देने की प्रार्थना करते हैं, अपने प्रभु से। ''श्रद्धा के फूल'' कविता में वे कहते हैं:-

''काम के आसक्त होकर कामनाओं को जगाया, श्वानवत मृत अस्थिर हो सार जवींन का बिताया। मृतक जीवन में प्रभो! मैं प्राण लाना चाहता हूँ, देव मै दो फूल श्रद्धा के चढ़ाना चहाता हूँ।'' मित्र जी की आस्था रूढ़िवादी या अंधविश्वासी नहीं है। वह ऐसे किसी देवता को और ऐसी किसी भक्ति को सार्थक नहीं मानते जो मनुष्य का उद्धार न करे सके। ''पतित पावन'' कविता में इन्हीं भावों को प्रगट किया गया है।

विश्व मोहन कर दिखा दे, उसे मनमोहन कहूँगा,

जो पतित पावन बना दे, उसे मैं भगवन् कहूँगा।

'' राष्ट्र के सुरभित सुमन,

मतभेद में बिखरे पड़े हैं ।

ऐक्यता का पंथ त्याग,

कुपंथ में आकर अड़े हैं ।

जो सुपथ अनुराग भरदे, उसे मधगुंजन कहूँगा,

जो पतित पावन बना दे, उसे मैं भगवन् कहूँगा।

भक्ति और अध्यात्मिक दर्शन की सार्थकता कब होगी इस चेतना को जागते हुए मित्र जी 'साधना' कविता में यह भाव प्रगट करते है कि 'सत्य' को स्वीकार करना और सत्य को ही प्रकाशित करना एक भक्त की सच्ची साधना हो सकती है।

''भावना भक्त की सत्य हो 'मित्र'

मिलैं फिर क्यों भगवान नहीं हैं।

मतभेद की मादकता में फसी,

जब भावुकता अकुलाने लगी ।

ममता जब 'मित्र' भगी जगकी,

समदर्शिता के गुण गाने लगी।

खुल द्वार गया मन मंदिर का,

मुरली स्वर की ध्वनि आने लगी।

मन मोहिनी मूरति माघव की,

मधु घोलती सी मुसकाने लगी। [1]

---

1. ''साधना'' श्री रामचरण हयारण 'मित्र'।

श्री रामचरण हयारण मित्र के काव्य का अभिव्यक्ति-पक्ष-

अच्छे कवि के पास अनुभूति की सच्चाई भी होनी चाहिए और अभिव्यक्ति की सजावट भी। कविता की नवीनतम धारा में सजावट का महत्व भले ही कम हो गया हो लेकिन उसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। अनुभूति की सच्चाई अभिव्यक्ति की सफलता तथा चित्रों की सुष्पस्टता ये कुछ गुण है जो कविता या काव्य के प्रभाव और में वृद्धि करते हैं। दार्शनिक या विचारक जिस ज्ञान को सूचना के भंडार में जमा करते दते हैं कवि उसी ज्ञान चेतना और भावना के चित्र बनाकर लोगों की आंखो के आगे तैरा देता है। चित्र बनाने का कौशल ही अभिव्यक्ति पक्ष की सफलता बन जाती है। [1]

इस विवेचना के पूर्व में यह स्पष्ट कर चुंकी हूँ कि श्री मित्र जी में अनुभूति की व्यापक गहराई है। काव्य में अभिव्यक्ति कौशल से आशय उस शिल्प योजना से होता है जो कवि की अनुभूति को व्यक्त करने में सहयोगी बनता है। इसमें भाषा छंद, अलंकार और प्रतीक आदि का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय माना गया है।

मानव जीवन को व्यापक आरै सर्वोत्तम बनाने में भाषा की भूमि सर्वाधिक विशिष्ट है। काव्य में तो शब्द गौरव और अर्थ वैभव की ही महिमा है। आचार्य भामह का यह कथन कि शब्द और अर्थ मिलकर काव्य होता है और दंडी जी का यह विचार कि इष्ट अर्थ से विभूषित शब्द समूह ही काव्य शरीर है– काव्य सृजन में भाषा के महत्व को रेखांकित करता है। [2]

श्री मित्र जी के काव्य की भाषा में खड़ी बोली, बृज और बुन्देली की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। मित्र जी काव्य अनुभूति ने अनुरूप काव्य की अभिव्यक्ति को सहज बनाने के लिए भाषा का प्रयोग उदारता से किया है। वे न तो खड़ीबोली के लिए आग्रह से भरे है न ब्रज के ही पीछे पड़े रहते हैं और न ही ''बुन्देली'' के प्रति जिद्दी हैं।

---

1. काव्य की भूमिका – श्री रामधारी सिंह दिनकर 9 ।
2. साहित्यिक निबंध – गणपतिचन्द्र गुप्त ।

खड़ी - बोली–

श्री मित्र जी जिस युग में कविता करते रहे उसमें बस्तुतः खड़ी बोली का ही बोलबाला रहा है और आज भी हैं। मित्र जी के काव्य में खड़ीबोली का प्रयोग पूर्ण कुशलता के साथ हुआ है। खड़ीबोली अपने प्रौढ़ और परिष्कृत रूप में मित्र जी के काव्य में प्रयुक्त हुई है। राष्ट्रीय चेतना वाली कविताओं में खड़ी बोली का प्रयोग वे अधिक करते हैं मित्र जी की खड़ी बोली राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की खड़ीबोली से ही प्रेरणा ग्रहण करती प्रतीत होती है। भारत का सोया भाग्य जिस बलिदान के बाद जागा है, इस संदेश को जन जन तक पहुंचाने के लिए मित्र जी जिस खड़ी बोली का प्रयोग करते है वह श्री माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता में पहले से ही सम्मान पा चुकी थी। इस प्रकार मित्र जी खड़ीबोली में युगीन परम्परा के अनुरूप ही अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं:–

सुखद स्वतंत्रता का बोया सुकदेव बीज,

शोणित से सींच स्वत्व पत्र लहरा गये ।

'राजगुरू' कीनी गुरूता में देख रेख दिव्य,

ज्ञान मार मार के कबूतर उड़ा गये ।

देकरप्रकाश 'चन्द्रशेखर' प्रभाव पूर्ण ।

भारतीय कुमुद कलीन कौं खिला गये ।

भक्तसिंह शीश फूल बेदी पै चढ़ा के शुचि ।

सोये हुये भारत के भाग्य को जगा गये ।

देश के आम आदमी को उद्बोधित तथा प्ररेणा देने के लिए जिस आम बोलचाल की भाषा की आवयकता होती है मित्र जी खड़ीबोली के ऐसे ही सहज सरल शब्दों को अर्थो की गहराई प्रदान करते हैं।

'' सुमन तो सर्वदा से कंटको के,

बीच पलते हैं।

त्याग चम्पक सदा मधुकर,

कमल पर ही मचलते हैं ।

'मित्र' यह सब हमारे पूर्व का

इतिहास कहता है।

कि हीरे वारि निधि से नहीं,

मिट्टी से निकलते हैं ।

एक ओर खड़ीबोली की यह सरलता है दूसरी और भक्ति और अध्यात्म की कविता में मित्र जी तत्सम शब्दों का प्रयोग करने से भी हिचकिचाते नहीं हैं।

अगम अगोचर - अजेय अज, अविनासी ।

अखिलेश ब्रह्म प्रर्ण विव का विधाता है।,,

श्री मित्र जी ने विषय और भाव के अनुरूप खड़ीबोली का सरल, माधुर्य और ओजगुणों का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

ब्रजभाषा–

श्री मित्र जी की काव्यचेतना एक ओर नव जागरण से प्रभावित रही तो दूसरी ओर उनकी बांकी दृष्टि रीतिकाल के सौन्दर्य को भी देखती रही है। यही कारण कि रीतिकालीन काव्यभाषा अर्थात् ब्रजभाषा का प्रयोग भी मित्र अपने काव्य में बड़ी कुशलता के साथ करते हैं। जब जब कवि का हृदय ''नायिका'' की ओर झुका है और उन्होने 'ब्रजांगना हास विलास' 'उद्धवसंवाद', 'ब्रजांगनाओ के विचार' नामक कविताओं का सृजन किया हैं श्रृंगार काव्य अभिव्यंजना के लिए 'मित्र' जी ''ब्रजभाषा'' को चुनते हैं। ब्रजभाषा को माधुर्य मित्र जी की काव्यानुभूतियों को सरस बना देता है।

''ब्रजांगना हास विलास'' कविता में ब्रजभाषा का माधुर्य दृष्टव्यः–

केसें कदम तर जाउँ खिलन भैया

मोय कन्हैया खिजावै ।

हरें हरें हरें हैरत में ,

सैनंन मायँ बुलाबें ।

जाऊँ निकट सोइ मुर मुस्काउत,

कुंजन मायँ बिलावै ।

मोसों कय मैं निपट गवांरिन,

राधै सुगर बताबै ।

दोऊ पाँवन घुँघरू पैराबे,

झूमर नाच नचावै ।

ब्रजभाषा की इन पक्तियों में शब्द सौष्ठव तो दर्शनीय है ही शब्द ध्वनियाँ लायबद्ध संगीत पैदा करने में भी सफल हैं।

गोपियाँ कन्हैया के बिना कैसे में दिन बिता रहीं हैं, इस भाव दशा को सूरदास से लेकर प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में अपने अपने ढंग से वर्णित किया है। आधुनिक काल के ब्रजभाषा के समर्थ कवि श्री रत्नाकर के उद्धवशतक की उंचाई के सामने भी श्री रामचरण हयारण मित्र जी उद्धव सम्वाद में अपनी भावुकता को प्रगट करने का साहस रखते हैं कवि के आत्म विश्वास काव्य कौशल को ये पक्तियाँ प्रगट करतीं हैः–

ब्रज की लखि कैं दसा साँची कहौ–

सखा, भूल गई गुन ज्ञान की सेखी ।

तनकी तनिकौ सुधि नाहिं रही

जबै खीन कलिन्दजा धार कौं देखी ।

कहिये कहा ''मित्र'' कदम्बर की,

विथा गोपिन की कथा जात न लेखी ।

जिन नैंनन माहि बसंत रम्यौ,

तिन नैंनन में बरसात बिसेखी ।

श्री मित्र की ब्रजभाषा में माखन के समान कोमलता और मिश्री के समान मिठास विद्यमान है।

बुन्देली - भाषा--

श्री मित्र जी बुन्देली भाषा के सहज और स्वाभाविक कवि हैं। खड़ी बोली और ब्रज भाषा का प्रयोग मित्र जी का बृद्धिकौशल और काव्य प्रवीणा है किन्तु बुन्देलीभाषा उनके जीवन उनके व्यवहार और उनके संस्कार की भाषा है। बुन्देली भाषा को जब मित्र जी अपने काव्य सृजन की भाषा बनाते हैं तो उनक समक्ष बुन्देली के लोक कवि ''ईसुरी'' का आदर्श सामने रहता है। ''लौलैंयाँ'' और ''लोकगायनी'' की सारी कविताओं में ''बुन्देली'' की रसधारा बहती हैं। मित्र जी की बुन्देली भाषा में माधुर्य,प्रसाद तथा ओजगुण सजीव हो उठते हैं।

''गजमोतिनरानी'' कविता में बुन्देली का ओजपूर्ण रूप देखियेः--

इतने में ऊनय पूरब दल बादर,

घूमत देखे निसानरें,

झूमत देखे रानी गज मतवारे,

तमकत तीर कमानरे ।

हिनकत देखे सबज रंग घुरवा,

तिनपै महुबिया जवान रे ।

प्रान जाँय पै जान न देबैं,

जे पुरखन की आन रे ।

बुन्देली का सच्चा माधुर्य उसके लोक गीतों में समाया होता है। श्री मित्र जी की ''लोकगायनी'' में उनके द्वारा रचित लोकगीतों को संकलित किया गया है।

''बुन्देलन्खण्डी गारी'' में बुन्देलीभाषा की मिठास का स्वाद अलग ही है। इस स्वाद से ने केवल काव्य रस में वृद्धि होती है वरन भाषा सौन्दर्य का भी आनन्द आता है।

नैवरैं नेवरे चले आओ बारे समदी,
जोरा तगोंरीं को व्याओ, मोरेलाल।

हड़वारौ को भरौ धरौ जल,
पौड़ो पांव धुआओ मोरेलाल ।

चौमहला पै डारौ डेरा
धरियक जिया जुड़ाव मोरेलाल ।

बरम संकरी बनीं मिठाई
खाऔ और खुआओ, मोरेलाल ।

श्री मित्र जी की बुन्देल रचनाओं में न केवल लोकजीवन और राग-विराग के गीत हैं वरन् मित्र जी ने बुन्देली भाषा में बहुत ही प्रभावी शैली में राष्ट्रीय सरोकारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। ''चींन और पाक'' ने भारत को सीमाओं पर घेर रखा है। भारत की उदार दृष्टि और पाकिस्तान के स्वार्थी मन की कैसी स्वाभाविक भावदशा का वर्णन बुन्देली भाषा की सबलता को दर्शा रहा हैं:-

गांधी जी ने जइके लानें छाती सिला धरींती ।
भूम बांट दो भाग करी न मन में आह भरींती ।
जी के रच्छा खों अपनी छाती में गोली खाई ।
बई पाक ने मित्र संग में जा करतूत दिखाई ।

कहावतों और मुहावरों का प्रयोग-

श्री मित्र जी ने अपनी भाषा के काव्य सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए और अभिव्यक्ति को सुगम और सुबोध बनाने की दृष्टि से सहज और लोक प्रचलित कहावतों और मुहावरों का

प्रयोग किया है। इससे उनके काव्य चित्रों की अर्थ व्यंजना में वृद्धि हुई है। मित्रजी की खास बात यह है कि वे काव्य चमत्कार के लिए भाषा को नहीं सजाते हैं वरन् उनकी काव्य अनुभूतियों के अनुरूप उनका शब्द सामर्थ्य स्वतः प्रगट हो जाता है।

''हम तुम एक घाट के पानी'', ''अबै तलक कुठिया में गुर फोरत रइ काऊ न जानी'' ''उजर गई निठुअई फुलबर्गिया''

''जिसने मरना सीखा है, उसने सदा अमरता पाई''

''जो जुग सूदे पन को नैया'' ''जो गजरत बे बरसत नैया''

आदि मुहावरों और कहावतों का प्रयोग 'मित्र' जी की काव्य अभिव्यक्तियों को बेजोड़ बना देता है।

कहा जा सकता है कि मित्र जी खड़ी बोली ब्रजभाशा और बुन्देली भाषा के मर्मज्ञ थे। उनके 'कवि' ने विषय भाव, विचार और हेतु के अनुरूप भाषा का प्रयोग कर लिया है। 'मित्र' जी ने अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति पर ध्यान दिया है। इस कार्य सिद्धि में जब जिस भाषा से सहयोग लेने की आवश्यकता हुई 'मित्र' जी ने एतद् भाषा संकोच नहीं रखा है।

छंद और अलंकार-योजना-

श्री मित्र जी प्राचीन परम्परा और नवीन काव्य चेतना के समन्वित कवि हैं प्राचीन परम्परा जब उनके काव्य को प्रभवित करती है तो सवैया, कवित्त घनाक्षरी, दोहा जैसे छंदों में अपनी काव्य अभिव्यक्ति करते है और जब आधुनिक काव्य धारा उनके हृदय में हिलोरे लेती है तो नवीन गीत शैली और निराला शैली के छंदों में काव्य अभिव्यक्ति करने लगते हैं। बुन्देली-काव्य का सृजन करते समय श्री मित्र जी को लेद, लावनी, फाग और चौकड़िया गायकी का ध्यान रहता है। अतः कहा जा सकता है कि मित्र जी की छंद योजना विविधता लिए हुए है।

''कवित्त''

सदन सिधाई बाल प्रथम समागम कौ,

सबल अनंग राज अंगन में कीने रीं ।

चपल तुरंग नैन रूकन न रोके मित्र

अरून कपोल जलजात छवि छीने रीं ।

प्रीतम अजान जान चतुर गुगागरी ने,

कुचन दुराय क उपाय कर तीने रीं ।

अधिक अमान कामदेव को निकेत जान,

कर कर कंचुकी में बस ल ने रीं।

यति व गति की संगत की कुशल उक्तियाँ मित्र जी के छंद कौशल को प्रगट करतीं हैं।

''गीत-शैली''–

का एक उदाहरण देखिये:–

भारत वीरो! तुम्हें हिन्द के कण कण की सौगन्ध।

देश के श्रम कण कीं सोगन्ध ।

राष्ट्र के रजकण की सौगन्ध ।

जागो जगकर मातृभूमि चरणों मे शीश झुकाओ।

ऐक्य भाव से राष्ट्र ध्वजा को गणन बीच फहराओ।

देश सुरक्षा का व्रत अपना सब मिलकर दुहराओ।

भूल न जाना कहीं, तुम्हें है जन जन की सौगन्ध।

बुन्देली-चौकड़ियां–

छंद का उदाहरण –

चौंकी धना कुम कुम घलतन । ज्यों बिजुरी की चमकन ।

भौयें दोउ धनुआं सी तन मई,लागी कर हा लचकन ।

नैंनन गत कैबे की नैंया । लख मींनन भई अड़चन ।

'मित्र' देख छव कमल बदन की लगौ मदन मन ललचन ।

अलंकार- योजना–

श्री 'मित्र' जी लोकसंस्कृति और राष्ट्री चेतना के मुखर कवि हैं|उनका काव्य हेतु अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति का कौशल प्रदर्शन . है। मित्र जी अपने काव्य में अलंकार योजना आग्रह पूर्वक नहीं करते। सूर और घनानन्द की तरह अलंकार 'मित्र' जी के काव्य में स्वयं उपस्थित हो गये हैं। आचार्य केशवदास के तरह मित्र जी अलंकारो की झड़ी लगाने विश्वास नहीं रखते। अलंकारों की प्राचीन एवं नवीन परम्परा दोनों 'मित्र' जी को स्वीकार हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विशेषोक्ति जैसे अलंकार परम्परा का निर्वाह और आधुनिक काव्य के विशेष प्रिय अलंकार मानवीकरण का भी प्रयोग मित्र जी पूर्ण सहजता के साथ करते हैं।

''वीरन हो रओ भोर दूद सी डूबन लगीं तरैयां, में उपमा अलंकार विराजमान है तो करूण कहानी करूणेश के पड़ी है कान'' में अनुप्रास शोभनीय है। छायावादी कवियों की तर्ज पर ''प्राची नवल दुलइया के नइं खुले अधर अरूनारे'' में मानवीकरण अलंकार उनकी काव्योक्तियों को अलंकृत करता है।

अध्याय – षष्ठम्

श्री 'मित्र' जी की काव्य-चेतना पर बुन्देली संस्कृति का प्रभाव

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' की काव्य-चेतना पर बुन्देली-संस्कृति और लोक-जीवन का प्रभाव-

श्रीं रामचरण हयारण मित्र जी के कृतित्व और व्यक्तित्व में बुन्देलखण्ड की माटी की सौंधी सुगंध है। बुन्देली संस्कृति 'मित्र' जी की सांसो में प्रवाहित होती है और बुन्देली लोक जींवन उनके ह्रदय की धड़कनों से सीधा नाता जोड़े है। श्री 'मित्र' जी की इन्हीं सांसों और धड़कनों की ऊष्मा ने उनसे बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य पुस्तक की रचना करवा डाली। ''बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य'' के निवेदन अंश में मित्र जी लिखते हैं कि ''बुन्देलखण्ड वन, उपवन, पशु, पक्षियों, सर, सरिताओं और पर्वत मालाओं से आच्छादित प्रदेश हैं। इस प्रदेश की षटऋतुऐं अपने अपने निश्चित समय पर प्रदक्षिणा किया करती है। बुन्देलखण्ड की संस्कृति और यहों के लोक साहित्य की रक्षा हेतु बुन्देले नरेशों ने जब जब इस प्रदेश पर आक्रमण हुए तब तब हँसेते हँसते युद्ध की भीषण लपटों में अपने प्राणों को होम दिया। बात की बात में आन बान पर मर मिटना यहाँ के वीरों के लिए सदा खेल रहा है। यही मुख्य कारण है कि यहाँ की संस्कृति और लोक साहित्य ग्रामो में सुरक्षित है।'' [1]

मित्र जी की मान्यता है ''ग्रामों'' में ही बुन्देलखण्उ की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित है। स्पष्ट है कि लोक जीवन और लोक संस्कृति की ओर मित्र जी का ध्यान अधिक जाता है। बुन्देलखण्ड के प्रति मित्र जी के ह्रदय में सहज स्वभाविक भावुकता और सम्बेदना है। इसीलिए मित्र जी अपनी काव्य रचनाओं में बुन्देलखण्ड के सामाजिक और सांस्कृतिक वैभव को उपस्थित तो करते ही हैं। पर इनते से ही उनका मन नहीं भरता। मित्र जी बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य को देश की जनता के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए एतद् ग्रन्थ भी लिख डालते हैं। राजा परमाल, वरींसिंह जूदेव, दीवान हरदौल, वीर छत्रपाल, महारानी मानवती, महारानी लक्ष्मीबाई और बुन्देला वीर मर्दनसिंह की शौर्य गाथाओं की मित्र

---

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य– श्री रामचरण हयारण 'मित्र' पृ0 निवदेन अंश 15 ।

जी विवेचना करते हैं। बुन्देलखण्ड के वैभव को उजागर करने के लिए मित्र जी बुन्देलखण्ड का यशोगान, बुन्देलखण्ड की नदियों के महत्व का प्रतिपादन, बुन्देलखण्ड के कृषि साहित्य, बुन्देलखण्उ की लोकरागिनी, लोकसाहित्य, लोकगीतो, लोकनृत्य और लोक काव्य तथा गायन कला की विशेषताओं का वर्णन करते हैं। बुन्देलखण्उ के तीज त्याहारों व्रत मेलों और लोकगीत का ऋतुओं के क्रम में विवरण भी देते हैं। बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य ग्रन्थ हीं इस अवधारणा की पुष्टि कर देता है कि श्री मित्र जी का साहित्यिक जीवन बुन्देलीसंस्कृति और लोक जीवन से विशेष रूप से प्रभावित है।

'उदय और विकास' ग्रन्थ में मित्र जी बुन्देलखझउ के ज्ञात अज्ञात कवियों पर विशेष लेख प्रकाशित करते हैं। बुन्देलखण्उ का सौष्ठव बतलाते हैं, बुन्देलखण्ड की नदियों, सामाजिक बसंत उत्सव, चम्बल सरिता के संगीत सपूत तानसेन, चित्रकार कालीचरण वर्मा बुन्देलखण्ड का शाश्वत भूभाग, लोक ज्योतिष आदि पर विश्वसनीय लेखों के द्वारा सुधिजनों को बुन्देलखण्ड के संबंध में वृहद् जानकारियों प्रस्तुत करते हैं। ''उदय और विकास'' ग्रंथ भी गवाही देता है कि बुन्देलखण्ड की संस्कृति, बुन्देली परम्परा और बुन्देली लोक जीवन

मित्र जी के काव्य शरीर में रक्त बनकर बह रहे हैं [1]

राजकवि श्री हीरालाल व्यास 'हृदेश' द्वारा रचित बुन्देलीभाषा के रीति काव्य ग्रन्थ ''विस्वबसकरन'' को भी 'मित्र' जी ने सम्पादित किया है। इस ग्रंथ की भूमिका श्री हरि हर निवास द्विवेदी ने लिखी है :-

''आधी शताब्दी से अधिक समय से मित्र जी झांसी क्षेत्र के विशेषतः बुन्देली साहित्य की सतत् आराधना करते रहे हैं। बुन्देलखण्ड की भाषा, उसकी पावन नदियों, वन, पर्वत सभी की उन्होंने एक श्रद्धालु भक्त के समान आराधना की है। बुन्देलखण्ड और उसके लिए

---

1. उदय और विकास- श्री रामचरण हयारण 'मित्र'

समस्त भारत के मित्र जी गौरव है।'' [1]

यहाँ मैं विशेष रूप से कहनाचाहती हूँ कि बुन्देली शौर्य, बुन्देली पावन तीर्थ, बुन्देली प्रकृति, बुन्देली संस्कृति और संस्कार, बुन्देली लोक जीवन के अनुराग और व्यवहार के नाना काव्य चित्रों का मित्र जी की रचनाओं में भण्डार है। मित्र जी ने सिर ऊँचा करके और सीना तान कर सदा गाते रहे–

''मैं शौर्य प्रदत्त, बुन्देलखण्ड का रहने वाला। मैं सौरभ प्रिय बुन्देलखण्ड का रहने वाला। मैं सिन्ध बेतवा चम्बल तट का रहने वाला'' [2]

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा था कि:–

'' बुन्देलखण्ड में जो कुछ सर्वोत्तम है, मित्र जी उसके सच्चे प्रतिनिध हैं।........... यद्यपि स्व0 गुप्त बन्धुओं तथा श्रद्धेय वृन्दावनलाल वर्मा ने अखिल भारतीय कीर्ति अर्जित की और निस्सन्देह वे हमारे पूज्य बन गये पर मित्र जी जानपद जन हैं और बुन्देलखण्ड गुण गरिमा के सच्चे प्रतीक है । [3]

कलकल करती बेतबा मलयगिरी की ऊँची–ऊँची पहाड़ियाँ, रिमझिम रिमझिम जलधारा वर नाचती वर्षा सुन्दरी, रमणीय रूप पर इठलाती हरी भीर प्रकृति, यौवन रस में सराबोर ग्रामबाला, प्रातःकाल भाई को जागरण गीत सुनाती बहना और ननद को विदा करती भावज के भावपूर्ण बिम्ब सहज स्वाभाविक शैली में श्री मित्र जी के बुन्देलीगीतों में अवतरित हुए हैं।

---

1. विस्वबसकरन – सम्पादक – रामचरण हयारण 'मित्र' भूमिका – (हरिहर निवास द्विवेदी) पृ00 36 ।
2. बुन्देलखण्ड प्रशस्ति कविता – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।
3. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – प्रेरणाप्रद अंश'' से।

बुन्देली-संस्कृति की प्रतीक ''बेतबा''-

'बेतबा बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक, और धार्मिक चेतना की प्रतीक सरिता है। गंगा का जो स्थान देश में है, बुन्देलखण्ड के जन मानस में वही स्थान बेतवा का है। ओरछा धार्मिक तीर्थ स्थल भी बेतवा के तट पर ही है। जैसे गंगा मैदानी जीवन के विकास को अग्रगामी बनती है, उसी तरह बुन्देली जन जीवन के उल्लास उमंग और उत्साह को वेतबा प्रेरित करती है । बेतवा जल गंगाजल के समान पतित पावन है।बुन्देलखण्ड के खेतों को, बेतवा सींचती तो बुन्देलखण्ड की संस्कृति को भी हराभरा रखती है।''बेतबा'' की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर बुन्देलखण्ड के प्रत्येक कवि ने ''बेतवा'' का यशोगान बड़े चाव और भाव से किया है।

''बेतवा-प्रशस्ति'' के बहाने श्री 'मित्र' जी बुन्देलखण्ड के तेजस्वी भाल को, बुन्देलखण्ड की पुण्य प्रभा को, बुन्देलखण्ड की संगीत-कला और संस्कृति को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं।

''बेतबे मंजुल मोतिन माल सों, विन्ध्य कौ भाल सजावती हो तुम ।
'मित्र' की मंजु मयूखन में, नव पुण्य प्रभा प्रकाशवती हो तुम ।
साज संवारि के राय प्रवीन की बनी सुरीली बजाबती हो तुम ।
भोर सों सांझ लो सांझ से भोर लों, केशव को जस गावती हो तुम ।

बुन्देलखण्ड की जतना के सामने 'मित्र' जी बेतवा के वैमव को प्रगट करके विकास की नयी आशा और विश्वास जाग्रत करते हैं । जनता का आत्मबल पुष्ट होता है।प्रकृति की गोद में संस्कृति मंगल-लोकरंजन करती है।

लाज बचाउन जी की सदाँ
छत्रसाल जू ने विवदा तन झेली
प्रान हतेरी धरे भएं लक्ष्छमी
बाई जहां खुल खंगन खेली ।

जी के गरें कवि व्यास ने माल

भलीं कविता मुकतान की मेलीं ।

पाँव पखारत बेतवतीं बई

'मित्र' जू बंदत भूम बुन्देलीं ।

मित्र जी बेतवा के प्रताप का बखान करके जनता के हृदय में उदान्त भावों को संचारित करना चाहते हैं ।

बेतबतीं प्रबल प्रताप कहा तेरौ कहौं,

भारे ही तें सुख के समूह सनिबे लगे ।

भुजन समेंटि भेंट जामिन पटम्बर में,

आंजुरिन मुकत हजार जनिबे लगे ।

तृंगारण्य तीर तुंग तरल तरंगन सौं,

तीरसिंग जस के वितान तनिबे लगे ।

'मित्र' के करन कर केलि कंचना के कन,

कनक कनूका हैं कुबेर बनिवे लगे।

''कनक'' के कनूका अर्थात् सोने के दाने का कुबेर बनने लगना भावना की दृष्टि से और साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ उक्ति है।

बुन्देलखण्ड का बैभव–

बुन्देलखण्ड इस धरा में विशेष महत्वपूर्ण भूमि है। इस विशेष महत्व का कारण क्या है? बुन्देलखण्ड की धरती पर जन्म लेने के लिए देवों की नारियों भी अपने मन में ललचाती हैं छः ऋतुऐं बुन्देलखण्ड की परिक्रमा लगाती है। काव्य की ऐसी उक्तियों स्वयं प्रमाण जुटाती हैं कि मित्र जी की काव्य चेतना पर बुन्देलखण्ड और बुन्देली संस्कृति का गहरा प्रभाव है–

मलयागिरी की अत ऊँची पहारियां,

बिंद की पहारियां देख लजाउतीं।

धरती पै बुंदेल के जन्मबे खौं,

जियें देउन की तिरियां ललचाउतीं।

'मित्र' जू तीनऊ बैरै सुगंद के,

बिजना लैकें डुलायबे आउतीं।

झूक झूमतीं लूमतीं पावन चूमतीं,

छैउ रितें परकम्मा लगाउतीं ।

बसंत- चित्रण–

ऋतुऐं प्रणय और प्रेम को प्रेरित करती हैं, प्रेम कवियों का प्रिय विषय रहा है। बुन्देली लोक जीवन की बुन्देली नायिका पर बसंत कैसे कैसे 'काम वाण' चला रहा है, 'मित्र' जी इसी भाव का सुन्दर बिम्ब गड़ते हैं। दोज का चन्द्रमा झंझारियों से झाँक रहा है।

''दोज के चन्दा झंझरियन झाँकौ,

मोरो तुमई सौ जियरा जुड़ात ।

विन्ध्यपार की बेर बसन्तीं,

सोउत काम जगात ।

'मित्र' कओ कीसैं का कइये ।

की को कहा पिरात ।.................दोज के चन्दा........।

'मित्र' जी की यह बुन्देली ''नायिका'' ईसुरी की ''नायिका'' की ही छवि है। मित्र जी ने 'बुन्देली जीवन' से इन लोक गीतों को को सीधा जोड़ दिया है।

ग्रामीण-पारवारिक-जीवन का चित्रण–

बुन्देली जीवन शैली पर संयुक्त परिवार का प्रभाव है। संयुक्त परिवार की रसमयता और कर्मशीलता का स्वभाविक और हृदय को मुदित करने वाला चित्रण श्री 'मित्र' जी के गीतों

में देखते ही बनता है। अभी प्रातः काल ने पूरे पंख नहीं फैला पाए हैं। हां चन्द्रमा का प्रकाश कुछ मंद अवश्य पड़ गया है। तारा-गण भी झोझत हो गये हैं। अंधयारे के आंचल में ही उजाला छुपा हुआ है। यह बिम्ब जहां प्रातः काल के आने और रात्रि के जाने का द्योतक है- वहीं प्रणय क्रीड़ा के पूर्ण होने और ''कर्म-लीला'' के प्रारंभ होने का चित्र भी अप्रत्यक्ष रूप से उपस्थित कर देता है। ऐसी हीं उक्तियां जहाँ एक ओर मित्र जी को बुन्देली लोकजीवन का पारखी बनाती है वहीं काव्य मर्मज्ञ कवि सिद्धि करतीं हैं।

''प्राची: नवल दुलैया के नई खुले अधर अरूनारे ।
चमक रेय नभ रजन भुजाई के नैना रतनारे ।
अंधियारी के आंचर भीतर दुकौ हतौ उजयारौ ।
जीसों अबनों बखरी में नई दिखा परौ भुंसारों ।

''भुंसारे'' से पहले ही बुन्देली नारी गैयां भैंसे दो लेती हैं। दही की मटकी भां लेती हैं। माखन नेनूं निकाल लेती हैं। प्रेम और कर्म के मध्य कैसा सामंजस्य स्थापित है बुन्देली- संयुक्त पारवारिक जीवन में:-

कसकै जू रौ, मार कछौटा टैया दैंके डेरौ।
चल्दई मनियां दोबे गैयां, नई कउ कौं टेरौ ।
बच्छा मेल, लगाकैं लौनाँ दोलई कारी गैया ।
फटन लगी पीरी पौ, होबे लगी विदा जुनैया ।

''कछौटा'' लगाकर कामकाज में लग जाना बुन्देली नारियों की कर्मठता और गतिशीलता को प्रगट करता है। कर्मठ, कामकाज में संलग्न नारी के सौन्दर्य की छवि सबसे न्यारी होती है। सुख की शैया पर बैठी नारी और कर्म के मैदान में भागती दौड़ती नारी के सौन्दर्य को 'मित्र' जी प्रथक प्रथक रेखांकित करते हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी भी ''कछौटा'' लगाये श्रम करने वाली नारी को ही श्रेष्ठ प्रतिष्ठा देते हैं। इसी भाव-दशा से भर कर गुप्त जी साकेत में सीता जी को भी कछौटा लगी धोती पहनें दर्शाते हैं :-

''अंचल पट कटि खोंस'', कछौटा मारे सीता माता थीं आज नई धज धारे।''[1]
यह कछोटादार धोती बुन्देली नारी का विशेष बस्त्राभरण है। बुन्देली संस्कृति के श्रमशील सौन्दर्य का प्रतीक है।

''मठा भंवत में भौजाई की बजन लगी कर धौनी ।

हँसी मनई मन मनियाँ सुनकैं मंद मंद धुन नौंनी ।''

मठा भांवते समय भुजाई (भाभी) की करधौनी का बजना उस पर 'मनइ' का लक्ष्यपूर्ण हंसना श्रृंगार की सौम्य झाँकी प्रगट करता है। ''करधोनी'' कमर में धारण किया जाने वाला बुन्देली आभूषण है।

इस गीत में बुन्देली लोक-व्यवहार, बुन्देली लोक-रीति, बुन्देली-आभूषण का कितना स्वाभाविक चित्रण है।

बेटी की विदा–

बुन्देलखण्ड में विवाह संस्कार के अवसर बैटी की ''विदा'' का दृश्य अत्याधिक भावुक और करूणामय होता है। ''बेटी'' ही उदास नहीं होती बेटी का घर भर उदास हो जाता है। माता, पिता, भाई, भाभी सभी के ह्रदयों में आसुओं का समुद्र उमड़ आता है। बेटी के विदा की सूचना सारे गांव को नाई या नाइन द्वारा दी जाती है। बुन्देली संस्कृति और संस्कार में बेटी के विवाह संस्कार पर "बैटी की विदा" का कार्यक्रम → एक परिवार विशेष का कार्यक्रम नहीं माना जाता है । बेटी तो सारे गांव के सम्मान का प्रतीक होती है। इसीलिए इस अवसर पर पूरा गांव एकत्र होकर बेटी को विदा देता है। शुभआशीष और भेंट प्रदान करता है। बुन्देली संस्कृति की सामाजिक भावना का कैसा भावुक चित्रण इस विदा गीत में है।

''करके सबुर मनई मन मुखिनी ने नाइन बुलबाई,

दैन बुलौआ गांव भरे में तुरत ताय पौंचाई ।

सुनत खबर सुइमइ सी पल में सैंम गई गुईयाँ

---

1. साकेत – अष्टम सर्ग – मैथिलीशरण गुप्त ।

मुरझा गई सबन की कमलन सीं फूली भई मुरयां।

•••••••••••••••••••••••••••••••••

उमड़ उठीं सबके अन्तस में वे खबरे बारे कीं,

हिल मिल जुर संगे सपरन जावे नदिया नारे कीं।

डार गरै गलबैयां, नदिया में हेड़ा लैवे कीं,

छुआ छुअउअल धार पार करबे डोंड़ा खेबे कीं।

बुन्देली खेलों का चित्रण कितना स्वभाविक है। चंदा-पौआ, पत्थर-फोरा, रोटी-पन्ना, घरबूला, सुअटा, बन्नी बन्ना का विवाह आदि खेल बुन्देली कन्याओं के प्रिय खेल हैं। बुन्देली लोक संस्कृति को धरोहर हैं।

''चँदा पौआ, पत्थर फोरा उर रोटी पन्ना कीं,

घरघूला सुअटा कीं ब्याव करन बन्नी बन्ना की ।

अटकन चटकन दई चटाकन खेलत मुसकावें कीं,

झूला डार मिचकियां लै लै कै मलार गावे की ।

बुन्देलखण्ड में कन्याऐं बचपन में जो खेल खेलती हैं, किशोरी अवस्था में जो खेल खेलती हैं और तरूणाई में जो जो खेल खेलती हैं, इन चार पंक्तियों में उन्हीं खेलों का चित्रण है ।

बेटी को विदा देते समय परिवार जनों की सीखावन भी 'मित्र' जी की कविता में सहज रूप से प्रगट हुई। इन स्वभाविक और मार्मिक विम्ब विधानों के कारण मित्र जी की बुन्देली कविता प्राणवान हो गई है।

''लटकारे घूंघट से अँसुआ अपने आँचरन ढारै,

मनौ संभू पै अनबेदे मुँतियन की माला डारैं ।

बिछुरन को दुख दाब हिये, अन्तस में लै गुरूआई,

बोली नंनद । राखतइ रइं तुम कुल की बात सबाई ।

कृषक-संस्कारों की अभिव्यक्ति-

बुन्देली संस्कृति एक प्रकार से कृषि प्रधान संस्कारों का समवेत स्वर ही है। खेती किसान के संस्कारों को छोड़कर बुन्देली लोक संस्कृति अपने मूलाधार पर खड़ी नहीं रह सकती है। इस महत्वपूर्ण तत्व की पहचान मित्र जी को है। मित्र जी की बुन्देली कविता में कृषक जीवन और कृषक संस्कारों का सजीव चित्रण देखने का मिलता है। ''जगारइ तुमखों धरती भैया'' कविता में कृषक जीवन और संस्कारों को समुचित उभार मिला है।

ओ धरती के पूत । जग उठौ, जगे सूरजमल भैया ।
कब से लगी टेरबे तुम खौं, बीरन धरती मैया ।
देखौ कछु खेत बारे, अपने खेतन पै जा रए ।
कैउ बसउआ अपने अपेन खेत जोत कैं आ रए ।
बदरई देख जुनई की बउनीं करबे खौं उकता रए ।
कछू उगावे बिरबारी खौं मन की उजा जमा रए ।
....
खेतीं बई की जींनैं अपनैं हाँतन सींच समारी ।
और रात दिन जगकैं करलइ खेतीं की रखबारी ।
....
फूल उठीं छातीं किसान की नइ बालैं गदरानीं
जिनै देखकें सास जिठानीं, अन्तस में हरसानीं । [1]

बुन्देली लोक-जीवन की सास-ननदें-

श्री मित्र जी के काव्य में बुन्देली लोक जीवन का मोद, प्रमोद, मिलन, विरह, सास-ननद के उलाहनो के रंगविरंगे चित्र अंकित हैं। ''कोयल'' गीत तो सभी काव्यों की शोभा बड़ाते है पर बुन्देली ''नायिका'' कोयल को अपनी जीवन सखी बना लेती है। शिकार प्रेमी देवर से बुन्देली भौजी मनुहार करती है कि हे देवर लाला तुम कोयल को मत मारना क्यों कि यह कोयल ही है जो आम की बौरों की रखवाली करती है यह मेरी फुलबगिया की पहरेदारी

1. बुन्देली काव्य परम्परा – में संकलित मित्र जी का गीत पृ0 92 ।

करती है। जब मेरे प्रियतम परदेश में होते है तो मैं प्रियतम के विरह में व्याकुल हो जाती हूँ तब यही कोयल मधुर गीत सुनाकर मेरे मन को बहला देती है, जब ननद बाई के व्यंगवाण हृदय को चुभते हैं,जब जेठानी जी मेरे ऊपर दोषारोपण करती हैं, मन ही मन में सासो जी रिसा जाती हैं,तब यही कोयल मीठे मीठे बोल बोलकर अपने स्वर का सर्वस्व निछावर कर देती है। जीवन में प्रेम की रसधार प्रवाहित कर देती है। कुइलिया हरसमय मेरा साथ देती है। मेरे हिय को हर्षित करती है। बुन्देली संस्कृति,प्रकृति, पशु और पंक्षियों से अपना रागात्मक संबंध बनाये रखती है। मित्र जी ने इन्हीं भावों को बुन्देली कविताओं में प्रगट किया है। ''बारे देउरिया कुइलिया न मारौ'' गीत में इन्हीं भावनाओं की सरस प्रस्तुती हुई है।

''बारे देउरिया, कुइलिया न मारौ, बा गाबै बसंती रे गीत ।

आम डरैया बौर भार सौं, भूम जबइं झुक जात ।

चौंच न घायल पाउत हरिया, जब अमियाँ गदरात ।

कौ नउं तराँ नजर नई लगतई, जइ बरकाउत रात ।

जई फुलबगिया की रखवारिन, जइ है सांची मीत ।

"कौनउ तरा नजर नई लगतइ" पंक्ति में नजर लगने वाला लोक विश्वास अंकित है।

इस तरह सांची मीत (सच्ची शुभचिंतक) लोकोक्ति सटीक हो उठी है।

''जबई ननँद के सालै उरयें हैं, काँटन से बोल।'' पंक्ति में यही लोक धारण प्रगट हुई। कि चून की ननद भी बैरिन बन जाती है। ''कँाटन से बोल''– अर्थात कटु वाणी कांटे जैसी चुभती है। सास के रूठ जाने की पीड़ा बधुओं को कितना व्यथित करती है। बुन्देली लोक जीवन की कैसी बारीक पकड़ मित्र जी के काव्य में है।

''जबइँ ननँद के सालै उर में, हैं काँटन से बोल ।

अनुआँ जबइ लगाय जिठनिया, कपट पिठरिया खोल ।

मनई मन में सास रिसानी रये , बरतै नई रीत ।

जइ तब सरबस करै निछावर 'मित्र' जोर कै प्रीत ।

बारे देवरिया, कुइलिया न मारौ, गाबै बसंती रे गीत ।

बुन्देली लोक-धुन में बुन्देली-नायिका के विरह-गीत–

श्री 'मित्र' जी के बुन्देली काव्य में बुन्देली लोक धुनों की तर्ज पर बुन्देली गीतों की भरमार है। इन गीतों की धुन तो परम्परावादी है पर इन गीतों के बोल मौलिक है। श्री मित्र जी परम्परावादी धुनों में नये भावों को पिरोना अच्छी तरह जानते है। ''सजन घर नैयां'' ऐसा ही गीत है। संध्याकाल से ही बादल घिर आये हैं। मेरे आँगन में बिजली चमक रही है। ननद जिठानी सास सभी विषम हो गई है। ठीक भी है जब साजन ही रूठ गये हैं– तब और किसके आसरे की मैं आशा करूँ। विरह में तो तड़पना ही है। लोक-संस्कृति और लोक-भाव को यह गीत प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति देता है:–

सजन घर नैयाँ का करौ गुईयाँ ।
साजई सों घर आउत बदरा,
दै दै कै फिर कैयाँ ।
सजन घर नैयाँ, का करौं गुइयाँ ।
कौदत मोरे आंगन बिजुरिया,
उर कउँ कौंदत नैयाँ ।
सजन घर नैयाँ, का करौं गुइयाँ ।
ननद सुनाउत है अनुतरीं,
भोरन होतन खैयाँ।
सजन घर नैयाँ, का करौं गुइयाँ ।
अनख्यानी रयँ सास जिठनियाँ
परत परत पै पैयाँ ।
सजन घर नैयाँ, का करौं गुइयाँ ।

कऔ कीं कौ, अब तकौं आसरौ

रूठे 'मित्र' गुसैयाँ ।

सजन घर नैयाँ, का करौं गुइयाँ । [1]

बुन्देलखण्डी-गीत लोक-व्यंगविनोद-

बुन्देलखण्ड में शादी विवाह के अवसर पर वर कन्या के पिता जेठ, ननदेउ, मामा, फूफा आदि को 'गारी गीत' सुनाने की परम्परा है। बोलचाल की लोक भाषा में इन्हें गारी कहते हैं। ये 'गारी गीत' मण्डप में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों में विशेष रूप से गाये जाते हैं ''समधी जी'' को सम्बोधित ये गीत लोक जीवन में विशेष रस घोलते हैं गारी गीतों के आभाव में 'बुन्देली दावतें' रस हीन प्रतीत होती है। पुरूष वर्ग प्रेम भाव से भोजन व्यंजनों के साथ साथ इन ''गारी गीतों'' के माधुर्य रस का पान करते जाते हैं। इन ''गारी गीतो'' में व्यंग विनोद हास परिहासपूर्ण लोकोक्तियाँ और अन्योक्तियाँ ही विशेष रस निष्पत्ति करती हैं। यह बुन्देली लोक संस्कृति का ही रसपूर्ण चित्रण है।

नैबरैं नेवरैं चले आओ बारे समदी,

जोरा तगोंरी को व्याओं, मोरेलाल ।

बरम संकरी बनी मिठाई, खाओ और खुआऔ मोर लाल ।

जुरीं पॉवनी लेजोरा की जित भावै तित जाऔ मोरे लाल।

मौड़ी मौड़ा सब पंचयाती जिनकों नाव न गांव मोर लाल।

चाई माई सौकारूँ कर लेव, जीं में बनें बनाऔ मोर लाल।

काँसे को सुर कांसें राखौ, नई कुछ सुनौ सुनाओ मोरे लाल

तुम फूटे हम आयँ झाँझरे हिलमिल बात बनाओ, मोरे लाल।

जी के पावं न फटी बिमाई, वौका जाने घाव मोरे लाल।

---

1. लोक गायनी – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।

गाउन सब खौं देऔ मलारैं।, अपुन भैरवीं गाओ, मोरेलाल।

इस प्रंसगों से यही सुस्पष्ट होता है कि श्री मित्र जी के काव्य में बुन्देली संस्कृति, बुन्देली लोक जीवन और बुन्देली लोक व्यवहार तथा बुन्देली परम्पराओं का सहज स्वभाविक चित्रण है। मित्र जी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर बुन्देली लोक जीवन और बुन्देली संस्कृति की गहरी छाप है।

डॉ0 रामकुमार वर्मा जी के इस कथन से भी इसी भाव की पुष्ट होती है। ''बुन्देलीखण्ड वीरों की भूमि रही है, वहाँ की भूमि का कण कण जहां एक और ममता भरी आत्मीयता से संसिक्त है, तो दूसरी ओर वीरों के रक्त की बूंदों की अरूणिया भी लिए हुए है। मित्र जी ने जहां परिवार और गांव की आत्मयीयता से भरे हुए चित्र खीचें हैं, वही वरीता की ओज भीर वाणी भी उनके काव्य में गुंजरित हुई है। लोक जीवन का शायद ही कोई चित्र होगा जो मित्र जी की कुशल लेखनी से न संवारा गया हो।'' [1]

1. लोक गायनी – बुन्देलखण्डी काव्य पर डा0 रामकुमार वर्मा की टिप्पणी ।

अध्याय – सप्तम्

बुन्देली काव्य परम्परा में श्री 'मित्र' जी के काव्य का योगदान

बुन्देली-काव्य परम्परा में श्री 'मित्र' जी के काव्य का योगदान -

''जागनिक'' से लेकर 'ईसुरी' तक बुन्देली काव्य धारा का प्रवाह सतत् प्रवाहित हैं। 'जगनिक' का आल्हा और ईसुरी की 'फागें' बुन्देली लोक कंठ में वैसे ही विद्यमान है जैसे सूर के पद और तुलसी बाबा की चौपाइयाँ। बुन्देली काव्य धारा को आगे बढ़ाने वाले आधुनिक काव्य के प्रतिष्ठित कवि श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के बुन्देली काव्य का भी विशिष्ट महत्त्व इसी क्रम में है।

''लौलैंयाँ'' और ''लोकगायनी'' मित्र जी की बुन्देली में रची महत्वपूर्ण काव्यकृतियाँ हैं। इन काव्य कृतियों का परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। इन बुन्देली काव्य कृतियों के अतिरिक्त कुछ फुटकर बुन्देली कविताऐं भी 'मित्र' जी ने रची हैं। मित्र जी ने लोकगायनी में स्पष्ट किया है कि उन्हें बुन्देलीकाव्य सृजन की पहली प्रेरणा अपनी माता जी से सुनी बुन्देली लोरी और लोककवि ईसुरी की फागें सुन कर मिली ।

मित्र जी ने लिखा है कि:-

''लोकगीत आडम्बर एवं अहंभाव से मुक्त प्रगति से अनासक्त बितंडावाद से अन्यमनस्क निश्चल निष्कपट तथा सारल्योपासक है। इसकी प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम अपनी पूज्य माता श्री यमुना द्वारा प्रातः काल आटा चक्की की ध्वनि से जो ताल की गति में ध्वनित होती है, उसके स्वर में स्वर मिलाते हुए इस बुन्देली गीत से मिली :-

''मन मोहन उदक नइँ जाँय,

सखी री धीरें झुला दिऔ पालना।''

यह बात सन् 1925 की है जब कि मैं राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर राष्ट्रीय गीत में रत रहता था। अनायास मुझे कुछ कालान्तर में मोंठ (झांसी) प्रदर्शनी के एक कवि सम्मेलन में भाग लेने का अवसर प्रातप हुआ और वहा स्व0 श्री मुंशी अजमरी जो बुन्देलखण्डी लोकगीतों के परमभक्त थे, उनके द्वारा जनकवि ईसुरी की इस फाग को सुनने का अवसर

मिला।

''कड़तन लागौ मूढ़ दिरोंदा, उतै हतौ सकरोंदा ।

नवगइ, नैगइ, दूनर होगई, नैंनू कैसो लोंदा ।

कहा कहौ वा कारीगर खौं, धरौ न ऊँचौ गौंदा ।

'ईसुर' कहत भोर को सूरज कौ चक चौंधा ।

मानव के लोक जीवन का साम्य प्रकृति के साथ, मेरी दृष्टि में इससे अधिक और क्या संजोया जा सकता है। इस फाग से प्रभावित होकर मेरी बुद्धि ने बुन्देली लोकगीत लिखने को बाध्य कर दिया।'' [1]

मित्र जी को बुन्देली की लगन लगी तो फिर लगी ही रही। मित्र जी बुन्देली गीतों को कवि सम्मेलनों के मंचो से सुनाने लगे। दिल्ली लखनऊ और इन्दौर के आकाशवाणी केन्द्रों से भी मित्रजी ने बुन्देली रचनाओं को सुनाना प्रांरम कर दिया। बुन्देली काव्य रचना की लगनको आगे बढ़ाने में श्री राम उजागर दुबे, श्री इलाचन्द्र जोशी और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी वे की प्रेरणा भी मित्र जी पर प्रभावी रही। श्री मित्र जी ने बुन्देली लोकगीत, राष्ट्रीय जागरण गीत जागरण गीत, बुन्देलखण्ड, पन्द्रह अगस्त, ग्राम बाला, बंगला विजय, कर्तव्यशील भारत और उसके दोस्त, चौकड़ियों और बुन्देलखण्उी गारी जैसी प्रसिद्ध रचनाओं का सृजन कर बुन्देली काव्य परम्परा का भण्डार भरा है। विशालभारत कलकत्ता 19 अप्रैल 1931 के अंक में श्री मित्र जी द्वारा रचित ''बुन्देलखण्डी लोकगीत'' प्रकाशित हुआ इस गीत में भावज का ननदी के प्रति प्रेम प्रदर्शन का वर्णन है। अपने सुरीले कंठ से जब इस गीत को मित्र जी स्वयं गाते थे तो 'करूण रस' की लहरें हर श्रोता के ह्रदय में हिलोरें लेने लगती थीं।

---

1. लोक गायनी – श्री रामचरण हयारण 'मित्र' – भाद्रपद कृष्णाष्टमी वि0 स0 2021 ।

विदा की कीनें बेल बई।

मिलकै विछुरन की नई नौंनी।

जग में रींत नई।

विदा की कीने बेल बई।

'स्वरधारा' झांसी जुलाई 1956 में बुन्देलखण्डी बसंतगीत का प्रकाशन हुआ। इस गीत के बोल हैं:- *बसंत गीत–*

दोज के चन्दा झंझरियन झांको,

मोरो तुमई सौ जियरा जुड़ात ।

बीतो सबई पखवारो विसूरत

बीती अमावस रात ।

हेरत हेरत डूबी तरैयाँ

काउ न पूंछी बात ।

झांसी से प्रकाशित साप्ताहिक ''भारती'' पत्र में जून 1958 को ''बुन्देलखण्डी लोकगीत'' शीर्षक से गीत प्रकाशित हुआ। इस गीत में श्री मित्र जी ने लोकगीत शैली में झाँसी की रानी के द्वारा लड़े ''समर'' का मार्मिक वर्णन है। यह गीत झाँसी और आसपास के ग्रामीण समाज में बहुत लोक प्रिय हुआ है।

मोरी जाय न झाँसी की लाज, मनें रानी सोच भरी।

सोचत में भर आई डबैयां ।

सबई तराँ तो रूठे गुसैयां ।

अब ईसुर है का जा करैयां ।

रन दुला कड़े दगाबाज मनें रानी सोच भरी ।

दैनिक भास्कर झांसी पत्र में 15 अगस्त 1959 को राष्ट्रीय जागरण गीत बुन्देली भाषा में

प्रकाशित हुआ। श्री मित्र जी ने इस गीत में भारत की स्वतंत्रता का गान किया है। सन् 1959 में जब कवि खड़ी बोली में कविता रच रहे थे उस समय बहती धारा के प्रतीप खड़े होकर 'मित्र' जी बुन्देली में राष्ट्रीय जागरण के गीत बड़ी शान और मान के साथ गा रहे थे। यह बुन्देली काव्य परम्परा की धारा को न केवल तेज करना था बल्कि ''लोक-तंत्र'' में 'लोकशक्ति' को जगाने का राष्ट्रीय दायित्व भी था।

राष्ट्रीय-जागरण गीत–

चन्दा सात समुद गऔ पार ।

सूरज की किरन जागी ।

मिटौ परासिरतु अंधयारो ।

भयौ सुतंत्रता कौ उजयारो ।

दीन मलिन सिंगार समारो ।

खिलन लगी कचनार ।

सूरज की किरन जगी ।

श्री 'मित्र' जी के जागरण गीत ने देश की जनता को सावधान किया कि आजादी तो आ गई है, अब देश की रक्षा का भार प्रत्येक भारतवासी के कंधों पर है। यह गीत दैनिक जागरण झांसी में 1960 में प्रकाशित हुआ था।

जागौ विरन ! मोरे समर जुझारू धरती की सुनकैं गुहार ।

घेरौ आफिमचिन आये हिमांचल बाँदौ कमर तरवार ।

••

ईसौं घर घर सलासूतकर सम्मत ल्यों निरधार ।

तज के भेद भाव आपुस के, रऔ सदई तैयार ।

जागौ विरन !....................।

कोउ करन न कैसउँ पावे, सीमा ऊपर वार ।

रच्छया अपने करौ देश की 'मित्र' जई में सार ।

जागौ विरन !....................।

'बुन्देलीवार्ता' पत्रिका में सन 1962 जनवरी के अंक में बुन्देलखण्ड रचना प्रकाशित हुई इस रचना में 'मित्र' जी ने बुन्देलखण्ड की महिमा का वर्णन किया है। यह रचना भी बुन्देलखण्ड में बहुत प्रसिद्ध है

बुन्देलखण्ड–

बेतवा सिंद धसान बयैं समुदा

सीं भरीं रयै ताल तलैंयाँ ।

परियाँ सोने सौ रूप धरैं,

जब आउतीं है बखरी में उरैंयाँ ।

'मित्र' जू इमरत सौ रस घोरतीं

बोलत में राइ सीं चिरैयाँ ।

भूलतीं नैयाँ भुलायें बुंदेल कीं,

आमुन–जामुन की घनीं छैंयां।

''मधुर मीठी वाणी'' को अभिव्यक्त करने के लिए 'मित्र' जी ने कैसी अनूठी उपमा का प्रयोग किया है। यह पंक्तियों ह्रदय से सीधा सम्वाद करने में समर्थ हैं।

''मित्र जू इमरत सौ रस घोरतीं''

ग्रामबाला–

''ऑजोर'' पत्र (पटना) 3 अक्टूबर 1963 के अंक में 'ग्रामबाला' रचना का प्रकाशन हुआ। मित्र जी ने इस 'रचना' के द्वारा ग्राम युवतियों की सौन्दर्यता भावुकता कर्मठता और पारवारिकता को काव्यमय अभिव्यक्ति दी है। कवि सम्मेलनों के मंचों पर यह बुन्देली गीत बड़े भाव से सुना जाता रहा है। इस गीत के बोलों पर श्रोता और पाठक झूम जाते हैं।

प्राची नवल दुलैया के नई खुले अधर अरूनारे ।

चमक रये नभ रजन भुजाई के नैना रत नारे ।

....

उठीं समार भार जोवन को हातन लई अंगड़ाई।

आलस जीतन खौं साहस ने मानौं कमान चढ़ाई।

लख मुसकावौ भौजाई ने करकैं मंद मथानी ।

नैनूं उठा पौंछ दऔ गलुअन मनियाँ मनें लजानी।

माउठ के मुतियन के संगै खेतन में जा खेलीं ।

जाके तन्ने सर्दी गर्मी की विपदा है झेली ।

ऐसी बिटियां करतीं नैयों घर में न्यारक न्यारौ।

'मित्र' कऊँ रयं करती रउतीं दोउ कुल में उजयारौ।

नारियों के सम्मान में 'मित्र' जी की यह उक्ति पूर्ण सार्थक है कि कर्मठता और पारवारिकता ग्राम युवियों का स्वाभाविक गुण है। वे पारवारिक एकता को दृढ़ करती हैं। बालाऐं चाहे पिता के घर में रहें या पति के घर में सदा दोनों कुलों के मंगल की कामना करती रहती हैं। यह ग्राम संस्कारों को प्रगट करने वाला गीत भी है।

भोर–

''भोर'' गीत जनसामान्य में बहुत लोकप्रिय हुआ। श्री 'मित्र' जी इस गीत को बहुत चाव से पढ़ते थे। ''आम फरमाइश'' भी इसी गीत की होती थी। जहां 'मित्र' जी उपस्थित होंगे लोग इस गीत को उनसे अवश्य सुनते थे। इस गीत के बोल मन मोहक तो हैं ही इस में बुन्देली घर परिवार के दैनिक कामकाज का बहुत ही स्वभाविक चित्रांकन भी है। इस गीत की गेयता और संगीमयता भी चित्त मोहक है। प्रातः काल हो गया है। गीत में इसके प्रमाण जुटाये गये हैं। मित्र जी का यह बुन्देलीगीत छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध 'गीत बीता विभावरी जाग री' का स्मरण करा देता है।

वीरन ! हो रओ भोर, दूद सीं डूबन लगीं तरैंयाँ ।

बड़ी भुजाई ने बखरी को,

टाल टकोरा कर लऔ ।

माते जू के बड़े कुआ कौ,

मीठौ पानीं भर लऔ ।

मुरगन ने दई बँग डरैयन बोलीं स्याम चिरैयाँ ।

मानकुंवर ने सारन को सब,

कूरा करकट भर लऔ

दूद देत गैंयन भैसन खौं,

दन्नों दर कै धर दऔ ।

सौकारूं कर लेव गोसली लगीं रमाँउन गैयाँ,

वीरन! हो रऔ भोर दूद सीं डूबन लगीं तरैयाँ ।

जौ जुग सूदेयन कौ नैयां – लोक-सिखावन गीत–

लोक सिखावन गीत जो जुग सूदेयन कौ नैयाँ है। इस गीत में मित्र जी यह सीख देते हैं कि यह संसार सीधे सरल व्यवहार को कम सम्मानित करता है। चालबाज चतुर चालकों की तूती अधिक बोलती है। अत:कपट व्यवहार से लोगों को सावधान रहना चाहिए। ऐसे समय में 'जैसे को तैसा' नीति से ही पार पाया जा सकता है। यह गीत भी लोक मानस के ह्रदय पर सीधा असर डालता है। काव्य की लोकसिखावन इसी को कहते हैं।

जौ जुग सूदेपन को नैयाँ

जवनों कांना सूदे बरतें,

फिरत फिरे फिरकैयां।

टेड़े होतन सूदीं हो गई,

बेई गोपी बई गैयां ।........................जो जुग.........

टेड़ी तिरछी नदियों बउतीं

रीतें तला तलैयां।

टेड़े बिरछा डँगन रउतइ

सूदन घलें कुलैयां । जो जुग....................।

सूदेपन सौं चाल चले जो,

घर भर लगै उटैयाँ ।

संसारी में सूदेपन खौं,

नैयाँ कोड पुछैयाँ । जो जुग.................।

राहू की टेरे चन्दा पै,

परत नई परछैयाँ ।

'मित्र' न 'कैंसउँ' कैं घी कड़तई

टेड़ी बिना उँगैया । जो जुग..........................।

रे पंछी–

"रे पंछी" में तृष्णा, लालच, लोभ के भावों को त्याग ने की सलाह दी गयी। इसमें "पंछी" तो प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। जैसे पंछी कभी इस डाल पर कभी उस डाल पर डोलत रहता है। उसी तरह मनुष्य का मन भी कभी यहाँ कभी वहाँ के लाभ मोह में भटकता रहता है। कवि की सीख है कि "सवरई घाली चौंच तोउ रय अरे पेट रीत के रीते"। मनुष्य की इच्छाऐं कमानाऐं अनन्त हैं। उन्हें पूरा करना सम्भव नहीं । हृदय के सागर में इच्छाओं की अनन्त लहरे उठतीं रहतीं हैं। इन पर संयम रखना ही सुखी होना है।

रे पंछी ! तिसना की डाँगन में भटकत मुकते दिन बीते ।

फल की इच्छा सौ बिरछन कीं,

मुलकन देखीं डार डरैयाँ

करमन सौ जो पाय उनें दय,

छोड़ तकीं फिर ताल तलैयाँ ।

सबरई घाली चौंच तोउ रय अरे पेट रीते के रीते ।

अपने जात पाँत के पंछिन

खौं कर पीछें आँगे दौरे।

कितनन खौं घायल कर पंजन,

बिदो - बिदो समुदा में बोरे।

तइ पै तेरी मरी न मंसा इतने करम करे तें लीते।

रे पंछी ! तिसना की डाँगन में भटकत मुकते दिन बीते ।

चौकड़ियाँ-

''चौकड़ियाँ'' बुन्देली काव्य परम्परा में लोककवि, ''ईसुरी'' से प्रारंभ हुई है। 'ईसुरी' की चौकड़ियों ने बुन्देलीकाव्य में ऐसा रंग जमाया कि बुन्देलीकाव्य साधना में लगे प्रायः सभी कवियों ने ''चौकड़ियां'' छंद अवश्य लिखा। मानों जैसे चौकड़ियों छंद रचना करने से कवि बुन्देली काव्य में स्थान पान का अधिकारी हो जाता हों। मित्र जी जैसे सर्मथ कवि कैसे पीछे रह सकते थे। 'मित्र' जी ने चौकड़िया छंद कम ही रचे हैं पर उनकी बुन्देली चौकड़ियां हैं बेजोड़। 'मित्र' जी की चौकड़ियां ईसुरी की बरबस याद दिला देती है।

उदाहरणार्थ एक दो चौकड़ियों प्रस्तुत हैं-

बिंदिया गिर गई ठिला ठिली में, वा सांकरी गली में ।

बरकी भौतक बरक न पाई, कैतिक चाल चली में ।

अनगिन भौंरन के बिच फस गई, भोरी अली कली में ।

'मित्र' धना अब कमउँ न जइओ, रंग की घला घली में ।

''ब्रज के सब फगु वारे नौनें, तुमई नई अनहौं ने ।

लयं गुलाल उमदात फिरत हो, ढूढ़त औने कोनें ।

भीतर औगुन भौत भरे हैं, ऊपर लगत सलौंने ।

अपने रंग बा कौ मन रंगलऔ, जींखौ जाने गौनें ।

इस विवेचना से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी बुन्देली काव्य परम्परा में जगनिक और ईसुरी के बाद सर्वाधिक लोक प्रिय बुन्देली कवि हैं । मित्र जी ने बुन्देली में शौर्य, श्रृंगार, भक्ति काव्य का सृजन तो किया ही है साथ ही आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक सरोकारों से जुड़े बुन्देलीकाव्य की रचना करके बुन्देली काव्य को लोक काव्य की सीमा से आगे बढ़कर राष्ट्रीय काव्य मंच पर प्रतिष्ठित किया है। मित्र जी के एक हाथ में बुन्देली लोक गीतों का रस कलश है दूसरे हाथ में राष्ट्रीय जागरण का बुन्देली काव्य बिगुल है। मित्र जी बुन्देली लोकरस की वर्षा भी करते हैं और राष्ट्रीय जागरण के लिए बुन्देली काव्य का ओजस्वी बिगुल भी बजाते है चलते है। श्री मित्र जी के बुन्देलीकाव्य में लोकरंजन का चन्द्रमा शीतलता विखेर रहा है और लोक मंगल का सूर्य प्रकाशित कर रहा है।

बुन्देली काव्य परम्परा में श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी के योगदान को श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का यह कथन पूरी तरह रेखांकित कर देता हैः–

''वे (मित्र जी) बुन्देलखण्ड के अपने हैं। बुन्देलखण्ड की महिमामयी रेणु से उन्हें स्नेह है, उनकी काया को बुन्देलखण्डी आखाड़ों ने स्नेहिल एवं मांसल किया है तो स्वतंत्रता संग्राम के राष्ट्रीय आवहन ने उसमे ओज भरा है । उनकी सांस्कृतिक परिदृष्टि ने उसे रससिक्त किया है तो काव्य प्रतिभा ने उसे जीवन्त जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है। [1]

---

1. मित्र जी का कृतित्व (श्री बनारसी दास चतुर्वेदी) : उदय और विकास
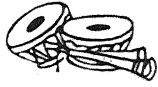
अध्याय – अष्टम्

''श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन बुन्देली काव्य के परिप्रेक्ष्य में''

शोध प्रबन्ध का निष्कर्ष

''बुन्देली काव्य परम्परा में श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी के काव्य के योगदान की विवेचना'' शोध-प्रबंध का निष्कर्ष-

बुन्देलखण्ड और बुन्देली-भाषा-

भारत के भौगोलिक वैभव, ऐतिहासिक गौरव तथा साहित्यिक सांस्कृतिक धरोहर में- ''बुन्देलखण्ड का विशेष महत्व है''। बुन्देलखण्ड भारत का हृदयस्थल है। बुन्देलखण्ड ऋषियों, मुनियों, तापसों, वीरों तथा कवियों और कलाकारों की भूमि रही है। महर्षि पाराशर महर्षि व्यास, बाल्मीकि मुनि, महर्षि अगस्त्य और उनकी शिष्य मंडली ने इसी विन्ध्य क्षेत्र की भूमि को अपनी तपःस्थली बनाया था। पर्वतराज हिमालय के बाद द्वितीय स्थान पर भारतीय उपमहाद्वीप में परिगणित विन्ध्य पर्वतश्रृंखला-इसी बुन्देलभूमि को लालित पालित करती है।. ....भारतीय उपमहाद्वीप की मूल आदिम जातियाँ भी यहाँ निवास करती हैं तथा आर्यावर्त्त अन्तर्वेद, सारस्वत, अंगवंग, गूर्जर तथा द्राविड़ प्रदेशों के लोग भी आकर यहाँ बस गये हैं।. ....बुन्देलखण्ड एक प्रकार से लघुभारत की झाँकी प्रस्तुत करता है। विविधता इस भूमि की विशिष्टता है। [1]

बुन्देलखण्ड का जुझारू चरित्र है। आल्हा-ऊदल, छत्रसाल, वीरसिंहजूदेव, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के संघर्षों की कहानी बुन्देलखण्ड के स्वाभिमान और शौर्य की गाथा है। भौगोलिक परिवेश और प्राकृतिक सुषमा ने बुन्देलखण्ड को रमणीयता और कोमलता का वरदान दिया है। बुन्देली कला-साधना के प्रतीक खजुराहो, ओरछा, देवगढ़, चंदेरी तथा सोनागिर के मंदिर और प्रतिमायें हैं। यहाँ के शौर्य और पराक्रम की कहानी कालिंजर, महोबा, छतरपुर, ओरछा और झांसी के गढ़ किलों तथा महलों में गूंज रही है। महर्षि व्यास आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना के महाकवि तुलसीदास, केशवदास, भूषण, पदमाकर, लोककवि ईसुरी, राष्ट्रकवि, मैथिलीशरण गुप्त जैसे स्वनाम धन्य काव्य साधक बुन्देलखण्ड की सम्वेदना और अनुभूति का गान गा रहे हैं।

1. बुन्देलखण्ड का साहित्यिक इतिहास - मोतीलाल त्रिपाठी भूमिका अंश - डा0 भागीरथ मिश्र पृ0 4 ।

बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना को अभिव्यक्ति देने के लिए बुन्देलखण्ड की अपनी बुन्देलीभाषा है। बुन्देलीभाषा के आदि कवि जगनिक का ''आल्हा'' काव्य इसकी प्राचीनता का प्रमाण है। गोस्वामी तुलसीदास की ''कवितावली'' में भी बुन्देलीभाषा अपनी पहचान प्रगट करती है। बुन्देलखण्ड और बुन्देलीभाषा का प्रभाव इन काव्यपंक्तियों में प्रगट हो रहा है:-

लाज बचाउत जी की सदाँ-

छत्रसाल जू ने विपदा तन झेली।

प्रान हतेरी धरै भएँ लच्छमी-

बाई जहाँ खुल खंगन खेली ।

जी के गरें कवि व्यास के माल-

भली कविता-मुकतान की मेली।

पांव परवारत बेत्रवती बई-

'मित्र' जू बंदत भूम बुंदेली। [1]

बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति-

मनुष्य ने अस्तित्व रक्षा के लिये जो व्यवस्था विकसित की उसे सभ्यता कहा गया। मनुष्य समाज ने मानसिक, आत्मिक उद्भावनाओं, अनुभूतियों, विचार प्रवाह तथा बोध लहरियों को जो रागात्मक और कलापूर्ण अभिव्यक्ति दी वह संस्कृति कहलायी। संस्कृति शारीरिक व मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रूचियों की परिष्कृति या शुद्धि है।'' [2]

संस्कृति एक व्यापक शब्द है। इसमें उच्चवर्गीय अभिजात संस्कृति और लोकसंस्कृति के आदर्श और मूल्य समाहित रहते हैं। संस्कृति एक जीवित प्रक्रिया है जो लोक के स्तर पर

1. लोकगायनी- श्री रामचरण हयारण 'मित्र' ।
2. संस्कृति के चार अध्याय- श्री रामधारी सिंह ''दिनकर'' ।

अंकुरित होती है, फूलती है, फलती है और पूरे लोक को संस्कारित करती है। विभिन्न लोक संस्कृतियों के पुष्प एक माला में गुंथ कर विशिष्ट या अभिजात संस्कृति को स्वरूप प्रदान करते हैं।[1]

'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। यह शब्द वेदों में आया है। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध यायी में लोक शब्द का प्रयोग किया है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में जनसामान्य के लिये ''लोक'' शब्द का प्रयोग किया है। ''अज्ञान तिमिरान्धस्यः लोकस्य तु विचेष्टतः''

बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति भारत के अन्य जनपदों की लोकसंस्कृतियों से प्राचीन है। नर्वदा घाटी के भूस्तरों की खोजों से पता चलता है कि नर्मदा घाटी की सभ्यता सिंधुघाटी की सभ्यता से बहुत पहले की है। नर्मदा घाटी में प्राप्त जीवाश्म और प्रस्तर उद्योग भेड़ाघाट में प्राप्त पुरापाषाण युग के प्रस्तरास्त्र और सागर की दक्षिणी पेटी में मिली प्रागैतिहासिक सामग्री से प्राचीन संस्कृति के उद्भव की जानकारी मिलती है। [2]

सागर के आबचंद और नरयावली और छतरपुर के किशनगढ़ क्षेत्र के शैलचित्रों में पुरामानव की लोक चित्रकला के दर्शन होते हैं। बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति की प्राचीन परम्परा इन्हीं तथ्यों से प्रगट होती है।

बुन्देलखण्ड लोक प्रधान क्षेत्र है। यहाँ वनजंगल, नदियों और पर्वतों की सघनता है। बुन्देलखण्ड के नगर भी बहुत विशाल नहीं है। इतिहास के विद्वानों का कहना है कि आर्यों ने विन्ध्य क्षेत्र में बल का प्रयोग नहीं किया। ब्राह्मण और क्षत्रियों ने यहाँ के वनों में कुटिया और आश्रम बनाये। इस प्रकार ''वनजीवन'' और ''आश्रम–जीवन'' की पद्धति से बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का मौलिक रूप प्रगट हुआ।[3]

लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य के विद्वान डा0 कृष्णदेव उपाध्याय जी के विचार से लोक संस्कृति को समझने परखने के लिए पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

---

1. बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास– नर्मदा प्रसाद गुप्त ।
2. मध्य प्रदेश के पुरातत्व की रूपरेखा– डॉ0 मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित पृ0 37 ।
3. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इंडियॅन पीपुल– आर0सी0 मजूमदार ।

1. लोक विश्वास,

2. संस्कार, आचार–विचार तथा विधिविधान

3. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाऐं।

4. धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताऐं।

5. लोक-साहित्य

डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त जी ने बुन्देली लोकसंस्कृति के अध्ययन को सुगम बनाते हुए निम्नांकित शीर्षकों में बुन्देली लोक-संस्कृति को प्रस्तुत किया है–

1. चिंतन–

इसमें बुन्देली लोकदर्शन, लोकमूल्य, लोकधर्म और लोक–विश्वास को समझने का प्रयास है।

2. आचरण–

इसमें लोकाचार, लोकरंजन, भोजनपेय और वातावरण की चर्चा की गयी है।

3. लोकदेवत्व–

इसके अन्तर्गत लोकदेवी, देवता जैसे लक्ष्मी, मनियां देव, लोकदेवता हरदौल की मान्यताओं का वर्णन किया है।

4. लोकोत्सव–

इसमें कजरिया, दिवारी, सुअटा या नोरता और फाग आदि उत्सवों के स्वरूप को समझाया है।

इसके साथ ही लोक संस्कृति के संस्थान अखाड़े आदि की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है।

बुन्देली लोक संस्कृति के इन तमाम पक्षों को परखकर इस शोध प्रबंध में बुन्देली लोक संस्कृति के निम्नलिखित रूवरूपों की विशेषरूप से विवेचना की गयी है।

बुन्देली–लोकाचार–

बुन्देली लोकाचारों का अमूल्य कोश बुन्देलीलोक कथाओं में भरा है। नजर निछावर, लगुन, मड़वागड़ना, चींकट उतारना, भटयानौं, मैर का पानी, टीका, चढ़ायो कन्यादान, भावंर आदि विवाह के अवसर के लोकाचार है। पुत्रों के मंगल के लिए हरछट, संतान सातें के व्रत प्रचलित हैं। महालक्ष्मी, दशारानी, तीजा आदि पूजाओं का प्रचलन है। बुन्देलखण्ड में शिशु के जन्मोत्सव के अनेक लोकाचार हैं। बुन्देलखण्ड के विशिष्ट बस्त्राभरण हैं। पुरुषों में साफा, पगड़ी कुर्ताधोती और महिलाओं में लहंगा चुनरिया, धोती चोली, कछोटादार धोती आदि परिधान विशेष हैं।

बुन्देली लोक–विश्वास–

बुन्देलखण्ड में प्रकृति संबंधी लोक विश्वास हैं– जैसे बर की पूजा करने से पति के प्राणों की रक्षा होती है। धार्मिक लोक विश्वास प्रचलित हैं जैसे तुलसी पौधे की पूजा आदि गाय को माता मानना और कौआ को प्रेतात्माओं तक भोजन पहुंचाने वाला माध्यम मानना आदि लोक विश्वास प्रचलित है।

बुन्देली–लोकदेवता–

बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति में भूमि, पर्वत, नदी और वृक्ष विशेषों को देवता की तरह पूजा जाता है। जाति विशेष के देवता के रूप में कारसदेव, गोड़बाबा की अधिक मान्यता है। शीतला माता और मरई माता शरीर रक्षक देवी मानी जाती हैं। दूलादेव, हरदौल और गौरादेवी विवाह संस्कार के अवसर पर अवश्य पूजे जाते हैं। कुलदेवता के रूप में ''बाबू'' की पूजा होती है। संकटा देवी संकट हरने वाली देवी मानी जाती है।

बुन्देली–लोकसंस्कार–

मानवजीवन की शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं को संस्कार कहा जा सकता है। ऐसी मान्यता है कि इन संस्कारों से दैहिक मानसिक और बौद्धिक परिष्कार हो जाता है। [1]

1. हिन्दु संस्कार – डॉ0 राजबली पाण्डेय ।

बुन्देलखण्ड के लोक समाज में जिन लोक संस्कारों की परम्परा चली आ रही है वे निम्नांकित हैं:–

1. पुंसवन या फूल चौक 2. विवाह संस्कार 3. गौना संस्कार 4. अगन्ना संस्कार 5. मुण्डन संस्कार 6. जनेऊ या उपनयन संस्कार 7. अत्येष्टि संस्कार इसे लोक व्यवहार में अंतिम संस्कार भी कहते हैं।

बुन्देली - लोकोत्सव–

बुन्देली लोकोत्सवों पर ऋतुओं की गहरी छाप है। बसंत ऋतु में गनगौर, नवदुर्गा और श्रीराम जन्मोत्सव मनाया जाता है। वर्षाऋतु में कुनघुसूं, सावनतीजा, भुंजरियन का मेला, नवरात्रि, मामुलिया पूजन, सुअटा, जलबिहार मेला और शरद ऋतु में कार्तिकस्नान, दीवाली, गोवर्द्धन पूजा, आदि पर्व उत्साह से मानये जाते हैं । जवारों का मेला, कजरियां मेला, नौरता सुअटा जैसे लोकोत्सवों को बुन्देली जनमानस अधिक उत्साह से मनाता है।

बुन्देलखण्ड के लोकनृत्य–

बुन्देली लोक नृत्य से बुन्देली लोकसंस्कृति की विशेष छवि आलोकित होती है। बुन्देलखण्ड में आदिवासी लोकनृत्य जैसे शैताम नृत्य, करमा लोक नृत्य और सुआ नृत्य लोकप्रिय है। पारवारिक नृत्यों में चंगेर नृत्य, लाकौर नृत्य तथा बहू उतराई नृत्य अधिक प्रचलित है। सार्वजनकि लोकनृत्य में सैरानृत्य, दिवारी नृत्य और राईनृत्य की खूब धूम रहती है। जवारा नृत्य और झिंझिया लोकनृत्य अनुष्ठानिक लोक नृत्य है। लोक जीवन में इन नृत्यों की बहुत मान्यता है।

बुन्देली काव्य–परम्परा–

बुन्देली काव्य परम्परा बहुत प्राचीन है। बुन्देली काव्य में बुन्देली जनजीवन के भावविचारों तथा संस्कारों की गहरी छाप है। विद्वानों ने मानलिया है कि लगभग 10वीं0 सदी में बुन्देलीकाव्य रचा जाने लगा था। मध्य काल के में बुन्देली काव्य पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुका था। उत्तर मध्य तथा आधुनिक काल बुन्देली काव्य में सामाजिक राजनीतिक और

आर्थिक सरोकारो की ध्वनि गूंजने लगी थी।

पं0 गौरीशंकर द्विवेदी, श्री कृष्णानन्द जी गुप्त, श्री हरिहर द्विवेदी, डॉ0 भगवानदास माहौर, श्री कन्हैयालाल कलश, डॉ0 श्यामसुन्दर बादल, डॉ0 बलभद्र तिवारी, डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त एवं डॉ0 रामनारायण शर्मा के अध्ययन एवं विश्लेषण का निष्कर्ष निकाले तो बुन्देली काव्य परम्परा का समन्वित रूप निम्नांकित शीर्षकों में समाहित किया जा सकता है।

1. बुन्देली शौर्य एवं गाथा-काव्य 2. बुन्देली भक्ति-काव्य 3. बुन्देली श्रंगार और फाग-काव्य 4. बुन्देली लोक-काव्य 5. बुन्देली आधुनिक-काव्य ।

प्रस्तुत शोधप्रबंध में बुन्देली काव्य परम्परा की यथेष्ठ विवेचना की गयी है। जिसके निष्कर्षों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

बुन्देली शौर्य एवं गाथा-काव्य-

शौर्य, पराक्रम और वीरता ने बुन्देली वाणी को ओजस्वी बनाया है। बुन्देलखण्ड की बाबत् देश में ये काव्योक्तियाँ प्रसिद्ध हैं-

1. आल्हा ऊदल बड़े लड़इया,
   जिनसे हार गई तरबार।''

2. ''खूब लड़ी मर्दानी वह तो, झांसी वाली रानी थी।''

'रासो' और 'गाथा' काव्य रचनाओं में बुन्देली शौर्य, पराक्रम, वीरता तथा बलिदान का यशोगान है। जगनिक कवि का 'परमालरासो' बुन्देली शौर्य-काव्य का लोकप्रिय ग्रन्थ है। बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध राजा परमाल के यहाँ जगनिक राज्याश्रित कवि थे। ''परमालरासो'' का ''आल्हा'' खण्ड बुन्देलखण्ड में सबसे ज्यादा 'पढ़ा' और 'सुना' जाता है। ''आल्हा'' सुनाने वालों की एक अलग परम्परा बन गयी है। अब तो ''आल्हा'' मात्र काव्य कृति नहीं है अपितु बुन्देलखण्ड की संस्कृति का प्रमुख अंग है। 'आल्हा' में महोबा के चन्देलराजा 'परमद्रिदेव' के मांडलिक नरेश ''आल्हा-ऊदल'' के द्वारा लड़े गये भयानक युद्धों का वर्णन है। इसके साथ ही इस काव्य के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा

आर्थिक परिस्थितियों भी उजागर होती हैं। बारहवीं शताब्दी का इतिहास कवि की कल्पना से सजकर आल्हा में घटनों के रथ पर विराजमान है।

बुन्देलखण्ड की धरती देश पर बलिदान होने वाले वीरों को जन्म देती है। यहाँ के सपूत भर–जवानी में अपने प्राणों को हथेली पर रखकर युद्ध में कूद जाने के लिए उत्साहित रहते हैं। जगनिक का ''आल्हा''– यही संदेश दे रहा है:–

''मरना इक दिन होय जरूरी सदा अमर कोई रहता नाय।

रन खेतन में जो मर गयौ सुरग लोक में पहुँचा जाय।

बुन्देली वीरता और बलिदान को बुन्देली गाथा काव्य भी मुखर कर रहा है। बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध बुन्देली गाथाऐं निम्नांकित हैं–

1. सारंगा भारंगा की गाथा
2. ढोला मारू की गाथा
3. धीरा दिनैया की गाथा
4. संत बसंत की गाथा
5. सुरहिन की गाथा
6. राजा गिलंद की गाथा
7. कारसदेव की गाथा
8. जगदेव को पंवरौ
9. मथुरावली का राछरो

''मथुरावली का राछरा'' – बुन्देली नारी की सतीत्व शक्ति को प्रगट करता है। ''सारंगा भारंगा'' में प्रेम के लिये बलिदान की गाथा पमुख है।'' संतबंसत मे दो भाइयों की गाथा है। ''कारसदेव'' की गाथा भी लोकप्रिय है।

'मथुरावली राछरे की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

बिरन मिलाऔ (हो) लै चले,

लै चले तेगा हजार

बंदी परी है मथुरवाली ।

बुन्देली भक्ति-काव्य–

भक्ति-काव्य धारा का प्रवाह बुन्देली काव्य में स्पष्ट दिखलाई देता है। बुन्देली

भक्ति-काव्य के संबंध में कहा जा सकता है कि द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, कर्म और उपासना के भक्तिरूपों को बुन्देलीकाव्य ने भी अपनाया है। बुन्देली काव्य में रामभक्त कवि भी हैं और कृष्ण भक्त कवि भी हैं। बुन्देलीकाव्य पर कबीर और जायसी का असर भी दिखता है। बुन्देली भक्तिकाव्य में दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त, कुण्डलिया आदि छंदों में काव्यरचना की गयीं है। विष्णुदास आदि बुन्देली के प्रमुख भक्त कवि माने गये हैं। फुटकर बुन्देली भक्ति लोक गीत भी बुन्देली में मिलते हैं।

एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

राम राम खों भज लो प्यारे,

क्यों करते सेना कानी ।

हम जानी कै तुम जानी ।

बालपन हंस खेल गंवाये

दूद पिये मुस्का जानी । .... हम जानी कै तुम जानी ।

बुन्देली का श्रृगांर-काव्य–

बुन्देली श्रृंगार गीतों में सौन्दर्य परक भावनाओं को व्यक्त किया गया है। पति पत्नी के श्रृंगार प्रेम की बुन्देली श्रृंगार गीतों में प्रचुरता है। इनमें मान लीला से लेकर सौत चिंता की स्थितियों का सुन्दर वर्णन है। बुन्देली श्रृंगार काव्य में '' विप्रलम्भ'' की मनोदशाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण है। कोयल, पपीहा, शीत की लम्बी काली रात्रि आदि काम उद्दीपन और विरह उद्दीपन के कारण बनते हैं। नखशिख सौन्दर्य वर्णन भी बुन्देली काव्य में है। कोविंद मिश्र, नेवाज, श्रीपति, करनकवि, प्रतापसिंह, वख्शी हंसराज, बोधा, ठाकुर (बुन्देलखण्डी) आदि कवि बुन्देली श्रृंगार काव्य के प्रमुख कवि हैं।

बुन्देली फाग–काव्य–

फाग काव्य में बुन्देली जन जीवन की चित्त वृत्तियाँ बहुत व्यापक रूप से सीचंती प्रगट हुई है। नौबीं शदी से लेकर आधुनिक काल तक फागकाव्य में कई

उतार चढ़ाव आए हैं। बुन्देली फाग काव्य के सबसे प्रसिद्ध जनकवि ईसुरी है। फागें अधिकतर ''चौकड़िया'' छंद में ही रची जाती हैं। बुन्देली फागों का स्वरूप प्राचीनता और नवीनता से पूर्ण है। यह एक प्रकार से मुक्तक लोककाव्य है, जिसमें श्रंगार, सौन्दर्य और रसिकता की प्रवृति प्रधान है। श्री गंगाधर व्यास, ख्यालीराम, ईसुरी, परशुराम पटैरिया, घनश्यामदास पाण्डेय, खुमान प्रसाद पराशर, गंगाप्रसाद हयारण, ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश', और शिवाजी चौहान 'शिवा' आदि प्रमुख कविगणों ने फाग काव्य की श्रीवृद्धि की है।

''सोभा रजउ की कीसें कइए, किऐ उनारन जइए,
बड़कें चीज इकीसई सौनों, ईखाँ का परखइए,
साजीं फागें कईं, 'ईसुरी', सुगर सुनइया चइए,
भई सारदा हमें दायनीं, कैसे कैं चुप रइए ।

बुन्देली- लोककाव्य-

लोककाव्य के अन्तर्गत उसी काव्य को रखा जाता है जिसका लिखित रूप प्रायः उपलब्ध नहीं होता किन्तु जन समुदाय में जिसे कहा–सुना जाता है। इस काव्य में किंवदंतियाँ, कहावतें, लोकमुहावरे, लोकसूक्तियाँ को रखा जाता है। इसे विद्वानों ने कर्ता साहित्य भी कहा है। लोककाव्य के निम्नलिखित रूप हैं :–

1. श्रमगीत 2. ऋतुगीत 3. त्यौहार गीत 4. संस्कार गीत 5. यात्रा गीत 6. धार्मिक गीत 7. वात्सल्य गीत

इसके अतिरिक्त– ''लोकश्रृंगार गीत'' भी लोककाव्य का ही हिस्सा होते हैं। जैसे–

बहू ओढ़ो चटक–चुनरिया
और सिर पै धरो गगरिया
छोटी ननदी ले लो साथ,
रसीले दोइ नैना।

आधुनिक बुन्देली-काव्य

बुन्देली काव्य की आधुनिक काव्य-धारा बीसवीं शताब्दी से प्रारंभ होती है। आधुनिक बुन्देली-काव्य में अपने युग की विविध प्रतृत्तियों के साथ श्री भारतेन्दु तथा श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी युग की चेतना का प्रभाव साफ-साफ दिखलाई देता है। बुन्देली काव्य का आधुनिक युग देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राष्ट्रीय-अर्न्तराष्ट्रीय परिस्थितियों से गहरा सरोकार बनाये है। कर्त्तव्यशील प्रवृति-मार्ग को अपना कर और भारतीय जनता की दुर्दशा पर ध्यान देकर ही 'भारत' का कल्याण किया जा सकता है- ऐसे स्वरों की ऊँची गूंज बुन्देली के आधुनिक काव्य में खूब सुनाई देती है। गांधी जी का सत्याग्रह और खादी आन्दोलन आधुनिक बुन्देली के लोकगीतों में उतर कर जन चेतना जगाने लगता है।

''भैया अब सुराज के लानैं, मन से लग जानें,
करौ फैसला घर अपने में न जइयौ कोउ थानें।''

कविवर श्री मदनेश, पं0 घासीराम व्यास, आचार्य घनश्यामदास पाण्डेय, जानकीप्रसाद द्विवेदी, सुखराम चौबे, रामचन्द्र भार्गव, शिवसहाय चतुर्वेदी, हरिप्रसाद 'हरि' श्री रामचरण हयारण 'मित्र', दुर्गेश दीक्षित, द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश', संतोषसिंह बुन्देला, शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला', जगदीश सहाय खरे 'जलज', ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश' आदि प्रमुख कवियों की काव्य रचनाओं ने आधुनिक बुन्देली काव्य को समृद्ध किया है।

बुन्देली-काव्य की विवेचना

कविता की परीक्षा में दो बातों का विशेष महत्व है। एक है-'असलियत पक्ष' और दूसरी है- 'गुरूत्व शक्ति'। कविता की असलियत कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति में होती है और कविता का गुरूत्व उसके हेतु या उद्देश्य में होता है। कवि के भावों की गहराई, विचारों की उच्चता और उद्देश्य की मांगलिकता उसकी कविता को महत्वपूर्ण बनाती है। बुन्देली काव्य परम्परा को समग्ररूप से परखते हुये दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है

कि बुन्देली काव्य में 'असलियत' भी है और 'गुरूता' भी है।

बुन्देली काव्य में प्रकृति सौन्दर्य, संस्कृति, संस्कार, राष्ट्रीय भावना और जीवन मूल्यों की गहरी अनुभूति है।

रस छंद अलंकारों की सटीक योजना के साथ बुन्देली भाषा शैली का लालित्य लिए भाव भंगिमाओं की प्रभावी अभिव्यक्ति भी है। बुन्देली काव्य के प्रति बुन्देली लोकमानस की गहरी ममता है।

बुन्देली-काव्य परम्परा में श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी के काव्य का योगदान

श्री रामचरण हयारण 'मित्र'– बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध कवि हैं। 'बुन्देली–संस्कृति और बुन्देली काव्य' को उन्होंने पर्याप्त प्रकाश दिया है। श्री 'मित्र' जी को बुन्देली साहित्य का भारतेन्दु कहा जाता है। उनकी काव्य साधना का सम्मान करते हुए उन्हें साहित्य शिरोमणि और साहित्य वारिधि की उपाधियों से विभूषित किया गया है। श्री 'मित्र' जी का जन्म संवत् 1961 चैत्र कृष्ण द्वादशी को हैद्यवंशी क्षत्रिय कुल में वीरभूमि झाँसी में हुआ था। जैसे कपड़ा बनाना और कपड़ा बेचना कबीर की जीविका थी वैसे ही बर्तन बनाकर और बर्तन बेचकर 'मित्र' जी अपनी जीविका अर्जित करते थे। सरल और सौम्य जीवन शैली वाले श्री 'मित्र' जी के व्यक्तित्व में साहित्यिक गुरूता थी और सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना की तेजस्वी आभा थी। समकालीन नवजागरण और दार्शनिक चिंतन के साथ राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव श्री मित्र जी की काव्य–चेतना पर था।

भेंट, सिरसी, साधना, लौलैंयाँ, लोकगायनी, ओरछा दर्शन और गीतादर्शन उनकी प्रमुख काव्य रचनायें हैं। 'मानवता की विजय' सामाजिक उपन्यास के अतिरिक्त 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' एवं 'उदय और विकास' उनके विवेचनात्मक ग्रन्थ हैं। बुन्देलखण्ड के कवियों, बुन्देलखण्ड की संस्कृति और बुन्देलखण्ड के विशिष्ट साहित्यकारों तथा कलाकारों पर उन्होंने शोधपूर्ण लेख लिखें जिन्हें देश के प्रसिद्ध समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं

ने प्रकाशित किया है। श्री मित्र जी ने 'राष्ट्रकवि घासीराम व्यास' तथा 'ह्रदेस कृत' विस्वबसकरन ग्रन्थों का सम्पादन किया है।

श्री मित्र जी के काव्य का अनुभूति-पक्ष

श्री 'मित्र' जी की काव्य चेतना पर बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक-सुषमा, बुन्देली संस्कृति, राष्ट्रीय जागरण और बुन्देली काव्य परम्परा का खासा प्रभाव है। श्री मित्र जी की काव्य साधना कभी बुन्देली लोक कवि श्री ईसुरी के काव्य मंदिर में पूजा करती दिखती है। और कभी राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण गुप्त और राष्ट्रीयआत्मा श्री माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य परम्परा का बिगुल बजाती प्रतीत होती है। श्री मित्र जी की काव्य रचनाओं में भाव व्यंजनाओं का अनोखापन है।

बुन्देलखण्ड के पर्वतों, नदियों, नगरों और वन सम्पदा का वर्णन श्री मित्र जी ने बढ़े चाव से किया है। चित्रकूट, स्वर्णगिरी और विंध्याचंल पर्वत, उर्मिल धसान, सिन्ध, चम्बल, सहजाद, घुरारी, बबेड़ी, पतरई, टोंस, लखेरी, केन, जामने, नर्मदा और बेत्रवती नदियों का यशोगान मित्र जी के काव्य में है। वर्षा, शरद, बसन्त, शिशिर, हेमन्त और ग्रीष्म ऋतुयें मित्र जी के काव्य में आनन्द विखेर रही हैं।

सच्चा काव्य जागृत पौरूष का निनाद करता है। मित्र जी के काव्य में अपनी मिट्टी की पीड़ा और समाज के विकास की अभिलाषा है। मित्र जी राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय संस्कारों से जुड़े कवि हैं। 'पन्द्रह अगस्त' कविता में सामाजिक और राजनीतिक एकता बनाये रखने का संदेश देते हुए मित्र जी कहते हैं:-

विनती इतनी मित्र 'मित्र' की सुन लइओ चित्त धरकैं।
जा स्वतंत्र भारत की रच्छया करियो सब जुर मिलकैं।

मित्र जी ने यथार्थ जीवन के आघातों को समझा और सहा है। उनकी कविता में समाज का जीवन संघर्ष राष्ट्रीय संघर्ष की ओर उन्मुख है और राष्ट्रीय संघर्ष में समाज के दुख दर्दों की ज्वाला है। किसानों की दुर्दशा से मित्र जी की संवेदना द्रवित हो उठती है :-

''मेंड पर मुरझा गई हैं सेंम की सब सहम फलियाँ''

श्री मित्र जी के काव्य का अभिव्यक्ति-पक्ष

श्रेष्ठ कवि वही है जिसके पास अनुभूति की सच्चाई भी हो और अभिव्यक्ति की सजावट में भी वह प्रवीण हो। 'मित्र' जी की अनुभूति की गहराई की विवेचना की जा चुकी है। काव्य में अभिव्यक्ति कौशल से आशय उस शिल्प योजना से है जो कवि की अनुभूति को व्यक्त करने में सहयोगी बनती है। इसमें भाषा, छन्द, अलंकार और प्रतीक बिम्बों के संयोजन का विशेष महत्व होता है।

'मित्र' जी ने काव्य सृजन के लिए खड़ी बोली, ब्रज और बुन्देली भाषा का प्रयोग किया है परन्तु मित्र जी की आत्मा और चेतना का उत्कर्ष बुन्देली भाषा में ही अधिक प्रगट हुआ है।

खड़ी बोली का उदाहरण–

'मित्र' यह सब हमारे पूर्व का इतिहास कहता है,

कि हीरे वारि निधि से नहीं मिट्टी से निकलते हैं।

ब्रजभाषा का उदाहरण–

कैसें कदम तर जाउँ खिलन मैया मोय कन्हैया खिजावै,

हरें हरें हरें हैरत में, सैनन मायँ–बुलावें।

श्री मित्र जी बुन्देली के सहज और स्वाभिक कवि हैं। बुन्देली भाषा 'मित्र' जी के जीवन और संस्कार की भाषा है। बुन्देली भाषा प्रयोग के लिए 'मित्र' जी अपना आदर्श ईसुरी कवि को मानते हैं। ''लौलैयाँ'' और 'लोकगायकी' की भाषा बुन्देली है। मित्र जी ने बुन्देली भाषा के माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों को पूर्ण अभिव्यक्ति दी है।

'हिनकत देखे सबज रंग घुरवा, तिनपै महुबिया जवान रे।

प्रान जाँय पै जान न दैबें, जै पुरखन की आन रे'।

'मित्र' जी ने बुन्देली भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए कहावतों और मुहावरों का सटीक प्रयोग

किया है। मित्र जी ने सवैया, कवित्त, घनाक्षरी, दोहा जैसे छन्दों का प्रयोग भी किया है और नवीन गीत शैली को भी अपनाया है। बुन्देली गीतों मे लेद, लावनी और फाग चौकड़ियाँ गायकी का सफल प्रयोग किया है।

'वीरन हो रओ भोर दूद सी डूबन लगीं तरैयाँ' मित्र जी का गीत जितना प्रसिद्ध है उतनी ही 'चौंकीं धना कुमकुमा घतलन'– फाग लोकप्रिय है। मित्र जी ने काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, मानवीकरण जैसे अलंकारो का अधिक प्रयोग मिलता है।

श्री 'मित्र' जी की काव्य–चेतना पर बुन्देली-संस्कृति और लोक-जीवन का प्रभाव

श्री 'मित्र' जी बुन्देली–संस्कृति और लोक जीवन के सच्चे प्रतिनिधि कवि हैं। 'बुन्देलखण्ड की सस्कृति और साहित्य' ग्रन्थ में मित्र जी ने संदेश दिया है कि बुन्देलखण्ड की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर ग्रामों में सुरक्षित है। बुन्देली शौर्य, बुन्देली पावन तीर्थ, बुन्देली प्रकृति, बुन्देली संस्कृति और संस्कार, बुन्देली–लोक जीवन के अनुराग और व्यवहार के नाना काव्य चित्र 'मित्र' की कविताओं में अकिंत हैं। 'बेतवा' नदी को मित्र जी ने बुन्देली संस्कृति का प्रतीक माना है। 'पाँव पखारत बेत्रवती बई, मित्र जू बंदत भूम बुन्देली' गान गाते हुए मित्र जी कहते हैं कि बुन्देलखण्ड के पर्वत के सामने मलयगिरी पर्वत को भी लाज आती है :–

'मलयगिरी की अत ऊँची पहाड़ियाँ, बिंद की पहाड़ियाँ देख लजाउतीं'

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन की कर्मठता, विवाह संस्कारों की मांगलिकता, कृषक जीवन के सुख–दुखों की मार्मिकता और सास–ननदों की कड़वाहट का प्राणवान् चित्रण मित्र जी के काव्य में है।

'लटकारे घूंघट से अँसुआ अपने अँचरन ढारैं,

'ओ धरती के पूत! जग उठौ जगे सूरजमल भैया', बारे देउरिया कुइलिया न मारौ' जैसे अनेक गीतों में बुन्देली लोक जीवन की झाँकी देखी जा सकती है।

''सजन घर नैयाँका करौं गुइयाँ'' तथा **''नैबरैं नैबरैं चले आओ बारे समदी''**– जैसे गीतों से बुन्देली नारियों के विरह और सामाजिक–जीवन के व्यंग्य–विनोदों की भावनाओं के मनोचित्र पाठकों के समक्ष उभरते हैं । 'बुन्देली–लोक जीवन' और 'बुन्देली–लोक-संस्कृति' का शायद ही कोई चित्र या बिम्ब होगा– **जो श्री मित्र की कुशल लेखनी से न संवारा गया हो । ''श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन– बुन्देली–काव्य के परिप्रेक्ष्य में''**– शोध-प्रबंध से स्पष्ट हो जाता है कि श्री रामचरण हयारण 'मित्र' बुन्देली-काव्य के आदि – कवि 'श्री जगनिक' तथा बुन्देली–लोक-कवि 'श्री ईसुरी' के बाद आधुनिक बुन्देली-काव्य के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं ।

बुन्देलखण्ड के शौर्य, बुन्देली–जीवन के श्रृंगार और भक्ति भावनाओं को 'मित्र जी' ने बुन्देली काव्य में सहज और सरल अभिव्यक्ति दी है । बुन्देली लोक–जीवन की सांस्कृतिक-परम्परा और सामाजिक-संस्कारों के साथ ही आधुनिक भारत की राष्ट्रीय – चेतना और सामाजिक-सरोकारों से ओत् प्रोत भावनायें और चेतनायें भी 'मित्र' जी के बुन्देली–काव्य में प्रभावी शैली में प्रगट हुई हैं । यह कहना सटीक है कि 'मित्र' जी ने जानपदीय या क्षेत्रीय सीमा के दायरे से आगे बढ़कर बुन्देली काव्य को राष्ट्रीय– मंच पर प्रतिष्ठित किया है । श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी के बुन्देली–काव्य में लोक–रंजन का चन्द्रमा और लोक-मंगल का सूर्य अपनी–अपनी शोभा–आभा के साथ प्रकाशित हो रहा है ।

सहायक ग्रन्थ सूची

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी के ग्रन्थ एवं रचनायें

पद्य रचनायें–

1. भेंट – (राष्ट्री काव्य)
2. सिरसी – (राष्ट्रीय, सामाजिक तथा प्राकृतिक पद्य रचना संग्रह)
3. साधना – (अध्यात्मिक पद्य रचना संग्रह)
4. लौलैंया – (बुन्देली काव्य संग्रह)
5. लोक–गायनी – (बुन्देली काव्य कृति)
6. ओरछा दर्शन – (ऐतिहासिक काव्य रचना)
7. गीता दर्शन – (पद्य – अनुवाद)
8. वीरांगना मानवती – (ऐतिहासिक)

सम्पादित रचनाऐं–

1. विस्वबसकरन – राजकवि हीरालाल व्यास ह्रदेस कृत (सम्पादन)
2. राष्ट्रकवि घासीराम व्यास (व्यक्तित्व – कृतित्व) – सम्पादन – प्रकाशन

गद्य साहित्य–

1. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य (संस्कृति और लोक काव्य का विवेचनात्मक – ग्रन्थ)
2. 'उदय' और विकास'–
3. मानवता की विजय – सामाजिक उपन्यास ।
4. चित्र (कहानी)

फुटकर रचनायें–

1. वन्दना
2. राष्ट्रीय कविता के स्वर
3. छत्रसाल
4. शिवाजी
5. महारानी लक्ष्मीबाई
6. देवकी की साधना
7. ब्रजांगना हास विलास
8. बुन्देलखण्ड और उसकी नदियां
9. बुन्देलखण्ड प्रशस्ति
10. वर्षा वर्णन
11. शरद सौष्टव
12. नवज्योति
13. भारतीय वीरों की रण विजय
14. परिवर्तन
15. संदेश
16. समरांगण गीत
17. क्षीण अभिलाषा
18. बुन्देलखण्ड गारी
19. बंगलाविजय
20. उद्धव – सम्वाद
21. कवि से
22. ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा
23. श्रंगार रस
24. कर्मफल
25. पथिक
26. परम्परा
27. चन्द्रोक्तियां
28. चातक

साहित्यिक-ग्रन्थ

1 बुन्देली का साहित्यिक इतिहास : मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत'
2 बुन्देली काव्य : डॉ0 हरगोविन्द सिंह
3 बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास : डॉ0 रामनारायण शर्मा
4 चन्देल कालीन लोक महाकाव्य : 'आल्हा' सम्पादक डॉ0 नर्मदाप्रसाद गुप्त
5 परमाल रासौ : जगनिक
6 बुन्देली वैभव : पं0 गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'
7 बुन्देली लोक साहित्य : डॉ0 बलभद्र तिवारी
8 बुन्देली काव्य परम्परा : डॉ0 बलभद्र तिवारी
9 बुन्देली लोक साहित्य : कृष्णानन्द गुप्त
10 बुन्देली रासो काव्य (शोधपत्र) : डॉ0 श्याम मोहन श्रीवास्तव
11 रासो काव्य धारा : डॉ0 विजय कुलश्रेष्ठ
12 बुन्देलखण्ड का विस्मृत वैभव : डॉ0 कैलाश मड़वैया
13 छत्रसाल ग्रन्थावली : श्री वियोगी हरि
14 रानी लक्ष्मीबाई चरित्र : द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
15 अथाई की बातें : भगवानसिंह गौड़
16 लक्ष्मीबाई रासौ : पं0 मदनमोहन द्विवेदी 'मदनेश'
17 बुन्देलखण्डी लोकगीत : शिव सहाय चतुर्वेदी
18 लोक जीवन और साहित्य : डॉ0 रामविलास शर्मा
19 लोक साहित्य के प्रतिमान : डॉ0 कुन्दनलाल उपरेती
20 बुन्देली लोक साहित्य एक अनुशीलन : डॉ0 के0एल0 वर्मा
21 बुन्देली का नया काव्य : डॉ0 बलभद्र तिवारी
22 बुन्देली भाषा और साहित्य : कृष्णानन्द गुप्त
23 बुन्देली भाषा की प्रवृत्तियाँ : डॉ0 कैलाश बिहारी द्विवेदी
24 बुन्देली एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन : दुर्गाचरण शुक्ल, कैलाश बिहारी द्विवेदी
25 बुन्देली भाषा शास्त्रीय अध्ययन : डॉ0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल
26 भारत का भाषा सर्वेक्षण : खण्ड 9 : ग्रियर्सन : अनुवाद : उदय नारायण तिवारी
27 प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ
28 बुन्देलखण्ड दर्शन : मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत'
29 हैण्डबुक ऑफ फोकलोर : सोफिया बर्न
30 ए. स्टडी ऑफ आरियन फोकलोर : कुंज बिहारी दास
31 लोक साहित्य की भूमिका : डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय
32 फड़ साहित्य : डॉ0 गनेशीलाल बुधौलिया
33 बुन्देली का फाग साहित्य : डॉ0 श्यामसुन्दर बादल
34 विवाह गीतावली : गंगासिंह देव (चरखारी नरेश)
35 किरण दूत : सुधाकर शुक्ल

36 बौछार : रमई काका
37 इसुरी की फागें : सम्पादक : कृष्णानन्द गुप्त
38 रणभेदी : ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश'
39 देश की पुकार : ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश'
40 बुन्देली प्रकाश : ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश'
41 श्याम संदेश : पं० घासीराम व्यास
42 बुन्देलखण्ड : पं० घासीराम व्यास
43 फाग मंजरी : डॉ० हरगोविन्द सिंह
44 रसभरी राधिया : शिवाजी चौहान 'शिवा'
45 हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
46 गोस्वामी तुलसीदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
47 हिन्दी साहित्य की भुमिका : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
48 काव्य की भूमिका : रामधारी सिंह 'दिनकर'
49 हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० नगेन्द्र
50 साहित्यिक निबंध : डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
51 महादेवी वर्मा का नया मूल्यांकन : डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
52 भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य : शिवकुमार मिश्र
53 हिन्दी साहित्य और सम्वेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
54 आधुनिक कविता यात्रा : रामस्वरूप चतुर्वेदी

इतिहास

1 बुन्देलखण्ड का इतिहास : दीवान प्रतिपाल सिंह
2 बुन्देखण्ड का संक्षिप्त इतिहास : गोरेलाल तिवारी
3 प्राचीन भारत का इतिहास : डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी
4 भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : भगवतशरण उपाध्याय
5 महाराजा छात्रसाल बुन्देला : डॉ० भगवानदास गुप्त
6 कन्ट्रीव्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड भाग–1 (स्मिथ)
7 भारतभूमि और उसके निवासी : जयचंद्र विद्यालंकार
8 दि ज्याग्राफी ऑफ पुरानापज : एस० एम० अली
9 झाँसी गजेटियर : उत्तर प्रदेश सरकार–प्रकाशन
10 चंदेल और उनका राजत्व काल : केशवचन्द्र मिश्र
11 मध्य प्रदेश के पुरातत्व की रूपरेखा : डॉ० गोरेश्वर गंगाधर दीक्षित

संस्कृति

1 बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास : डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त
2 बुन्देलीभाषा साहित्य संस्कृति : कन्हैयालाल 'कलश'
3 लोकाचार : डॉ० गनेशीलाल बुधौलिया

4 एनशिऐंट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन्स : एफ0 इ0 पार्जिटर
5 भारतीय कला : डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल
6 एन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल एन्थोपोलॉजी : डॉ0 मजुमदार तथा टी0एन0 मदान
7 हिन्दु संस्कार : डॉ0 राजबली पाण्डेय
8 वैदिक साहित्य और दर्शन : डॉ0 विश्वम्भरदयाल अवस्थी
9 वैदिक संस्कृति : डॉ0 किरणकुमार थपलियाल
10 वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति : म0 म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
11 लोक संस्कृति की रूपरेखा : डॉ0 कृष्णादेव उपाध्याय
12 इंडिया एण्ड वर्ल्ड कल्चर : विनायक कृष्णा
13 टि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इंडियन पीपुल : आर0 सी0 मजुमदार
14 भारतीय संस्कृति (कुछ विचार) : डॉ0 राधा कृष्णन
15 भारतीय संस्कृति के स्वर : महादेवी वर्मा
16 संस्कृति के चार अध्याय : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

विशेष ग्रन्थ

1 ऋग्वेद
2 महाभारत (आदि पर्व)
3 अष्टाध्यायी : महर्षि पाणिनि
4 रामायण : महर्षि बाल्मीक
5 रूपकषटकम् : वत्सराज
6 जेमिनीय सूत्र : शबर भास्य
7 रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास
8 रहीम के सुबोध दोहे : वियोगि हरि
9 भारत दुर्दशा : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
10 भारत भारती : मैथलीशरण गुप्त
11 साकेत : मैथलीशरण गुप्त

कोश

1 बुन्देली कहावत कोश : कृष्णानन्द गुप्त
2 हिन्दी साहित्य कोश : डॉ0 सत्येन्द्र
3 बुन्देली शब्द कोश : डॉ0 मोहनलाल गुप्त 'चातक'
4 समांतर कोश (हिन्दी थिसारस) : अरविंदकुमार कुसुमकुमार
5 हिन्दी शब्द संग्रह : श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, श्री राजबल्लभ सहाय
6 अंग्रेजी हिन्दी कोश : फादर कामिल बुल्के

पत्र-पत्रिकाएँ

1 बुन्देल खण्ड दर्पण : 1998 (झाँसी महोत्सव प्रकाशन)
2 बुन्देल खण्ड दर्पण : 2000 (झाँसी महोत्सव प्रकाशन)
3 मेला जलबिहार महोत्सव (स्मारिका) : 82 मऊरानीपुर
4 अस्मिता : जिला पुरातत्व संघ : दतिया प्रकाशन 1991
5 बुन्देली संस्कृति : झाँसी महोत्सव समिति : 1993
6 बुन्देली साहित्य के भारतेन्दु : रामचरण हयारण 'मित्र'
7 (एक पत्रक) लेखक : राजाराम साहू 'विक्रम'
8 लोकवार्ता : सम्पादक : कृष्णानन्द गुप्त, टीकमगढ़
9 मधुकर
10 साप्ताहिक हिन्दुस्तान : नई दिल्ली
11 नवभारत टाइम्स : नई दिल्ली
12 साप्ताहिक वीर अर्जुन
13 युगान्तर : कानपुर
14 स्वतन्त्र भारत : लखनऊ
15 विशाल भारत : कलकत्ता
16 दैनिक जागरण : झाँसी
17 दैनिक भास्कर : झाँसी
18 दैनिक मध्यदेश : झाँसी
19 अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मेलन स्मारिका : 1977 मऊरानीपुर (झाँसी)